UNIVERSAL LIBRARY

OU_180891

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 M 17 P Accession No. H 3584

Author माडगूळकर, व्यंकटेश दि.

Title प्रातिनिधि रचनाएँ १९६३

This book should be returned on or before the dat last marked below.

व्यंकटेश दि० माडगूलकर
[मराठी उपन्यास-कथाकार]

प्रतिनिधि रचनाएँ

भाषान्तरकर्ता
र० रा० सर्वटे

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला : ३
ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : हिन्दी ग्रन्थाङ्क-१७१
सम्पादक-नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन

Pratimidhi Rachanayen
Vyankatesh D Madgulkar
[Novel, Stories & Personal Essays]
BHARATIYA JNANAPITH PUBLICATION
First Edition 1963
Price Rs. 4 00

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
प्रधान एवं सम्पादकीय कार्यालय
भारतीय ज्ञानपीठ, ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय एवं विज्ञापन केन्द्र
भारतीय ज्ञानपीठ, ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-
मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी
प्रथम संस्करण १९६३
मूल्य चार रुपये

राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला

भारतीय ज्ञानपीठके समस्त प्रकाशनोंसे और संस्थाकी गति-विधिसे जो पाठक परिचित हैं वे जानते हैं कि ज्ञानपीठने हिन्दी-प्रकाशनके क्षेत्रमें एक व्यापक साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणको निष्ठापूर्वक अपनाया है।

पालीमें 'जातकट्ठ कथा', तमिलमें 'थिरुकुरल', हिन्दीमें 'वैदिक साहित्य' और नागरी लिपिमें उर्दूके समूचे संकलनीय काव्य-साहित्यको प्रस्तुत करनेके मूलमें देशकी सांस्कृतिक उपलब्धिको समग्र और अखण्ड रूपसे जानने-माननेकी दृष्टि है।

अब 'लोकोदय ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत 'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' की योजना इस दिशामें ज्ञानपीठका अगला पग है। इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत ज्ञानपीठकी योजना है कि भारतीय भाषाओंमें लिखनेवाले सभी प्रमुख साहित्यकारोंकी रचनाओंके अलग-अलग ऐसे संकलन प्रकाशित किये जायें जिनमें स्वयं लेखकोंके द्वारा चुनी हुई उनकी विविध शैली-शिल्पोंमें लिखी सर्जनात्मक साहित्यकी प्रतिनिधि रचनाएँ हिन्दी अनुवादके रूपमें संग्रहीत हों। प्रसन्नताकी बात है कि इस योजनाके लिए भारतके सभी मूर्धन्य साहित्यकारोंका सहयोग ज्ञानपीठको प्राप्त हुआ है।

'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' के माध्यमसे देशके साहित्यकार स्वयं तो एक मंचपर आयेंगे ही, पाठकोंको विशेष लाभ यह होगा कि सभी ख्याति-प्राप्त लेखकोंकी बहुमुखी साहित्यिक प्रतिभासे परिचित होंगे, और कुछ अनुमान लगा पायेंगे कि हमारे देशमें समसामयिक साहित्यका स्वर क्या है, स्तर क्या है, उपलब्धि क्या है; और यह कि देशके साहित्य-

समीक्षक इस प्रकारकी रचनाओंको विश्व-साहित्यकी समान शैली-शिल्प-वाली रचनाओंकी तुलनामें क्या स्थान देते हैं, या कमसे-कम यह कि भारतीय भाषाओंमें इस प्रकारके साहित्यका तुलनात्मक मूल्यांकन क्या जानकारी प्रस्तुत करता है।

किन्तु किसी निष्कर्षपर पहुँचनेसे पहले पाठकों और समीक्षकोंको यह बात ध्यानमें रखनी होगी कि इस प्रकारके स्फुट संकलनोंके आधार-पर तुलनात्मक मूल्यांकनकी अपनी सीमाएँ हैं।

'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' का एक पक्ष यह भी है कि जो हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है और अन्ततोगत्वा जिसे इस रूपमें देशमें सभी प्रकारसे समादृत होना है, उसका साहित्य-कोष इस प्रयत्न-द्वारा समृद्ध हो। हमारी भावना है कि इसे हिन्दीकी ओरसे अन्य सहोदरी भारतीय भाषाओंका अभिनन्दन-आयोजन भी माना जाये।

'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' के माध्यमसे अनुवादके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षोंपर विचार करनेका अवसर भी पाठकों और समीक्षकोंको मिलेगा। यह स्वयं एक राष्ट्रीय उपलब्धि होगी। इसका अर्थ यह कि अनुवादके रूप और प्रकृतिके सम्बन्धमें हम कोई विशेष आग्रह लेकर नहीं चले—केवल इतना ही कि मूलका भाव सुरक्षित रहे और अनुवाद सुबोध हो। मुहावरों, शब्द-बन्धों और भाषा-प्रयोगोंके क्षेत्रमें हिन्दीको अन्य भारतीय भाषाओंसे कुछ लेना है, लेना चाहिए, इस दृष्टिकोणको सामने रखनेके परिणाम-स्वरूप अनुवादमें यदि कहीं कुछ अप्रचलित या अटपटा-सा लगे तो वह इस दृष्टिसे विचारणीय है कि इसमें क्या ग्राह्य है क्या अग्राह्य। निर्णय भाषाविद् दें—विशेषकर वे जिनकी मातृभाषा वही है जो मूल लेखककी और साथ ही जो हिन्दीको राष्ट्र-भाषाके रूपमें समृद्ध करनेकी क्षमता रखते हैं।

प्रसिद्ध भारतीय-लेखक श्री व्यंकटेश दि० माडगूलकरका यह प्रति-निधि रचना-संग्रह राष्ट्रभारती ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्रकाशित हो रहा

हैं, यह भारतीय ज्ञानपीठके लिए प्रसन्नता और गौरवका विषय है। लेखकने इसके लिए अपनी रचनाएँ स्वयं चुनकर दी हैं; और उनमें एक उपन्यासिका भी है, कुछ कहानियाँ भी, और कुछ व्यक्तिगत निबन्ध भी।

यह संयोगकी बात है कि इस ग्रन्थमालामें श्री नार्लका संग्रह पहले आया, उसके बाद श्री राजशेखर बोसका, और अब यह श्री माडगूलकर-का। इसे मात्र मुद्रण-क्रमकी बात माना जाये। जिन अन्य साहि-त्यिकोंकी कृतियाँ इस ग्रन्थमालामें आयोजित हैं वे सब मूर्धन्य लेखक हैं। साहित्यमें किसका क्रम कहाँ हैं, यह निश्चित करना समीक्षकोंका काम है।

भारतीय भाषाओंमें साहित्यिक कृतित्वकी श्रेष्ठताका प्रश्न भारतीय साहित्यके मानदण्डका प्रश्न है। उसके लिए भारतीय ज्ञानपीठकी एक अलग योजना है जिसके अनुसार प्रतिवर्ष भारतीय साहित्यकी सर्वश्रेष्ठ कृतिको एक लाख रुपयेके पुरस्कार-द्वारा सम्मानित किया जायेगा। कृति-कारके प्रति कृतज्ञता ज्ञापनार्थ।

२४ अप्रैल, १९६३

—लक्ष्मीचन्द्र जैन
सम्पादक

मैं कैसे लिखता हूँ ?

बात बहुत पहलेकी है। मै तब किसी प्रकार निम्बवड़ा गाँवकी प्राथमिक शिक्षाशालामे अध्यापक हो गया था। सब कहते : "अच्छा हुआ जो लग गया, नही इससे तो आशा ही न थी।" और मै दिन-रात मन-ही-मन घुला करता कि यह नहीं, मुझे तो कुछ और ही होना था, पर क्या होना था, इसकी धुंधली-सी भी कल्पना न थी। मेरी उन दिनोकी सारी बेचैनी 'झेल्या' शीर्षक रचनामे चित्रित हुई है।

उसी बेचैनीमें मै आपसे-आप अपना सारा खाली समय पढ़नेमे देने लगा। गडकरी और केशवसुतकी कविताएँ तो जैसे पागल होकर पढ़ता। पढते-पढते मै स्वयं भी कविताएँ लिखने लगा। कुछ उनमे-से मासिक पत्रिकाओंमे प्रकाशित भी हुई। पर वह बेचैनी बनी थी, और बनी रही। चित्र बनानेकी दिशा भी ली। जल-रंग और तैल-रंग दोनोका कूँचीसे प्रयोग किया, पर यह लगता ही रहा कि बादल घुमड़-घुमड़कर आये पर बरसे नही।

एक दिन अकस्मात् एक कहानी लिखी, और तत्काल मुझे अनुभव हुआ कि जो मिल नहीं रहा था वह इस समय कुछ हाथ आ गया। 'काले मुँह-वाली' इस कहानीका शीर्षक था और एक कुतियापर यह लिखी थी। हुआ यों कि मैने एक कुत्तेका पिल्ला पाला। मुँह काला रहनेसे सबने उसे असगुनी कहा। दो-एक दुर्घटना हुई भी। बस सब ओरसे वह दुरदुरायी जाने लगी, और जब दाने-दानेको तरस आयी तब एक दिन चल दी। उसी-पर, या उसीकी यह कहानी थी।

आठ

कहानीमे यह कुतिया अपनी दुर्दशा एक कुत्तेसे कहती है। विशेष बात यह कि कुतियाने जो कहा वह मैने 'सातारी बोली' मे लिखा। यह नयी बात होगी, ऐसा सोचकर मैने लिखा; उतनी चालाकी मुझमे न थी। मैने तो आवश्यक समझकर वैसा किया। मुझे लगा कि 'माणस देश' के कुत्ते भी यही बोली बोलेगे। और भाषाके विषयकी अपनी यह मान्यता मै आज भी निभा रहा हूँ।

इस कहानीके बाद ही मुझे विश्वास बँध गया कि चित्र और कविता नहीं, कहानीके ही माध्यमसे कह सकूँगा मै। कुतियाकी कहानी मुझे सूझी क्योंकि सब सामने हुआ था। वह बोल नहीं सकती थी, पर कुत्तेकी कुत्ता समझ लेता है और उतने समयके लिए मै मानो कुत्ता हो गया था। फिर तो जैसा लगा मैने लिखा। सच तो, 'लिखा' नहीं, हाथसे लिखा गया। कारण, कहानी स्फुरित होती है तो अपना आकार-रूप लिये हुए।

लेकिन हमेशा ऐसा नहीं। कहानीके छोटे-छोटे बीज आये दिन आकर मनमें गिरते रहते हैं। कौन पीपलका है कौन घासका, यह ठीकसे तो नहीं जानते बनता, पर जो फैल-फैलाववाला वृक्ष होना रहता है उसके पत्तोंकी सरसराहट कानोमे चुप-चुप सुनाई पडने ही लगती है। 'मोटर सर्विस' कहानी इसी प्रकार जनमी। पूनामे एक मित्रने कल्पना सुझायी : एक छोटे-से गाँवमे मोटर सर्विस शुरू होती है और उसके कारण वहाँका सारा निर्मल स्वरूप गन्दा हो चलता है। उसी दिनसे एक वृक्षके पत्तोकी सरसराहट कानोंमें गूँजने लगी, पर इस बीजको मिट्टी-पानी दिनो बाद गाँव आनेपर मिला : जब यहाँसे मोटर छूटी, और स्टैण्डके सामनेवाले कुम्हारके यहाँ बेटा भले खुश था पर बूढ़ा बाप सिर ही पोटता रहा, क्योंकि घरमें बैठी जवान बेटीको ड्राइवर अभी-अभी कुछ सैन करता गया था!

पूनाके उस बीजको वृक्ष होना तब मिला जब ड्राइवरके चरित्रके रूपमे एक और बीज भी यहाँ आकर मनमे गिरा। फिर तो पात्र स्वयं कहानी

निर्मित कर चले। मेरा अनुभव है कि अथसे इति तक कोई कहानी मनमे तैयार नहीं होती, वह लिखते-लिखते ही होती है। लेखककी आँखें नीम तलेका स्टैण्ड और सामनेवाली झोपड़ो देखती होती है, कान मोटरकी आवाजें सुनते है, और नाकमे चिलम-तमाखूकी गन्धें भर-भर आती है। इसी तरह पात्रोंकी छोटीसे-छोटी अंग-भंगिमाएँ भी मानो सामने ही दिखती रहती है। जैसे : 'गुणी जानवर' मे सणगरकी जवान बेटी जोभ गालमे दबाकर निगाह नीचे कर लेती है, या 'इरादा' मे सन्ध्याकी काली चमकदार पीठपर धूप पडती है और वह खुजाने लगती है।

जैसे यह सब मुझे दिखता है उसी तरह पात्रोंकी बातचीत भी सुनाई पड़ती है : सुनाई, कानोको नही, मनको। कुछ मुद्रित पढें और अक्षर-अक्षरकी ध्वनि मन-ही-मन अंकित होती जाये – उस तरह। पात्र भावनाओंके अनुसार कभी तेज बोलते हैं कभी धीमे, कभी स्वर ऊँचा उठता है तो कभी शब्द लडखडाते और टूट तक रहते है। पवित्रा थककर ढह रहती है तो नामा 'नम्रतापूर्वक' बोलता है, और बनगरवाडीके रास्ते उतने सवेरे कौवे 'बोझिल' स्वरमे कांव-कांव करते है। ये सब स्वरकी छटाएँ मुझे लिखते समय ही अनुभव होती है।

सचमुच यह सब दिखना, सुनाई पडना और अनुभव होना मेरे सामने ऐसे आता जाता है जैसे किसी बोलते-चलचित्रके लिए चतुर कैमेरामैंनने अपना यन्त्र साधा हो और वही, उतना ही, दृष्टि-पथमे रहे जिसकी आवश्यकता हो। 'बनगरवाड़ी'का पटेल बातें करता है तो काँटेदार झाडियोमे. चलनेसे पैरोंपर पडी खरोंचोंके सफेद निशान ही उभरे हुए दिखते है, हाथ-पाँवोंकी फूली हुई गाँठदार नसें नहीं। पात्र बोलते-से कभी-कभी चुप हो जाते हैं, यह भी मैं देखता और अनुभव ही करता हूँ। जो उस समय सामने होता पाता हूँ वही लिख देता हूँ। ठीक ऐसा ही गन्धोंका होता है। 'बनगरवाड़ी'में वर्षासे भीगी भेड़ें भीतर घुसती है तो गड़रियोंके घर उनकी गन्धसे भर उठते हैं!

दस

मनकी हाथ-जैसी इन्द्रियाँ विभिन्न संवेदनाएँ तक चुन लेती है। 'चमन'के मुँहमे रखा जामुन जब फूट जाता है तब वह 'सीड' आवाज करती है, लार टपकाती है और रस निगलते समय उसकी आँखें खुलती और बन्द होती हैं। पर संवेदनाओंको ठीकसे अनुभव करके भी बहुत बार उन्हे शब्द रूप देना कठिन पड़ता है; कभी-कभी तो उसी प्रकार पहले करके देखता तक हूँ मैं। सणगरकी बेटीने गालमे जीभ दबाकर कैसे लाजसे आँखें नीची की होगी, यह मैंने पहले स्वयं करके देखा तब शब्द-रूप दे सका। और जिस तरह स्वर, संवेदना और गन्ध आदि अनुभव होती है उसी प्रकार आकार, स्पर्श, वर्ण और रुचि आदि भी।

कैसे इतना सब याद रहता है? ठीक जैसे दूकानदारको हर चीजके चढते-उतरते भाव या टेलेफोन ऑपरेटरको अनेक-अनेक नम्बर। अपने विषय और उपयोगकी सूक्ष्ममे-सूक्ष्म बातोंको भी ध्यानमे रख लेनेकी ओर मनका झुकाव इतना रहता है कि रास्ता चलते भी हम उन बातोंको मनमें इकट्ठा करते जाते है। और यह कार्य हमारे अनजाने हुआ करता है। लिखते समय जैसी आवश्यकता होती है उसके अनुरूप सामग्री या सूचना मन सामने प्रस्तुत कर देता है।

रही बात भाषा और शैलीकी, जिस प्रकार पूनीसे सूत निकलता है उसी तरह निवेदन निकलता है। शब्द चलते चले आते है, वाक्योंकी लय बँध जाती है, और फिर तो मन ही नहीं अंग-अंग झूमने लगता है। वह लय हमारी आत्माका उद्‌गार होती है। इसी उद्‌गारको शैली कहे! मनुष्यकी सारी आन्तरिक उत्कटताको ही तो शैली कहना चाहिए। शैलीके साथ ही भाषाकी बात उठ आती है। कहते हैं भाषाको खूब निखारना चाहिए। पर भाषा ऐसी चीज नहीं कि हम प्राप्त करना चाहें और वह प्राप्त हो जाये; भाषा तो माँके दूधकी तरह प्राप्त होती है।

मैंने जो देखा, जो सुना, जो भोगा, उस सबसे मेरी भाषा बनी है।

तब यह प्रश्न करना निरर्थक है कि अमुक लेखक अमुक ही भाषाका उपयोग क्यों करता है; और ऐसा आग्रह करना भी अयुक्त होगा कि पात्रोंके मुँहमे ग्रामीण और अशुद्ध भाषा न कहलायी जाये। बोली जानेवाली भाषाके बारेमें हमारी कुछ भ्रामक धारणाएँ हैं। मूलमें सब ओर जो भाषाएँ चालू रहती हैं वे बोली जानेवाली भाषाएँ ही हैं। इन्हींमें-से कोई एक प्रमाणरूप मान ली जाती है और उसमें ग्रन्थ-रचना होने लगती है। पर जहाँ ग्रन्थ-रचना होने लगी कि उस भाषाका स्वरूप प्रवाही नहीं रह जाता : वह जड़ हो चलती है। लिखनेकी भाषाको बोलनेकी भाषामे पृथक् नहीं होने देना चाहिए। तभी साहित्य साधारण लोगोंकी पहुँचके भीतर भी रहेगा।

—व्यंकटेश दि० माडगूलकर

अनुक्रम

उपन्यास

बनगरवाड़ी ९

कहानियाँ

साइकिल १४५
इन्तिहा १६०
धरती माता १७०
मोटर सर्विस १८४
धार २०३

व्यक्ति निबन्ध

चिड़ियाँ २१७
मेरी आर्थिक परिस्थिति २३०
चूहा : एक व्यक्ति २३६

बनगरवाड़ी

[उपन्यास]

*

एक

पीठपर पाथेय बाँधे मै बनगरवाड़ीके लिए रवाना हुआ था।

अभीतक सब-कही अँधेरा फैला हुआ था। तारे चमक रहे थे। सिर्फ़ सामनेवाली मोड़ लेती हुई जाती गाड़ीकी सड़क धुँधली-सी दिख रही थी। रात कितनी है, भोर कितनी देर बाद होगा, इसका कोई निश्चित अनुमान नही लगाया जा सकता था। मेरे मनमें रह-रहकर यह शंका आती थी कि मै कहीं बहुत जल्दी तो नहीं निकल पड़ा। मेरे कानोंको अपने ही पैरोंको आवाज़ लग रही थी। झींगुर झंकार रहे थे। सर्द हवाके झोंके कानोंपर टकराते हुए आवाज कर रहे थे। बहुत देरसे चलते रहनेके कारण बदनमे एक लय-सी भर गयी थी।

डर लग रहा था कि कहीं रास्ता न भूल जाऊँ, क्योंकि इससे पहले मैं बनगरवाड़ी कभी नही आया था। वह गाँव कैसा होगा, वहाँके लोग मेरे साथ किस तरह पेश आयेंगे, वहाँ जानेपर कहाँ रहूँगा—इत्यादि प्रश्न मैं स्वय अपने-आपसे पूछ रहा था। दो दिन वहाँका राग-रंग देखकर मुझे वापस लौटना था। जब वहाँ स्थायी रूपसे रहना ही है तो मुझे अपना कुछ सामान भी साथ लाना ज़रूरी था। आज सिर्फ़ धोती-चद्दर और दो और कपड़े ही लेकर मैं जा रहा था।

खेतोमे चुभनेवाली ठण्डी बयार चलने लगी। तारोकी चमक कम पड गयी। कुछ ऐसी बीचकी हालत हो गयी थी कि न तो पूरी चाँदनी थी और न पूरा उजाला ही था। बबूल और अन्य पेड़ोंकी चिरपरिचित सुगन्ध अनुभूतिमें आयी। रास्तेकी धूल पैरोमें ठण्डी-ठण्डी-सी लगने लगी।

थोड़ी ही देरमें अँधेरा जाता रहा, सब सूझने लगा। पेड़-पौधे, पत्थर आदि चीज़ोंको आकार प्राप्त हुए। तारे लुप्त हो गये। झींगुरोंका संगीत

बन्द हो गया। नींदसे जागे हुए कौवोंकी कर्कश काँव-काँव कानोंमें पड़ने लगी।

लाल और पीले रंगका सूरज खेतकी ओटसे ऊपर आया। खेतकी उजियाती हरियालीपर पीली झलक छा गयी। बेरीकी झाड़ियोंमें बैठी काली चिड़ियाँ जाग उठीं और दुम नचा-नचाकर फुदकने लगी। झाड़ियोंमें पंख फुलाकर बैठे हुए हरियल पंजोंपर उचककर बोलने लगे। कौवे उड़ने लगे।

सूरजकी पहली किरणोंसे खेतोंमें पड़ी सूखी घासमें गरमाहट पहुँची। उसके तलेकी कीड़े-मकोड़ोंकी दुनिया जाग उठी। चींटियाँ कपटी हुई इधर-उधर को चल पड़ीं। टिड्डे उछलने लगे। गिरगिट सरसराये। खेतकी मिट्टीमें नन्हे-नन्हे छेद बनाकर उनके भीतर छिपे हुए गुंडी कीड़े भीतर फिसलकर आनेवाले कीड़ोंको खानेके लिए अपनी देहपर मिट्टी डालकर तैयार हो गये।

तरोतेकी पीड़-तले बैठे हुए चमकीले हरे रंगके भौंरे उसके कसैले पत्ते खाने लगे। खेतके बिलोंमें-से गोहोंने सिर बाहर निकाले। वे गलेके नीचेका भाग हिलाती हुई अपनी जीभके निशानेके भीतर आनेवाले कीड़ोंकी राह देखने लगीं। हरियल पेड़ छोड़कर सड़कपर आये और अपनी सुडौल गरदनें मटकाते हुए धूलमें बिखरे पड़े घासके बीज चुगने लगे।

मैं अपनी पीठपर रखी गठरीको हाथमें लेकर पाँव जल्दी-जल्दी बढ़ाने लगा। नंगे पैरोंसे धूल उड़ने लगी। पाजामेकी फरफराहटसे रास्तेपर बैठे हरियल घबड़ाकर ऊँचे उड़ने लगे। मैं लम्बी-लम्बी डगें भरता आगे बढ़ता रहा। चलते-चलते पेटमें चूहे दौड़ने लगे। गठरीमें बँधी हुई रोटी, लहसुनकी चटनी और सागकी खुशबू बड़े ज़ोरसे आने लगी। मगर मैं जीवटके साथ पाँव बढ़ाता ही गया। अँगुलियोंकी सन्धिमें-से धूल ऊपर आ रही थी। पैरोंपर तहें चढ़ रही थीं। पाजामा मैला हो रहा था और रास्ता लम्बा होता जाता था।

आस-पास पीले-भूरे रंगके खेत फैले हुए थे। जिधर देखो उधर खेत ही खेत! एक तो पहलेसे ही वीरान, फिर चिलचिलाती धूपमें तो ये और अधिक वीरान दिखते थे। कहीं-कहीं नीचेकी थोड़ी-सी हरियाली नज़र

आ जाती थी, नहीं तो चारों ओर पत्थरों और कंकड़ोंसे भरे हुए खेत-ही-खेत थे। इन्हींके बीच करील, बेर और तरोता आदिके बाढ़-मारे पेड़-पौधों-मे-से यह गाड़ीकी सड़क जा रही थी—धूल-भरी, कहीं पत्थरोंमे ऊँची-नीची होती, कही चौडी, और कहीं तंग।

धीरे-धीरे सूरज ऊपर चढ़ा। सवेरे शान्त लगता मैदान अब धधकने लगा। उस समयका पक्षियोंका कोलाहल भी कम हो गया। कभी कोई मटमैले रंगकी चिड़िया ऊँची उड़कर बाणकी तरह 'सूँ' आवाज़ करती हुई नीचे आती, उसकी इस आवाज़से वहाँका एकान्त जैसे और भी एकान्त लगने लगा। एक बाज़ नीचे देखता, ज़मीनके समानान्तर तैरता हुआ चला गया और पक्षियोंने चिल्ला-चिल्लाकर कुहराम मचा दिया।

अब आस-पास, कही काले और कही लाल, जोतकर छोडे हुए जमीनके टुकड़े दिख रहे थे। बिना जुती परती जमीनें धूपकी मारसे फट गयी थी। पिण्डली तक पैर धँस जायें ऐसी दरारें जगह-जगहपर पड गयी थी। ये जमीनें आयीं तो मै यह सोचकर कि अब आबादी नजदीक आ गयी, रह-रहकर क्षितिजकी ओर देख रहा था। पर घर दिखायी नही देते थे। पेड़-पौधे भी नहीं दिख रहे थे।

धूप तेज़ हो गयी। सुबह ठण्डी-ठण्डी लगनेवाली धूल गरम हो गयी। मेरे सिरके आस-पास छोटी-छोटी मक्खियोका एक दल भिनभिनाने लगा। उनकी निरन्तर भन-भन आवाज़से मै ऊब उठा। सिरसे टोपी उतारकर उससे मैने उन्हे भगानेकी कोशिश की, परन्तु वे नहीं भागीं। सौ दो-सौ मक्खियाँ मेरे सिरके आस-पास चक्कर काटती हुई मेरा पीछा करती ही रहीं।

ज़रूर यह मनुष्य किसी ऐसे स्थानको जा रहा है जहाँ बहुत-सी मक्खियाँ हैं, इसे उस स्थानका रास्ता ठीकसे मालूम है, यदि इसके साथ जायें तो हम भी वहाँ पहुँच जायेंगे, हमे गन्दा पानी कीचड़ और नालियाँ सभी कुछ मिल जायेगा —इस धारणाको मनमे लिये हुए वे मक्खियाँ मेरे सिरपर मँडराती हुई मेरे साथ आती ही रही।

दो

इर्द-गिर्द सपाट मैदान, बाजरेके लाल खेत, और बीचमें जैसे कोई बेकार चीज फेंक दी गयी हो इस तरह तीस-पैंतीस घर—ऐसा था बन-गरवाडी गाँव। बहुत-से घरोंकी दीवालें मिट्टीकी थी और छप्पर फूसके थे। कुछ थोड़े-से घर अटारीवाले भी थे। हर एक घरके सामने छोटा या बडा सहन था। नालीके गन्दे पानीकी सिचाई पाकर बढ़ा हुआ मीठा-नीम और मुनगा था। घरके पिछवाड़े भेड़ और बकरियोंको बन्द करनेके लिए बबूलके काँटे खड़ो करके अहाते बनाये गये थे। काँटोंकी इस दीवालपर गोबर-मिट्टी चढा दी गयी थी। कहीं दीवालसे सटा गाडीका टूटा पहिया पड़ा हुआ था। सभी गाँवोंमें जैसा होता वैसा ही सब यहाँ भी था। रास्ता नामकी कोई चीज नहीं थी। घर बननेके बाद जो जगह बच रही थी उसीका चलनेके लिए उपयोग होता था। बहुत-से घरोंमें ताले लगे थे। एक घरके सामने दो-तीन बच्चे खेल रहे थे। घरोंकी परछाइयाँ धूलसे भरे रास्तोंपर पड़ रही थीं। उनमें कही कुत्ते और कही काली-पीली मुर्गियाँ आँखें मूँदे बैठी हुई थीं।

मैं सीधा गाँवमें घुस पड़ा। मेरे दायें-बायें घर थे। उनमेंसे औरतोंने झाँककर देखा। बच्चे भीतर भागे। आगे चलकर मुझे एक मैदान मिला। वहाँ नीमका एक पेड था जिसे घेरकर एक चबूतरा बना हुआ था। उस शीतल छायाको देखते ही थके और धूपमें तपे हुए मुर्गेकी तरह मैं जाकर उसमें बैठ गया। टोपी उतारी। पसीना पोंछा। पैर पटककर धूल झट-कारी। ऊपरकी शीतल छायासे पसीना सूखा और अच्छा लगा।

भूख लगी थी, परन्तु यह नहीं मालूम था कि पानी कहाँ है। किसीसे पूछता पर आस-पास कोई दिख नहीं रहा था। मनमें आया बिना पानीके ही खा लूँ। लेकिन जितनी भूख लगी थी उतनी ही प्यास भी। मुँहकी नमी सूखकर

सारा स्वाद नमकीन-नमकीन हो रहा था। उस शीतल छायाको छोड़नेकी इच्छा नहीं होती थी। ऊपर उठाये घुटनेके आस-पास बाँहे डालकर मै यों ही बैठा रहा। आस-पास किसीकी भी आवाज न थी। मेरे सिरपर जो पेडकी शाख थी उसपर कौवेका एक जोडा बैठा हुआ था। वह भी खामोश था।

थोडी देर बाद जिस रास्तेसे मैं आया था उसी रास्तेसे एक व्यक्ति आता हुआ दिखायी दिया। मैने मनमे कहा, उस व्यक्तिके नज़दीक आते ही उसे पुकारूँगा। उससे कहूँगा कि मैं यहाँ क्यों आया हूँ? उससे पूछूँगा कि पानी कहाँ है और फिर रोटी खाऊँगा। मै यह सोच ही रहा था कि वह व्यक्ति गाँवमे घुसा और मेरे सामने आकर खडा भी हो गया।

उसके सिरपर लाल रगका साफा था। वह बदनमें गोल कुरता पहने था। अपने एक हाथमे धोतीके सिरेके साथ ही वह एक लम्बा भाला भी पकडे हुए था। उसके गालकी हड्डियाँ ऊपर उभर आयी थी। नाक सीधी थी। मूँछोंके बाल भूरे थे और धुएँसे धुँधुवाये-से दिख रहे थे। बिना किसी संकोचके उसने अपनी लाल आँखोमे मुझे अच्छी तरह भर लिया। और फिर मूँछोंपर अँगुलियाँ फेरकर धूलमे पीक थूकी। मुझे लगा—उसकी कुछ बूँदें मेरे बदनपर भी गिर पड़ी है। यों ही, हलचल करके मैने अपने पैर नीचे लटका दिये और इधर-उधर देखा। डाँटते हुए-से स्वरमे उसने मुझसे पूछा, "क्यो रे, क्या अण्डे खरीदने आया है तू?"

इस प्रश्नसे मेरी ऐसी हालत हो गयी जैसे किसीने मेरे एक चाँटा जड दिया है। क्षण-भर मेरी समझमे ही न आया कि इसे उत्तर क्या दूँ? यह सारी करतूत मेरे पाजामेकी थी। उसीने मुझे इस तरह नीचे गिरा दिया था। रेज़गीसे भरी थैली लेकर गाँव-गाँवमे अण्डे खरीदनेके लिए घूमनेवाला मुसलमान बना दिया था। मै घबराया, चकराया और थोड़ा झेंपता हुआ हँसा। नीचे लटक रहे पैरोको मैने ऊपर उठा लिया। टोपी ठीक तरहसे पहन ली और बोला, "नहीं जी, अण्डेवाला नहीं हूँ। मै

स्कूल मास्टर हूँ।"

यह स्पष्टीकरण सुनकर पूछनेवालेको यह न लगा कि उसने कोई अनुचित बात कही। बायें पैरका भार दाहिने पैरपर रखकर वह बोला, "मास्टर ?"

उसे इस बातपर विश्वास ही नही हुआ। मैला पाजामा और धारीदार कपड़ेकी धुली हुई कमीज पहने हुए यह घुटने बराबर छोकरा मास्टर कैसे होगा ? जिसे लँगोटी लगाकर स्कूल जाना चाहिए और थूकसे अपनी स्लेट-पट्टी पोंछनी चाहिए ऐसे इस लड़केको मास्टर कौन कहेगा ? यदि किसीने कह भी दिया फिर भी इसे मास्टर बनायेगा कौन ? यों ही बक रहा है।

मुझे अपनी उम्रपर और धोती और कोट न पहननेपर पछतावा हुआ। भाषामे ज़ोर भरकर मैंने कहा, "मेरी यहाँ नयी नियुक्ति हुई है। आजसे ही मै मास्टरकी हैसियतसे अपने कामपर हाज़िर हुआ हूँ।"

हाथमे आडा पकड़े हुए भालेको उसने ज़मीनपर सीधा झण्डेकी तरह सामने खडा किया और तुच्छतापूर्वक बोला, "हाँ, मास्टर ? मास्टरका क्या काम है इस गाँवमे ? शाला चलती कहाँ है ? लड़के भी है गाँवमे ? सरकारको क्या पता नही है ? फ़िज़ूलकी बकवास—"

और साफेके छोरको ठीक तरहसे खोंसता हुआ वह चल भी दिया। जाते-जाते उसने फिर एक बार धूलमे पीक थूकी। उस तंग रास्तेसे जबतक वह जाता रहा, उसकी तरफ़ देखते रहनेकी मुझे हिम्मत न हुई। मै बहुत बुरी तरह झेंपा। बचपनमे फटा जाँघिया पहनकर शाला जाते समय मेरे मनकी जो हालत हो जाती वही हालत इस समय हो गयी थी। सिर्फ़ इसी एक प्रसंगने मेरे तमाम धीरज, आशा और उत्साह-पर तुषारपात कर दिया। लगने लगा इसी समय लौट जाऊँ और इस नौकरीसे इस्तीफ़ा दे दूँ। यह काम मुझसे न हो सकेगा। यहाँ शाला नहीं चलेगी। लड़के नही आयेंगे। मास्टर, शाला और शिक्षा इस गाँवमे

किसी कामके नही है। और गिरे मनसे मैं नीमके चबूतरेपर बैठा रहा। थोडी देर पहले मुझे जो भूख और प्यास लगी थी उसे मै थोड़ी देरके लिए भूल गया। यह सोचकर कि गरमीमे उबलते इस गाँवमे इस समय मैं क्यों आया, मुझे बहुत बुरा लगने लगा।

और फिर एक सफेद मूँछोवाला बूढ़ा लाठी टेकता हुआ खेतकी तरफ़से आया। उसकी भौंहे भी सफ़ेद हो चुकी थीं। उसके हाथमे चाँदीका कड़ा था। कन्धेपर रखे कम्बलको उसने अपने कड़ेवाले हाथसे कसकर पकड़ रखा था। जूतोंके भीतरसे पैरोंको घसीटता हुआ वह आया। मेरे सामने आकर रुक गया। माथेपर हाथ रखकर उसने मुझे ध्यानसे देखा। जैसे किसी भूली हुई भेड़को पहचाननेके लिए उसकी पहचानके संकेतोंको देख रहा हो। फिर बोला, "यहाँ कैसे बैठे हो बेटा ?"

मैने कहा, "मै मास्टर हूँ। आजसे मेरी नियुक्ति इस गाँवमे हुई है।

"अरे, मास्टर होकर यहाँ क्यो बैठा है ? स्कूलमे जाकर बैठ।"

बूढ़ेके इन शब्दोसे मुझमे कुछ हिम्मत आयी। उस भालाबरदार-जैसा यह नही है।

"मुझे मालूम नही यहाँका स्कूल कहाँ है ?"

सामनेवाली एक लम्बी इमारतको लाठीसे दिखाता हुआ बूढ़ा बोला, "वह देख लम्बी इमारत। वही तो है स्कूल। वह सरकारी मकान है। उसी मकानके आखिरी दो कमरोंमे स्कूल लगता है।"

"यह ?"

"हाँ, वही। जा। बैठ वहाँ जाकर।"

"अकेला बैठकर क्या करूँगा ? लड़के कहाँ है ?"

"लड़के गये हैं अपनी भेड़ें और बकरियाँ चराने। पर वे वापस आयेंगे। तू क्या समझता है कि जंगलमे ही रह जायेंगे ?"

"पर एक शाला भर जाये इतने लडके है इस गाँवमे ?"

'है, बहुत हैं और आगे हो जायेंगे। गाँवमें हर साल दस-बारह

शादियाँ होती हैं, बच्चे पैदा होते जायेंगे। तू पढाता जा, लड़कोंकी फ़िक्र क्यों करता है ?"

उसकी बातपर मुझे हँसी आयी। चबूतरेके नीचे कूदकर मैंने अपनी गठरी उठायी और कहा, "कृपाकर मुझे बतलाइए पानी कहाँ है ? जिससे मै खाना खा सकूँ। खाना मैं साथ ले आया हूँ।"

बूढ़ेने कहा, "इस गाँवमे पानीकी बड़ी तकलीफ़ है। गरमीमे सब कुएँ, नाले और नदियाँ सूख जाती है। एक टंकी है। देख, वह दिख रही है।"

मैंने उस दिशाकी ओर देखा। गाँवके नज़दीक पत्थर और चूनेकी बनी एक टंकी दिखी।

"हम लोग गड़रिया है। हमारे हाथका पानी पी सकते हो तो बोलो, मँगाये देता हूँ।"

"न पीनेको क्या हो गया ? पर यदि लोटा मिल जाये तो मै स्वयं जाकर ले आऊँगा।"—मैंने कहा।

बूढ़ेने वही खड़े-खड़े पुकारा, "अरी ओ अंजू, मास्टरके लिए एक लोटा-भर जल तो ले आ।"

दूर एक मकानसे किसी स्त्रीने झाँका। बूढ़ेने फिरसे चिल्लाकर वही कहा और फिर हम दोनों स्कूल आये। तहसीलके सदर मुकाममे, पहलेवाले मास्टरने मुझसे कहा था, "चार्ज देने लायक़ वहाँ कोई सामान ही नही है। लड़के ही नही हैं तो शाला कैसी ? यह ताली ले जाओ और मै यहींसे रिपोर्ट किये देता हूँ कि तुम्हे चार्ज दे दिया।"

और उसने मुझे शालाकी ताली थमा दी थी।

ताला खोलकर मैंने स्कूल खोला। गन्दी बासकी झाँस आयी। नीचेका ऊबड़-खाबड़ फ़र्श जगह-जगहपर उखड़ गया था। धूल और चिड़ियोकी बीटसे भर गया था।

बूढ़ेने कन्धेपरका कम्बल उतारा और उसीसे थोड़ी-सी जगहका कचरा

साफ़ किया। उसे बिछाया नही, यूँ ही डाल दिया और बोला, "बैठ।" और फिर हाथ नीचे टेककर वह भी बैठ गया। लाठीको समानान्तर रखता हुआ बोला, "हाँ, अब निकाल अपना खाना। जल अभी लाती है छोकरी।"

मैंने गठरी खोली। पुरानी धोतीके टुकडेमे बँधा हुआ खाना निकाला। मैंने कहा, "आप खायेंगे, बाबा ?"

अपने झुर्रीदार चेहरेपर मुसकराहट बिखेरकर बूढ़ा बोला, "हम क्या अभीतक बिना खाये रहेगे ? दो बार खा चुके है और अब तीसरा वक़्त आ गया है। तू खा।"

मै सकुचा-सा गया। पर भूख संकोचकी परवाह करनेवाली न थी।

एक काली कलूटी लड़की आयी। उसने बाहरसे ही ड्योढ़ीमें पानीका लोटा रख दिया और मेरी तरफ़ एक बार देखकर चल दी।

घुटना उठाकर बैठा हुआ बूढ़ा कमरसे सुरतीकी थैली निकालकर उसमें अँगुलियाँ डालने लगा।

मुझे कडाकेकी भूख लगी थी इसलिए जल्दी-जल्दी खा रहा था। खाते हुए उस बूढ़ेकी तरफ़ देखने लगा। अगर सिरका साफा और आधी धोती छोड़ दें तो उसके बदनपर दूसरा कोई वस्त्र नहीं था। जिस मिट्टीमे वह दिन-भर भेडोके पीछे घूमता था उस मिट्टी और उन भेड़ोंकी तरह उसका भी रंग काला-स्याह था। बदन इकहरा था। नंगे पैरोपर झाड़ियोंके काँटे लगकर सफेद खरोंचे दिख रहे थे। बूढ़ा बिलकुल पक गया था। कबूतर-के पंख सरीखी भौहे, सफ़ेद भरी हुई मूँछें, अंगुल-भर बढ़ी हुई सफ़ेद दाढ़ी और सीनेपर सफेद-भूरे बाल। उसकी उम्रका अन्दाज लगाना मुश्किल था, पर बूढा बिलकुल थक चुका था। चेहरेपर शिकनोका जाल था। हाथ और पैरकी नसें फूल गयी थीं। उनमे जगह-जगहपर गाँठें पड़ गयी थी।

तमाकू मुँहमे डालकर थैलीको ठीकसे बाँधते हुए उसने पूछा, "किस गाँवका है तू ?"

मैंने कहा, "यहीं नज़दीकका ही हूँ—विभूतवाड़ीका।"

"वहांके कौन हो तुम ?"

मैंने बूढ़ेको आवश्यक जानकारी दे दी। उसने मेरे गाँवके कुछ लोगों-से अपनी पहचान बतायी।

"तब तो तू हमींमें-से है।" कहकर मेरी पीठपर हाथ टिकाया और वह थूक सके इसलिए बैठे-बैठे ही देहलीके पास सरका।

"मुझमें बड़ी हिम्मत आ गयी। मुझे लगा गडरियोंके इस गाँवमें मैं अकेला नहीं हूँ। मेरे पास आकर मुझसे बातें करनेवाले, ममत्व दिखानेवाले भी यहाँ हैं। इसी तरहके दस-पाँच आदमी यदि मुझे यहाँ मिल गये तो मेरी चैनसे कट जायेगी।"

थोडी देरके बाद मुझसे बिदा लेकर बूढा जंगल चला गया। अब मैं अकेला था। पहलेवाले मास्टरने छतकी शहतीरोंपर खरिया-मिट्टीसे भिन्न-भिन्न कहावतें लिखी थीं। दिशाएँ दिखानेके लिए उन-उन दिशाओंके नामों-की रंगीन तख्तियाँ दीवालोंपर लगी थीं। छतके जोड़पर लगे खम्भेसे थूहरकी एक शाखा लटका दी गयी थी। उसपर पिस्सू और मच्छरके दल बैठे हुए थे। छतमें जहाँ जगह मिल गयी वहीं चिडियोंने घोंसले बना लिये थे। उनमें-से सनके धागे और चीथड़े लटक रहे थे। इधर-उधर फड़फड़ाकर चिडियाँ चूँ-चूँ कर रही थी। एक मेज, एक कुरसी और एक काला तख्ता—सब मिलाकर कुल इतना ही सामान था। मेज़के पास लकड़ीका एक सन्दूक़ था। मैंने उसे खोलकर देखा। उसमें तख्ता पोंछनेका झाड़न, एक रूल, पुराना रजिस्टर, हाज़िरीकी किताब, खरिया-मिट्टीके खाली डिब्बे, दावात, क़लम और सटर-पटर चीजें थी।

मैंने गठरीसे अपनी चद्दर निकाली और उसे नीचे बिछा लिया। मच्छरों और पिस्सुओंके आक्रमणसे बचनेके लिए सिरपर धोती ओढ़कर मैं चद्दरपर लेट गया। इस तरह अकेले सोना मेरे लिए नयी बात न थी। परन्तु निर्जन और धूपसे तपे हुए गाँव और खाली स्कूलके कारण मैं और

भी अधिक अकेलापन महसूस कर रहा था। चिड़ियाँ चिल्ला रही थीं। एकाध चिडियाँ चूँ-चूँ करें तो सुननेमे अच्छा लगता है। पर दस-पाँच चिड़ियाँ निरन्तर चिल्लाने लगें—फड़फड़ाने लगें तो सिर पका देती हैं। पर इससे बचनेका कोई उपाय न था। दरवाजा बन्द कर देता फिर भी दीवालपर-से भीतर आनेका रास्ता था। मैं आँखें बन्द कर सो गया। थकावट, पेट-भर खाना और शीतल छायाके कारण मुझे गहरी नीद आ गयी।

तीन

मै गहरी नीदसे जागा। पड़े-पडे ही, खुले द्वारसे सामने देखा तो दिन पूरा डूब चुका था और जंगलसे लौट रहो भेड़ोंका कोलाहल सुनायी पड़ रहा था। मै बहुत सोया था और अब भी उठनेको इच्छा नही हो रही थी, क्योंकि मेरे पैर बुरी तरह दर्द कर रहे थे। दोनों हाथोंको सिरके नीचे रखकर मै कुछ समय तक शहतीरकी ओर पड़ा देखता रहा।

बाहर भेड़ोंका शोर निरन्तर बढ रहा था। गड़रियोकी ऊँची आवाजें कभी पाससे और कभी दूरसे कानोंमे पड रहो थी। गड़रियोके कुत्ते भूँक रहे थे, मुर्गे कुक्कुडकूँ कर रहे थे, चिड़ियाँ और कौवे शोर मचा रहे थे। और इनसानोके बोलनेकी आवाजें भी सुनायी पड़ती थीं। कुछ समय पहले निर्जीव लगनेवाला गाँव एकदम जीवित हो गया था—बड़े जोशसे हिलने लगा था।

मैं बाहर आया। मैदानमे आकर खड़ा हो गया। जिस रास्तेसे मै आया था, वह भालाबरदार और वह बूढ़ा आया था, वे सब रास्ते जंगलसे लौटकर घर आनेवाली भेड़ोसे भर गये थे। वे प्राणी गरदन नीचे झुकाकर जल्दी-जल्दी चल रहे थे। उनके पैरोंको दबी आवाज़ें आ रही थीं। धूल उड़ रही थी। धूलपर सैकड़ों खुरोंके निशान बन रहे थे। और धोती

खोंसे हुए काले-कलूटे गड़रिये कन्धेपर आड़ी लाठी रखकर मुँहसे अजीब आवाज़ करते, उनके पीछे आ रहे थे। उन भेड़ोंके समूहमे बकरियाँ थीं। झबरे कुत्ते थे।

पश्चिम दिशा लाल सुर्ख हो गयी थी। पुरवा बह रही थी। सफेद बादलोंके छोटे-छोटे पुंज लाल पश्चिमकी ओरसे नीली-काली प्राचीकी तरफ़ फैले हुए थे। ज़मीनकी तरह जैसे आसमानमे भी सफेद भेड़ें खरककी ओर जा रही थीं।

बच्चेवाली भेड़ें दौड़ती-दौड़ती आयी। आठ-दस दिनके मेमने घर रह गये थे। वे लमटंगे पैरोंपर शरीरको तौलते हुए चलने लगे। पतली गुलाबी जीभें बाहर निकालकर कातर स्वरमे मिमयाने लगे और भेड़ोंकी भीड़ आते ही उनके थनोंमें हूदा मारने लगे।

घर-घरमें, जंगलसे लौटकर आयी गड़रियोंकी स्त्रियोंने चूल्हे जलाये। छप्पर पड़े हुए घरोंसे उनका धुआँ आकाशमे चढ़ने लगा, गड़रिये भेड़ोंको अहातेके भीतर बेड़ने लगे।

बातकी-बातमे घना अँधेरा छा गया। भेड़ोंका शोर, कौवो और चिड़ियोंका कोलाहल और मनुष्यकी आवाजें सब शान्त हो गयी।

शालाके बाहरके चबूतरेपर पैर नीचे लटकाकर मैं बैठा रहा। ऊपर चाँदनी छा रही थी। नीचे दीये टिमटिमा रहे थे, हवाके सर्द झोंके आ रहे थे।

कोई अँधेरेमे-से आया और सामनेवाली बगलकी हनुमान्‌जीकी मढ़िया-मे दीया जलाकर चला गया। मेरे मनमे आया कि उस प्रकाशमें जाकर खाना खा लूँ और छोकरीके द्वारा लाये गये बचे हुए पानीको पी लूँ। परन्तु मैंने यह किया नहीं। खम्भेकी कुरसीसे टिककर मैं उस अँधेरेकी ओर बैठा हुआ देखता रहा।

आजसे आगे तीन साल तक मेरा गाँव यही होगा। यहीं मुझे रहना होगा। इन्हीं लोगोंसे मिलना-जुलना होगा। उनका विश्वास और प्रेम

प्राप्त करना होगा। नाम कमाना होगा। और यह सब करते हुए खुद-खुदाकर घूड़ा बने हुए और पक्षियोंकी बीटसे तथा मच्छरों और पिस्सुओं-की महकसे भरे हुए इस स्कूलकी तरक़्क़ी करनी होगी। लड़कोंको इकट्ठा करना, उनमें पढ़नेकी रुचि पैदा करना, मेरा गाँवमें रहना और प्रतिष्ठा प्राप्त करना—इन सबके लिए एक बड़ी रुकावट यह थी कि मेरी उम्रकम थी और मैं दुबला-पतला था। गाँव तो ऐसा उजड्ड था कि जहाँ आज तक दस-पाँच लड़के नियमित रूपसे स्कूलमें आये ही नहीं। यह सब कैसे हो सकेगा ? कैसे निभेगा ?

सामने पैर बजे। हनुमान्‌जीकी मढ़ियाके दीयेका मन्द-मन्द पीला-लाल प्रकाश बाहर आ रहा था। उसकी पार्श्व-भूमिपर कोई काली आकृति दिखायी दी। मुझे अँधेरेमें कुछ भी नहीं सूझ रहा था। सिर्फ़ इतना ही दिखा कि कोई पास आया है। मैं ज़रा ठिठका।

"कौन, मास्टर है क्या ?"

मैंने बूढ़ेकी आवाज़ पहचान ली।

"हाँ, मैं ही हूँ। आइए।"

"रोटी खा ली ?"

"नहीं। खाऊँगा अभी।"

"तेरे लिए बकरीका दूध लाया हूँ।"

मैंने बरतन रखनेकी आवाज़ सुनी। उस दिशासे हाथ बढ़ाया तो हाथ बरतनसे छू गया।

इसी बीच और भी कोई अँधेरेमें-से आया और खाँसता हुआ सीढ़ीपर बैठ गया।

बूढ़ेने पूछा, "कौन है रे ?"

"मैं तो हूँ, पटेल साहब।"

"कौन नन्दू चौकीदार ?"

"जी।"

"अरे, मास्टर अँधेरेमें बैठा है। मेरे घर जा और एक दीया ले आ।"

"कौन मास्टर ?"

बूढ़ेको उससे शुरूसे आखिर तक सब बातें कहनी पड़ीं। कौन मास्टर है, किस लिए आया है, कहाँका है, किसका कौन है—इन सब बातोंका उत्तर पटेलने दिया। नन्दूने सब सुन लिया और फिर वह दीया लानेके लिए चल दिया। लोटा, गिलास, लालटेन, बिस्तर आदि चीजें अत्यन्त जरूरी थीं। मुझे आते समय ये सब चीजें अपने साथ ले आनी थी। पर यह बात उस समय मेरे ध्यानमे न आयी।

नन्दू चौकीदार दीया लानेके लिए चला गया। उसके वापस लौटते तक और भी दस-बारह आदमी आये और कम्बल नीचे डालकर धूलमे ही बैठ गये। एक दूसरेकी आवाजसे ही वे परस्पर पहचान सके। किसीकी भेड़को भेड़ियेने तोड़ दिया था। इस विषयका पूरा ब्यौरा दिया गया। कहा गया कि उस भेड़ियाकी मादा किसी झाडीमे ब्यायी है। वह वहीं रहती है। रातको जाकर मार दें तो बला टल जायेगी। किसीने उसकी खिल्ली उड़ायी। उसकी रायमे जानवर इस तरहसे इतनी आसानीसे मिल जाये यह हो ही नहीं सकता था, क्योंकि वह हमेशा घूमता रहता है। और यह सब हो जानेपर किसी आदमीने खबर दी कि उस भेडको किसी भेड़ियेने नहीं तोड़ा है, बल्कि कुत्तेने ही मार डाला है। वह कुत्ता फलांका है और यह बात फलांने देखी है।

साफेके छोरकी आड़ करके नन्दू चौकीदार दीया ले आया। उसके उजेलेमे मैंने देखा कि बारहसे ज्यादा आदमी धूलमे बैठे हुए है। प्रायः किसीके भी बदनमें कुरते न थे। प्रायः सभीके पास मोटे कम्बल थे। किसीने गोला-सा बनाकर उसे नीचे डाल दिया था। एकाध लोई भी ले आया था।

नन्दू-द्वारा लाये दीयेके उजेलेमे मैंने खाना खा लिया और स्कूलसे बाहर आया।

पटेलने पूछा, "खा ली रोटी ?"

"मैंने कहा, "हाँ।"

खाँसनेसे पता चला कि सभा अब भी बैठी हुई है। एक बार मनमे आया कि भीतरका दिया बाहर ले आऊँ। परन्तु वह हवामें बुझ जाता और मेरे सिवा किसीको उसकी ज़रूरत भी नहीं मालूम होती थी।

अबतक मैं जान गया था कि मेरे नजदीक बैठा हुआ और 'बेटा' कहनेवाला यह पका हुआ बूढा गाँवका पटेल है। लोग उससे पटेल कहकर बातें करते थे।

कुछ समयके बाद अँधेरेमे बैठी सभासे बूढा पटेल बोला, "अरे सुनो, मास्टर आया है। कलसे अपने लड़के स्कूल भेजा करो।"

किसीने खखारकर थूका।

हलकी आवाजमे अपने पडोसीसे कोई बोला, "गाँवमे लड़के है कहाँ ?"

जरा तेज़ आवाज़मे पटेलने कहा, "क्यों रे, क्या हमारे गाँवकी सब औरतें बाँझ है ?"

"यह बात नहीं है, पटेल। पर ऐसे लड़के कहाँ है जिन्हे स्कूल जानेकी फ़ुरसत हो ?"

"एक भी नहीं है ? क्या सभी काम-काजो है ?"

"नही, परन्तु भेड़-बकरियोंको चराने जाते है। खाली कोई नही है।"

क्षण-भर उलटे-सीधे प्रश्नों और उत्तरोंका कोलाहल बढ़ा। फिर मैं बोला, "छह-सात सालके लड़के बकरियाँ चराते है, वे अकेले जाते है क्या ?"

"अकेले कहाँ जाते है ? अपने बड़े भाइयोंके साथ जंगलमे घूमते रहते हैं। अगर छोटे हुए तो चराने दो-तीन इकट्ठे मिलकर जाते है।"

"तो फिर जो ऐसे लड़के है, उन्हे स्कूलमे भेजो। वे यदि लिख-पढ़ लेंगे तो उनका कोई नुक़सान न होगा। अगर होगा तो फ़ायदा ही !"

दूरसे किसी सुरती-भरे मुँहसे आवाज़ आयी, "और वे खायेंगे क्या ?"

मुझे क्षण-भर कोई उत्तर ही न सूझा। यह प्रश्न कि लड़के शाला-

मे आवें तो उन्हें कौन खिलावे और कैसे खिलावे, मेरे मनमे कभी न उठा था। मै यही समझता था कि छोटे लडकोंको माँ-बाप कमाकर खिलाते है। परन्तु बूढ़ेने ही तुरन्त उत्तर दे दिया, "जिसके लड़के भूखों मरने लगें, वह मेरे घर आकर अनाज ले जाये। नामर्द कहीके? हर काममे कुछ-न-कुछ अड़ंगा लगाते ही रहते हो। जाने कैसी आदत है तुम लोगोंकी? सरकारने एक अच्छा स्कूल दिया। मास्टर दिया, तब लड़कोंको स्कूल भेजनेमे क्या बिगड़ता है तुम लोगोंका?"

अब ज़रूर सबका रवैया बदला। लड़के कौन-कौन भेज सकेगा, इस-पर चर्चा हुई। किसीने कहा, हमारा सदू जायेगा, किसीने कहा हमारा महादू जायेगा। एक दूसरेसे कहने लगा, तुम्हारा तुका भी जायेगा, इसका सखा भी जायेगा। इस तरह होते-होते दस-बारह लड़के हो गये।

पटेल बोला, "ले हो गयी तेरे मनकी बात, मास्टर। अब कलसे जुट जा अपने काममे।"

चर्चाका इस प्रकार अन्त हुआ। इस बीच कोई-कोई घर भी हो आये थे। मैं बैठा था यह देखता हुआ कि ये लोग कब जायेंगे। पर उनके जानेके कोई आसार नज़र नही आ रहे थे। वे इधर-उधरकी मौसम आदिकी बातें करने लगे। उनके बीच परस्परके सुख-दुःखोंकी चर्चा चल पड़ी। मैंने धीरेसे पटेलसे कहा, "अच्छा तो मैं जाकर सोऊँ?"

"हाँ, हाँ, तू जा। लड़के आ जायेंगे सुबह। तू फ़िकर न कर।"

भीतर जाकर मैंने चद्दर बिछायी और धोती ओढ़कर लेट गया। दीया बुझा दिया। बाहर बातें चल रही थी तभी मेरी आंख लग गयी।

बीचमे जगा तब बाहर चन्द्रमा उग आया था और उन लोगोंमे-से कोई सरकारी मकानमें, कोई उसी मैदानमे, जहाँ बैठे हुए थे, उसी कम्बलको बिछाकर और ओढ़कर लेट गये-से थे। खुले हुए आकाशमे सुन्दर चाँदनी खिली थी। बाहर मैं बहुत देर तक खड़ा रहा। सामने गाँवकी तरफ़ दो कम ऊँचे छप्पर थे। उनकी छाया पड़ रही थी। बीचकी गलीसे उस

तरफ़का पत्थरोंका ढेर दिख रहा था और वहीं पास ही खुला हुआ मैदान था—बहुत दूर तक फैला हुआ चरागाह। उसके बाद दूरपर धुँधले-से दिखनेवाले पेड़-पौधे थे। और जहाँ मैं दोपहरको बैठा था वह नीमका पेड़ चुपचाप खड़ा था। उसकी चोटीपर चार सफ़ेद बगुले स्तब्ध बैठे हुए थे।

चार

मुझे आये आठ-दस दिन हो चुके थे और अभीतक शालामें लड़के नहीं आ रहे थे। शाला नहीं लगती थी। कभी किसी दिन दो-तीन लड़के आ भी जाते तो घण्टे-आध घण्टेके बाद ही ऊब जाते। पेशाबके बहाने बाहर जाते और फिर वापस लौटते ही न थे। इनमें भी यदि कोई नियमित रूपसे आने लगता, तो कभी उसका बाप, कभी उसकी माँ आकर रोटी खानेके बहाने उसे घर ले जाते और भेड़ों और बकरियोंके पीछे जंगल भेज देते। बहानेबाज़ी करनेके लिए कभी मैं यदि किसी लड़केको डाँट देता तो वह रोने लगता और घरसे उसकी माँ दौड़ी आती। "क्यों बाबा, तेरे कोई बाल-बच्चे नहीं है क्या? भाडमें गया तेरा स्कूल। बेटा, उठ, तू चल अपने घर।" इस तरह साफ़-साफ़ कहकर अपने लड़केका हाथ पकड़ घर ले जाती। इस प्रकार स्कूल चल रहा था। लोग रोज़ नित्यकी भाँति स्कूलके सामनेवाले मैदानमें रातको इकट्ठे होते। उनके सामने यह बात निकालता, तो वे कहते, "अभी लड़कोंकी आदत नहीं पड़ी है। महीना-पन्द्रह दिन निकलने दे।"

इतना समय निकलने देनेके सिवा मैं भी और क्या कर सकता था?

इस अवधिमें पटेलने मुझे रहनेके लिए एक छोटा-सा घर दे दिया था। वहाँ मैंने अपनी गृहस्थी जमायी यानी पत्थरका चूल्हा बनाया। इतवारको अपने गाँव जाकर दो-तीन बरतन ले आया और हाथसे रसोई बनाकर

खाने लगा।

एक दिन रातको भाला लेकर वही भालाबरदार आया। उसे लोग दादू कहते थे। उस समय दीयेकी रोशनीमें बिस्तरसे टिका हुआ मैं यूँ ही बैठा हुआ था। दादू आया और हाथ-पैर पसारकर दरीपर बैठ गया। उसने हाथमें रखे भालेको एक कोनेमें दीवालसे टिकाकर रख दिया। फिर बोला, "अच्छा, यही घर आया तेरे हिस्सेमें!"

अभीतक इन लोगोंके कड़े बोल सुननेकी आदत मुझे हो गयी थी। आदर-सूचक सर्वनामका उन्हें पता ही न था। यदि तू या तुमका प्रयोग प्रेमसे, विशेष परिचयसे हो, तो कानोंको बुरा नही लगता। पर कोई भी अपरिचित गड़रिया "क्यों रे मास्टर?" कहता तो मुझे अजीब-सा लगता। इस वक़्त दादूने मुझसे 'तू' कहा, तो वह मुझे चुभ गया।

जेबसे चिलम निकालकर उसने तमाकू भरी। उसे पैरोंकी अँगुलियोंमे दबाकर खड़ी की। फिर चकमकसे जलायी और धुएँके गुब्बारे निकालने लगा।

पहली मुलाक़ातसे ही इस मनुष्यके बारेमें मेरे मनमे गाँठ पैदा हो गयी थी। ऊपरसे पूछ-ताछ करनेपर मुझे पता चला था कि सिर्फ़ आवा-रगी करके ही यह शख्स जी रहा था। गाँवपर उसका बड़ा प्रभाव था। तहसीलके अफ़सरोंके साथ उसका मेल-मिलाप था। उनके साथ उठा-बैठा करता था। थोड़ा पढ़ा-लिखा होनेके कारण बहुत बार उससे सलाह भी पूछी जाती थी।

नाक और मुँहसे धुआँ छोड़कर उसने चिलम बुझा दी और फिर कमरेमें नज़र घुमाकर बोला, "तेरे पहलेका मास्टर भी इसी कोठरीमें रहता था।"

मैंने उड़ते हुए सुन लिया था कि उस मास्टरने गाँवमे कुछ गड़बड़ी की थी, जिससे गाँवके लोगोंने उसकी काफ़ी मरम्मत की थी, उसे बेहद पीटा था। उसकी याद आते ही मेरे पेटमें भयकी टीस उठी। फिर भी

चेहरेपर ऐसा कोई भाव न दिखाकर मैंने कहा, "अच्छा इसी कोठरीमें वह भी रहता था ?" परन्तु मेरी आवाज़ घबरायी हुई भेड़की तरह निकली थी।

दादू बोला, "ठीकसे नौकरी करना छोड़कर वह बेटा गाँवमे 'दादा-गिरी' करने लगा। सीधा हमें लोगोंके घरमे चूल्हे तक पहुँच गया। मैंने उसे दो-तीन बार सावधान भी कर दिया था। परन्तु उसने सुना नहीं। उसे लगा, मैं सरकारी नौकर हूँ। ये बेवकूफ गड़रिये मेरा क्या उखाड़ लेंगे ? इसी ऐंठमें मुफ़्तमे पिट गया साला।"

इतना कहकर उसने अपने कठोर चेहरेपर खुशी झलकायी और अपनी लाल आँखें मेरी ओर घुमायीं। मैं डरा, थोड़ा सँभलकर बैठ गया।

कोनेका भाला उठाकर उसने अपने पास रख लिया और फिर बोला, "एक दिन इसी तरह बैठा हुआ था। यही समय रहा होगा। मैं आया। न आव देखा और न ताव, इस भालेको उलटा पकडकर लगा पीटने। इतना मारा कि जबतक गिरा नही, मारता ही रहा। धोती गीली हो गयी उसकी। मेरे पैर पड़ने लगा। रोने लगा। परन्तु मुझपर गुस्सा सवार था। दस-पाँच ठोसे मारकर जब देखा कि वह नीचे गिर पडा है, तब मैंने उससे कहा, चुपचाप लड़कोको पढा गाँवमे। अगर यहाँ दादा-गिरी की तो सीनेमें भाला घुसेड़कर जान ले लूँगा।"

दीयेकी लाल रोशनी दादूके हड्डियाँ उभरे चेहरेपर पड़ रही थी। उसकी मूँछें अस्त-व्यस्त थीं और बीड़ीसे काला हुआ होंठ उसने सामने निकले हुए दाँतों-तले दबा रखा था। मुझे सूझता न था कि मैं क्या कहूँ। अनजाने 'हें—हे' करके मैं हँस दिया, और दरवाज़ेकी ओर देखने लगा। मुझे लग रहा था कि इस समय यदि कोई आ जाये तो अच्छा हो। पर बाहर घोर अन्धकार छाया हुआ था।

मूँछें साफ़ कर दादू बोला, "यह हँसनेकी बात नहीं है मास्टर। तू अभी नया आया है। ठीकसे अपना काम कर। गाँवमे कोई गड़बड़ी न

करना। लड़के स्कूलमे आवें, तो उन्हें पढ़ा। गाँवको पढ़ानेकी झंझटमें मत पड़, समझा ?"

ज़मीनपर रखी चिलम और चकमक उठाकर उसने साफ़ीके साथ अपने अंगरखेकी जेबमे रखी, भाला उठाया और सीना तानकर बाहर चल दिया। अँधेरेमें अदृश्य हो गया।

कुछ देर तक मैं चुपचाप बैठा रहा। मेरे माथेपर पसीना आ गया था। साँस रुक-सी गयी थी। मनमे आया, झट-से उठूँ और दरवाज़ेकी कुण्डी भीतर लगा लूँ। परन्तु यह मामूली काम मेरे हाथसे जल्दी न हुआ।

कमरेमे बिछे कम्बलपर मैं अलसाया-सा चित लेट गया और मुझे लगा जैसे खुले दरवाज़ेसे कोई भीतर आया है। मेरी गरदनके बाल खड़े हो गये। मै तड़ाकसे उठ बैठा और सामने देखने लगा।

बाहरके अँधेरेसे लगभग बीस-बाईस वर्षका एक तगड़ा और मज़बूत नौजवान भीतर आया और चुपचाप ड्योढ़ीके पास दीवालसे टिककर बैठ गया। वह मेरी पहचानका न था। मैने उसे गाँवमे आज तक कभी न देखा था। भर्रायी हुई आवाज़मे मैने पूछा, "कौन है ?"

"मै हूँ, आयबू।"

मै कुछ न समझ सका। पानीमे भींगनेवाले कुत्तेकी तरह भीतर आकर बैठनेवाला यह आयबू कौन है, यह मेरे ध्यानमे जल्दी न आया। पर वह घुटने टेककर और उसके आस-पास बाँहे डालकर, चुपचाप बैठा हुआ था। फिर उसने मुँह घुमाकर मेरी ओर देखा। दीयेके उजेलेमे मैने उसकी बारीक आँखें और प्रसन्न मुख देखा। और फिर मेरा सारा भय दूर हो गया।

"क्या इसी गाँवके हो ?"

"नहीं, मैं एखतपुरका हूँ।"

"एखतपुरका ? बड़ी दूर चले आये इधर ? कहाँ ठहरे हो, यहाँ ?"

आयबूने सिरपर ज़ोरसे दबाकर पहनी हुई टोपी उतारी और नीचे

जमीनपर रख दी। दोनों हाथोंकी हथेलियोंको जोड़कर उसने सारे कमरेमे नज़र दौड़ायी और कहा, "मेरा कोई नहीं है।"

और मुझे लगा, जैसे वह मेरा कई दिनोंका कई बरसोंका परिचित है। फूले गालोंवाला और लाल नाकका यह आयबू क्यो घूम रहा होगा, कैसे जी रहा होगा, इसका विचार करनेकी मुझे ज़रूरत न पड़ी। "तुमने गाँव क्यों छोडा ? ठीक यही क्यो आये ? क्या करनेवाले हो ? कहाँ रहोगे ? बदनपर जो कपड़े है उन्हें छोड़कर दूसरे और कपड़े तुम्हारे पास क्यों नहीं है ?" आदि प्रश्नोंको उससे पूछनेकी मुझे आवश्यकता न पड़ी। फटी कमीज़ और मैला पाजामा पहननेवाले आयबूकी मुझसे अधिक बातें हुई ही नही। सुबहके नाश्तेके लिए बचाकर रखी हुई एक रोटी मैने निकाली, ऊपर थोड़ा तेल डाला, मिर्च लगायी और वह आयबूको खानेको दे दी।

जैसा बैठा था, उसी हालतमे उसने रोटीको अपने एक हाथमे रख लिया और बातकी-बातमे उसको खा डाला। चप-चप आवाज़ करनेवाला उसका मुँह चुप हो गया। मैने उसे लोटा-भर पानी दिया जिसे वह अँजुरीसे गट-गट पी गया। फिर देहलीके नीचे गया और कुल्ली करके लौट आया। दीवालके पास उसने उस खाली लोटेको औंधा दिया और आस्तीनसे मुँह पोछकर इधर-उधर देखता हुआ पहले-जैसा ही बैठा रहा।

मैं भी दस-पाँच मिनिट शहतीरकी ओर देखता हुआ बिस्तरसे टिका पड़ा रहा।

और आयबूकी जड़ साँसें सुनायी पडने लगी। उसी स्थितिमे घुटनोंमे सिर डालकर वह सो गया था। आराम मिल गया, पानी पीने लायक़ खानेको मिल गया, रोटी मिल गयी। मीठी नीद लग गयी। मैने अपने नीचेका कम्बल उठाकर उसपर डाल दिया। कम्बल बदनपर पड़ते ही वह जाग गया। जड़ आँखोंसे उसने एक बार मेरी ओर और एक बार कम्बल-की ओर देखा। यह देखते ही कि मैं चद्दर बिछाकर उसपर सो रहा हूँ, उसने कम्बल उठा लिया और आधा नीचे डालकर आधा ऊपरसे ओढ़

लिया। दूध-भात खाकर बिल्ली जिस तरह सोती है उसी तरह आयबू सो गया। धीरे-धीरे उसकी खर्राटें सुनायी पड़ने लगीं।

मैंने अपने मनमें निश्चय किया कि उस भालाधारी दादूसे अब आगे मैं ज़रा भी नहीं डरूँगा। वैसे देखा जाये तो स्वभावसे भी मैं भीरु बिलकुल न था। गत छोटे-से जीवनमें मैंने अनेक भले-बुरे अनुभव लिये थे। साधारण लड़कोंके हिस्सेमें शायद ही आवे ऐसा जीवन मैंने भोगा था। परन्तु उसकी तुलनासे यह अनुभव भिन्न था, इसलिए एकदम मैं घबरा गया था। किन्तु उस घबराहटकी उलटी प्रतिक्रियाके रूपमें ही शायद विलक्षण अभयता मुझमें आ गयी। और हवाके लिए कमरेका द्वार खुला रखकर मैं भी गहरी नींदमें सो गया।

पाँच

बनगरवाड़ीमें लगभग सभी आबादी गड़रियोंकी थी। ये लोग काले रंगके थे और हमेशा खुले-बदन घूमनेवाले। बाहरकी दुनियासे बिलकुल अनजाने। उन्हें यह भी ज्ञान न था कि बाहरी दुनियासे वे अनभिज्ञ हैं। वे पौ फटते ही जाग जाते। रात-भर थानमें बेड़ी हुई भेड़ोंको लेकर घरसे बाहर चल देते। चरागाह गाँवसे लगभग तीन मील दूर था। वे वहाँ जाते। सौ-सौ भेड़ोंके पीछे एक-एक गड़रिया और एक-एक कुत्ता रहा करता। नीचे गरदन लटकाये फुरर-फुरर आवाज़ करती हुई भेड़ोंके दल निरन्तर हिलते रहते। उनके ऊनमें चिपककर इधर-उधर सफ़र करते अनेक प्रकारकी घासोंके बीज जगह-जगहपर गिर पड़ते। और अगले साल भेड़ोंके चरने लायक़ घास वहाँ पैदा हो जाती। कन्धेपर लाठी रखकर गड़रिया भेड़ोंके पीछे घूमा करता। कड़ी धूपमें तपता हुआ वह दिन-भर खड़ा रहता। उसका कुत्ता भी ऊब जाता। फुदकनेवाले टिड्डोंका

पीछा कर, काले रंगवाले गिरगिटके पीछे दौड़कर, यों ही भौंककर, इस तरह कुछ-न-कुछ करके उसे अपनी ऊबको भगाना पड़ता। गड़रियेका भी यही हाल होता। अपनी ऊब भगानेके लिए गड़रिया कभी एकाध चुस्त और चालाक भेड़को चुनकर उसके गलेमें घुँघरू बाँध देता। रोटी खाने बैठता तो एक टुकड़ा अपनी प्रिय भेड़के मुँहमें भी दे देता। कहीं खड़ी फ़सल दिख जाती तो उसके एक-दो कोमल बाल तोड़कर ले आता और उन्हें उसे खिलाता। वह भेड़ कुत्तेकी तरह उसके पीछे-पीछे जाती। जब वह भेड़ उससे बिलकुल हिल जाती, तो जिस समय अन्य भेड़ें मैदानमें चरती रहतीं वह मनोरंजनके लिए इस भेड़को काठीपर-से कूदना सिखाता। उसे यह आदत डालता कि उसके 'बैठ' कहनेपर वह बैठ जाये और 'खड़ी हो' कहनेपर खड़ी हो जाये। कभी-कभी हमेशा हाथमें रहनेवाली कुल्हाड़ीसे बबूलकी डगाल तोड़कर उसे छीलता रहता, कभी जाल बिछाकर कबूतरों-को फँसाता और कभी लावा पक्षियोंको पकड़ता। भेड़ें चरती रहतीं और गड़रिया कुछ इस तरहसे अपना समय काटता रहता।

परन्तु इस तरह अकेला रहनेका मौक़ा उसे बहुत कम आता, क्योंकि अकसर तीन-चार गड़रिये मिलकर अपने खिरके चराया करते। दोपहर होनेपर बारी-बारीसे कुएँपर जाकर स्नान कर आते। जैसे-जैसे धूप तेज़ होने लगती वैसे-वैसे भेड़ें भी प्यासी होकर पानीकी ओर जाने लगतीं। सूखे झरनेकी हरी काईके नीचेका जल पीकर वे तरोताज़ा होतीं और जाकर अधूरी छायामें खड़ी हो जातीं। फिर गड़रिये भी छायाकी तलाश करते और वहाँ इकट्ठे बैठकर रोटी खाते। रोटी खानेके बाद एकाध ताकनेके लिए जागता रहता और बाक़ी लोग कम्बलका गोल बनाकर सिरहाने रख और साफेके छोरसे मुँह ढाँककर ऊँघने लगते। उनके कुत्ते ठण्डी, गीली बालूमें लोटकर हाँफते हुए बैठे रहते।

दिन जब थोड़ा रह जाता तब गड़रिये भेड़ोंको गाँवकी ओर मोड़ते। खेतकी घास-पात चुगते-चुगते उनके घर पहुँचते तक शाम हो जाती। गाँव-

के नज़दीक आनेपर एक-एक गड़रिया एक तरफ़ अलग खड़ा हो जाता और अपनी-अपनी भेड़ोंको पुकार लेता। फिर एकके तीन खिरके हो जाते।

पतिके पीछे घर रहकर चरखे या तकलीपर ऊनका सूत निकालने वाली उनकी पत्नियाँ भेड़ोंके आते ही जल्दी-जल्दी अपने कामको समेटकर उठती। बन्द रखे गये मेमनोंको छोडतीं और दो-चार लकड़ियाँ डालकर चूल्हा जलातीं। इस समय तक बहुधा अँधेरा हो जाया करता। सभीके घर माचिसकी डिबिया न रहती, इसलिए स्त्रियाँ अपने दीये पड़ोसिनोंके दीयोंसे जलाकर लाती और चूल्हा जलाकर गरमागरम रोटियाँ तैयार करती।

लौटकर आये गड़रियोंके लिए 'भेड़ें मिलाने' का आध घण्टेका कार्यक्रम रहता। घरमें रहे मेमनों और जंगलसे लौटकर आयी भेड़ोंका बड़ा कोलाहल मचता। माँ बच्चेको खोजती रहती और बच्चा माँको पुकारता रहता। 'बें-बें, में-में'की आवाज़से वातावरण भर जाता। भूखे बच्चे किसी भी भेड़के नीचे घुसकर उसके थनोंमें हूदा मारना चाहते। माँ उस नये स्पर्शको जान जाती और कूदकर भागना चाहती। उस गड़बड़ीमें छोटे बच्चे गिर पडते, चित हो जाते। बच्चोंके लिए पागल हुई भेड़ोंकी लातें उनके मुँहपर, सिरपर लगतीं। गाँव-भरमें यही कोहराम मचा रहता। हज़ार-बारह-सौ भेड़ों और उनके दो-चार-सौ मेमनोंकी आवाज़ें निरन्तर होती रहतीं। गड़रियों और उनकी स्त्रियोंको मामूली बातें भी चिल्लाकर करनी पड़तीं। भेड़ोंकी आवाज़ोंमें उनकी चिल्लाहट डूब जाती। हवा साँय-साँय बहती रहती। चिड़ियाँ और कौवे भी शोर मचाते। भेड़ोंकी लेंड़ियों और मूत्रकी बदबूकी झाँस उठती रहती।

इन भेड़ोंके झुण्डमें घुसकर गड़रियेको भेड़ें मिलानी पड़तीं। गंगीका यह बच्चा है, भूरीका यह काला बच्चा है, इस तरह उसे सब ठीक मिलाना पड़ता था। भूले हुए बच्चेकी पिछली टाँग पकड़कर उसे चलाता हुआ वह उसकी माँके पास ले आता और उसका मुँह उसके थनसे लगा

हो जाता। और केवल बच्चोंके दूध पीते समय होनेवाली आवाज़ सुनायी पड़तो। भेड़ें बच्चोंके धूल-भरे अंगोंको चाटतीं और सफ़ेद गाढ़े दूधसे बच्चोंके मुँह पुत जाते।

गड़रिये एक-दूसरेसे मिलते तो पूछते, "जुड़ गयी भेड़ें ?"

"हाँ, जुड गयीं और तेरी ?"

"जुड़ गयीं।"

इस अवधिमें गड़रियेकी घरवालीने चार रोटियाँ सेंक ली होतीं। मटरकी या मूँगकी दाल मटकेमें चुरती रहतो। भेड़ोंका सारा इन्तजाम ठीक करके गड़रिया घरमें जाता और सुबहसे खड़ी हुई उसके हाथकी लाठी आड़ी पड़ जाती। कुल्ली करके वह उकड़ूँ बैठता और अधूरे प्रकाशमें रोटी खाने लगता। भोजन या खाना शब्दको वहाँ लोग नहीं जानते। वे जानते है सिर्फ़ रोटी खाना। खाने या भोजनमें कदाचित् और भी एक दो पदार्थ आ जाते है, उन्हें गड़रिये नहीं जानते। उन्हें उनकी ज़रूरत भी नहीं होती। वे केवल दो बार रोटी खाते हैं, हरी पत्तियोंकी सब्ज़ीके साथ, कभी चटनीके साथ, और कभी चुटकी-भर नमकके साथ। दिन-भर मेहनत करके वे केवल रोटी खाते हैं।

रोटी खानेके बाद वे अलसाकर सुस्त-से पड़ जाते। फिर कम्बल उठाकर घरसे बाहर निकलते। घड़ी-भर स्कूलके सामनेवाले मैदानमें, अपने साथियों-के साथ-बैठकर बातें करते और फिर खिरकेके पास जाकर पड़ रहते। उनके ईमानदार कुत्ते, अपने बदन समेटकर, उनके पैताने बैठ जाते। खिरके-में भेड़ें सो जातीं, घरमें गड़रियेकी स्त्री अपने बच्चोको लेकर सो जाती और खिरकेके द्वारके नज़दीक सिरहाने कुल्हाड़ी रखकर गड़रिया सोता। सबकी नींद गहरी होती। पर गड़रिया और कुत्ता सोते समय भी चौकन्ना रहते।

सवेरे भेड़ें जागकर छटपटातीं, ज़ोरसे खड़-खड़ मूततीं, लेंडियाँ टप-कातीं। अलस्सुबह ही गड़रिया जाग जाता। खिरकेमें भेड़ोंका कोलाहल होता रहता। उन्हें खुला छोड़ते ही अहातेमें फिर बच्चे माँके थनोंको हूदा

मारने लगते। सुबहकी ठण्डी हवाका सुख लेती हुई भेड़ें शान्तिसे खड़ी रह-कर अपने बच्चोंको पिलातीं। अहाता लेंडियोंसे पट जाता। जगह-जगहपर मूत्रकी तहे जम जाती। हाथमे झाड़ू लेकर गड़रिया अहातेको झाड़कर साफ़ कर देता। उस क़ीमती खादको टोकरियोंसे ढोकर हमेशाके ढेरपर डाल देता। अनाजकी तरह लगे लेंडियोंके ये ढेर सालके अन्तमें पड़ोसके किसान खरीदकर ले जाते। इसलिए गड़रिया इस कामको बड़ी सावधानी-से किया करता। जबतक यह काम पूरा होता, बच्चोंके पेट दूधसे भर जाते। उछलते-कूदते, छोटी-छोटी दुमोंको हिलाते हुए वे ऊनके गोले इधर-उधर घूमते रहते। फिर उन सबको इकट्ठा कर गड़रिया क़ायदेसे उनके स्थानमे उन्हें बँड़ देता। घरवालीके द्वारा ताज़ी तैयार की गयी रोटी बकरी-के दूधके साथ जल्दी-जल्दी खाकर सुबहका नाश्ता करता। दोपहरको खाने-के लिए दो-चार रोटियाँ, मिरच और थोड़ा-सा नमक साथमें बाँध लेता और फिर कम्बल और लाठी उठाकर भेड़ोंको इशारा करता। जंगल जाने-के लिए आतुर हुई भेड़ें उठतीं, ऊँचे स्वरमे चिल्लाकर बँड़ दिये गये बच्चोंसे कहतीं, हम जा रही हैं। बच्चोंकी भीतर-ही-भीतर गड़बड़ी शुरू हो जाती और फिर रह-रहकर पीछे देखती हुई, चिल्लाती हुई बच्चोंवाली भेड़ें आगे बढ़ने लगती।

सुबहकी कोमल किरणें तेज़ होनेसे पहले भेड़ोंके अहाते खाली हो जाते। दूर जंगलोंसे घुमाते हुए गड़रिये भेड़ोंको ले जाते। जब ये भेड़ें चली जाती तो गाँव सूना-सूना-सा लगता। जो खेती करते, वे बैलोंको लेकर खेत चल देते। छोटे बच्चे बकरियोंके पीछे निकल जाते। काम कर सकने-वाली औरतें अपने बच्चोंको गोदमें दबाये खेतोंमे काम करने चल देतीं। उनके पीछे-पीछे पालतू कुत्ते जाते। दोपहरको चरखीपर ऊनसे सूत कातने-वाली बुढ़ियोंको छोड़कर गाँवमें और कोई भी न दिखता था।

छह

आजकल नियमित रूपसे आठ-दस लड़के पाठशाला आया करते थे—ऐसे लड़के जिनसे कोई काम करते नहीं बनता था, जो बकरियोंको चराने भी नहीं जा सकते थे। मैं उन्हें 'ग,' गणेशका 'आ' आमका लिखना सिखा रहा था।

सूरज निकला, खिरकेमें बन्द की हुई भेडें बाहर निकलीं कि नंग-धड़ंग लड़के शालामें आ जाते। बिना मुँह धोये, बदनमें कुरता पहनकर, सिरपर लाल रंगका कपड़ा लपेटें आते और गोबरसे लिपी हुई ज़मीनपर एक-दूसरेसे लड़ते हुए बैठे रहतें। स्लेट-पट्टीपर पेन्सिलें कुरकुराने लगतीं। थूकसे स्लेट साफ़ करनेका क्रम चलता। बार-बार कोई-न-कोई लड़का छिंगुनी दिखाकर बाहर चल देता। कुछ लड़के शालाकी बाहरी दीवालके पत्थरोंके पास पहुँच जाते और नोक बनानेके लिए अपनी पेन्सिलें उनपर घिसा करते।

इस तरहकी घिसाई होते रहनेके कारण, बाहरी दीवालके बहुत-से पत्थर ऐसे दिखते जैसे उनपर किसीने भभूत रमा दी हो। पेन्सिलें जल्दी चुक जाती थीं, इसलिए लड़कोंके माँ-बाप मेरे पास आकर शिकायत करते। मेने अनेक बार कहा कि शालामें मुँह धोकर आना चाहिए, स्लेट-पट्टी पोछनेके लिए पानीसे भीगा हुआ चीथड़ेका गोला साथमें ले आना चाहिए, फिर भी सुधार न हुआ। मुँह धोनेके लिए यदि किसी लड़केको घर भेज देता, तो अकसर वह फिर लौटकर नहीं आया करता था। पानीसे भींगा हुआ चीथड़ेका गोला प्रायः दो घण्टेमे ही सूख जाता और फिर लड़के पहलीवाली सरल पद्धतिको ही काममें लाते। शालामें मच्छर बहुत थे। इसलिए किसी-न-किसी लड़केकी आँखें अवश्य आ जातीं, उसकी छूत-से दूसरे लड़कोंकी आ जातीं। आँखें दर्द करतीं, तो लड़के रोते-तड़पते और उनकी महतारियाँ आँखें अच्छी होनेके लिए, दूधसे भींगा हुआ कपास सोते समय लड़कोंकी आँखोंपर रखतीं। ग्राम-देवीकी मनौती मनातीं।

सुबह शाला जल्दी शुरू होती और साढ़े दस-ग्यारह बजे छुट्टी हो जाती। शोर-गुल मचाते हुए, दौड़ते-भागते गडरियोंके लड़के घर जाते। फिर तीनको शाला शुरू होती और छहको छुट्टी हो जाती। जिस तरह किसीको बहुत देर तक बन्द कर रखें और वह थक जाये, उस तरह शालामें बैठे-बैठे ये लड़के थक जाया करते थे। फिर भी शालाके सामने मैदानमे लौन-पाटके खेलमे भीड़ लग जाती। चाँदनी रातमे यह खेल बहुत देर तक होता रहता। जंगलसे लौटकर आये हुए जवान लड़के भी इन खेलोंमे शामिल हो जाते। कभी-कभी मुझे भी शामिल कर लेते। दूधिया चाँदनीमे खेलपर काफ़ी रंग चढ़ता और महावीरके चबूतरेपर, नीमके चबूतरेपर बैठकर, प्रौढ़ लोग खेल देखा करते। कभी-कभी शौकीन लोग लेज़िमके लिए गोलाकार खड़े हो जाते।

घण्टे-दो घण्टे लेज़िम खनखनाती रहती। मैदानमे एक दो छोटे-बड़े पत्थर और नाल पड़े थे। जिन-जिन नवयुवकोने हाल ही मे कसरत करके अपना शरीर बनाना शुरू किया था, वे इनपर अपनी ताक़त अज़माते थे। एक हाथसे उस भारी नालको (पत्थरका बना हुआ अर्धचन्द्राकृति घोड़ेके नालके आकारका वज़न) ज़मीनसे उठाकर सीधा सिरके ऊपर ताननेकी उनमे स्पर्धा शुरू हो जाती थी। सिरके साफेको हाथमे लपेटकर लड़के नाल उठाया करते। सिरके ऊपर ले जाकर उस नालको ज़मीनपर फेंक देते। ज़मीन हिल जाती। पत्थरके बने हुए बड़े-बड़े गोले दोनों हाथोंसे पकड़कर सीने तक ऊपर उठाये जाते और फिर ज़मीनपर पटक दिये जाते थे।

गाँवसे दो-तीन फर्लांग दूरके गाँवमें रहनेवाला विरा बनगरका एक लड़का सता कुछ दिनोंसे शालामें आने लगा था। पहलेवाले मास्टरके द्वारा चार अक्षर ठीक तरहसे पढ़ा देनेके कारण, जो चार-छह लड़के आगे तरक़्क़ी कर रहे थे उनमें सताका नम्बर पहला था। बारह-तेरह वर्षका वह लड़का अच्छा ऊँचा-पूरा बढ़ गया था। दूसरे लड़कोंमें जो बुद्धि न

थी, वह उसमें थी। पढ़नेमे रुचि थी। शालाकी छुट्टी होनेके बाद भी वह चबूतरेपर बैठकर अपना पाठ याद किया करता था। कभी-कभी मेरे कमरेमे जाकर गणित, भाषा आदि पूछा करता था। शिक्षाकी ओर उसकी रुचि देखकर मैंने एक बार उससे पूछा, "कितनी क्लास पढ़नेका इरादा है तुम्हारा, सता ?"

सताने कहा, "सातवीं पास करनेका इरादा है।"

"इसके लिए तो शहर जाना पड़ेगा।"

"जाऊँगा।"

"तुम्हारा बाप तुम्हे पढ़ानेको राजी है ?"

"उसकी कौन सुनता है ?"

"थोड़ा पढ़ा तो हरसे गया, बहुत पढ़ा तो घरसे गया," इस कहावतपर विश्वास रखनेवाला और लड़के पढ़ गये तो फिर खेतीमे उन्हे दिलचस्पी नही होती और उजले कपड़े पहनकर घूमनेका उन्हे शौक़ हो जाता है, यह राय रखनेवाला पिता इस लड़केको आगे पढ़ने देगा या नहीं, इस विषयमे मै सशंक था। तिसपर भी मैं सताकी ओर विशेष ध्यान देने लगा। इस शालासे यदि एक भी होशियार विद्यार्थी बाहर गया तो मेरे लिए काफ़ी था। इस तरहका कोई लड़का अकेला सता ही था। सहज ही वह मेरा प्रिय विद्यार्थी हो गया।

इन आठ-दस लड़कोंके अलावा रोज़ शालामे आकर बैठनेवाले और तीन व्यक्ति थे—आयबू मुलानी, आनन्द रामोशी और रामा बनगर।

ये तीनों बहुधा दिनमे थोड़े समयके लिए ही क्यों न हो, शालामें आते और दीवालसे टिककर यूँ ही बैठे रहा करते। कुछ भी न बोलते, कुछ भी न करते, परन्तु आते जरूर। लड़कोके मुँहकी ओर, मेरे मुँहकी ओर देखते हुए शान्तिपूर्वक बैठे रहते। इनसे मुझे कोई तकलीफ़ न हुआ करती। लेकिन लोग यूँ ही यहाँ आकर अपना समय क्यों नष्ट करते हैं, यह मुझे अवश्य खटकता था, मुझे ताज्जुब भी होता था। परन्तु बादमे मुझे पता

चला कि समय काटना ही उनका इसमें प्रधान हेतु था।

मैले बदनवाला और गन्दे कपड़े पहननेवाला आयबू तो बेकार ही था। उसे कोई उद्योग नहीं करना पड़ता था। क्योंकि मनुष्य उद्योग करता है पेट भरनेके लिए परन्तु आयबूकी यह समस्या हल हो चुकी थी। गाँववालों-को जब पता चला कि वह मुलाणी (एक जाति जो बकरा काटती है—चिकवा) है तो उन्होंने बड़ी खुशीसे उसे अपने गाँवमें रख लिया था। क्योंकि मौक़ेपर बकरा काटनेके लिए उन्हें दूसरे गाँवसे किसी चिकवेको पकड़कर लाना पड़ता था और इसमें व्यर्थ समय बरबाद होता था। यह एक अनायास सुभीता आप-ही-आप उनके गाँवमे आ गया था। यह सहूलियत मिलते ही रोटीकी समस्या आयबूने अपने-आप ही हल कर डाली। दोपहर हुई कि वह दो-चार घरोंसे गरम-गरम रोटियाँ और दाल ले आता। कहीं भी बैठ जाता और खाकर डकार लेता। उसने सारा बखेड़ा ही मिटा दिया था। आयबूकी आवश्यकताएँ अधिक न थीं, और गाँवमें दो-चार रोटियोंका अभाव न था। सोनेके लिए स्थानकी भी उसे कोई अड़चन न थी। पुलिस चौकी थी, मैदान था, मेरा कमरा था। ओढ़ने-बिछानेके वस्त्रोंकी उसे कभी ज़रूरत न रहती। भटकनेवाले कुत्ते या जंगलके जानवर जिस तरह सोते हैं, उसी तरह निश्चिन्त होकर, किसी भी जगह वह सो सकता था। ठण्ड और वर्षाको सहन करनेके लिए भी उसने अपना बदन मज़बूत बना लिया था।

पैंतीस-चालीसकी उम्रका आनन्दा रामोशी भी निठल्ला ही था। वह बौना और सूखा हुआ था। दाढ़ीकी खूँटें हमेशा बढ़ी हुईं। बड़े-बड़े बालोंपर गान्धी टोपी। बदनमें सिर्फ़ कोट और नीचे तंग हाफ-पेण्ट। इस वेशमे वह हमेशा रहा करता। गाँवमें रामोशियों (एक जाति, जो पहले डाक ले जाने या प्रहरीका काम किया करती थी।) के जो दो-चार घर थे उन्हींमें-से यह एक था। ये सभी रामोशी कभी कोई भी उद्योग नहीं किया करते थे, फिर भी उनकी उपजीविका चलती थी।

जिस दिन भूखे रहनेका मौक़ा आता, उस दिन आनन्दा एक कम्बल कांधेपर डाल लेता और तीसरे पहर गाँवसे रवाना हो जाता। गाँवके आस-पास तीन-चार मीलपर दूसरे गाँवके खेत थे। उन खेतोंकी मेंड़ोंपर वह घूमता रहता। खेतमें खड़ा खेतका मालिक यदि पूछता, "कहाँ चले आनन्दा ?"

तो यह कह देता, "जाता हूँ रामा लिगाडके खेतमे।"

रामा लिगाड पूछता, "कहाँ चले आनन्दा ?"

तो यह उससे राम-राम करके कहता, "तुका कारण्डाके खेतमे जा रहा हूँ।"

तुका कारण्डा पूछता, "क्यों आनन्दा, आज इधर किस तरफ़ ?"

तो आनन्दा आगे हाथ बढ़ाता हुआ कह देता, "·····ज़रा भोंसले महाराजकी बाड़ी तक हो आता हूँ।"

इस तरह घूम-फिरकर वह यह जानकारी हासिल कर लेता कि कहाँ प्याज लगे हैं, कहाँ बैंगन लगे है, कहाँ ज्वार है, और कहाँ बाजरा है। और जब रात हो जाती, खेतवाले अपने-अपने घर लौट जाते और रखवाल सो जाते, तब किसी खेतसे चार भुट्टे, कहीसे मुट्ठी-भर मिरचें, कहीसे बैंगन, इस तरह वह कम्बलकी खोल भरता और आधी रातके करीब अपने गाँव लौट आता था। सुबह होते तक वह उन भुट्टोंको मीसकर दाने निकाल लेता और उसकी घरवाली दानोंको पीसकर आटा भी तैयार कर लेती। बैंगन भुनकर तैयार हो जाते ? इतने बड़े खेतसे यदि चार-छह भुट्टे निकल गये तो मालिकके ध्यानमें यह बात नहीं आती थी। पक्षी खा गये या किसी जानवर-द्वारा वे नोंच लिये गये, इसका पता न चलता था।

आनन्दापर किसीको शक न होता था। बरसोंसे उसका यह धन्धा चला आता था। छुट-पुट चोरियाँ करना ही उसने अपने जीवनका रोज़गार निश्चित कर लिया था। और उसके तरीक़े निश्चित हो चुके थे। उसकी कुशलताके कारण उसका यह रोज़गार बड़े धड़ल्लेसे चल रहा था। कई बार छोटी-मोटी चोरियोंको दस-पन्द्रह दिनोंमे एकाध बार मालिकके पास

जाकर वह स्वीकार भी कर लेता।

कभी फुरसतके वक़्त दो साथी लेकर वह जंगलमें जाता और वहाँसे एकाध खरगोश या एकाध गोह मारकर ले आता। कई दिनों तक एक ही प्रकारका भोजन करते रहनेसे मनमें अरुचि पैदा हो जाती, तो उसे मिटानेके लिए वह कहींसे किसीकी भेड़ चुरा लाता, उसे काटना, पकाना और खाना—ये सब काम सीधे जंगलमें ही किसी सूने स्थानपर पूरे हो जाया करते। आनन्दाके भाई-बन्द इस तरह जी रहे थे। आनन्दा भी कभी किसी समय खेतोंमें मिल जानेवाले कामको यदि छोड़ दे, तो बरसों तक उसका धन्धा यही था।

रामा बनगर ज़रूर एक बाल-बच्चेवाला मनुष्य था। उम्र थी यही कोई तीस-पैंतीस। होंठोंपर बड़ी-बड़ी मूँछें और बड़ा जबड़ा। इसके कारण वह बड़ा उजड्ड दिखता। उसके घर सौ भेड़ें थीं। परन्तु उनकी देखभाल उसका बाप किया करता था, उसका लड़का किया करता था। रामाको करनेके लिए कोई काम न था। न था कहनेके बजाय यही कहना चाहिए कि वह कोई काम न करता था। वह भी शालामें आकर बेकार बैठा रहा करता।

कई दिनोंसे वह इसी तरह मौन धारण किये बैठा रहता था। शाला-की छुट्टी हो जानेपर अपना कम्बल उठाकर वह अपने घर चल दिया करता था। पहले-पहले मैं उससे पूछा करता, "क्यों कुछ काम है क्या? कैसे आये?" तो कठोर आवाज़में वह इसका उत्तर देता, "कोई काम नहीं। यूँ ही चला आया।"

बहुत दिनों तक शालामें इस तरह बैठ-बैठकर एक बार वह बोला, "मास्टर, मेरा एक काम है तुमसे।"

शालाकी छुट्टी हो गयी थी। आनन्दा और आयबू उठकर चल दिये थे। मैं और रामा ही शालामें रह गये थे। कभी न बोलनेवाला यह मनुष्य आज बोला इसका मुझे ताज्जुब हुआ। मुझसे इसका क्या काम हो

सकता है, मैं कोई अन्दाज न लगा सका। "क्या है, कहो ?"—मैंने कहा।

रामा एकदम नहीं बोला। उसने गरदन नीचे झुका ली और थोड़ी देर सोचता-सा रहा। शायद उसके मनमें यह चल रहा होगा कि कहूँ या न कहूँ।

उसका संकोच मिटानेके लिए मैंने कहा, "किस काममें आये हो, रामभाऊ ?"

फिर इधर-उधर देखकर रामा बोला, "मेरे पास एक रानी छाप रुपया है।"

"अच्छा तो फिर ?"

"कहते हैं, उसका चलन अब बन्द हो गया है। मुझ गरीबका अकारण नुकसान हो रहा है।"

"हाँ, बन्द तो हो गया है। अब बाजारमें वह नहीं चलता।"

"तुम शहर जाते रहते हो। अगर तुम्हारे प्रभावसे वह कहीं चल जाये तो मुझपर बड़ी मेहरबानी होगी।"

वह चलेगा या नहीं इसकी मुझे कोई कल्पना न थी। कभी ऐसा मौक़ा न आया था। परन्तु यह सोचकर कि प्रयत्न करनेमें क्या हर्ज है, मैंने कहा, "कोशिश करूँगा। मुझे लाकर दे दो।"

रामा 'हाँ' कहकर अपने घर चला गया। रातको मेरे घर आकर उसने वह रुपया मुझे दे दिया। इस तरह सँभालकर दिया जैसे कोई कीमती ज़ेवर दे रहा हो। उसे देते समय उसका हृदय धक-धक कर रहा था, यह मैं ताड़ गया। उसे शक था, कहीं यह मास्टर मेरा रुपया ही न हज़म कर जाये ?

सात

शनिवारको सुबह शालाकी छुट्टीके बाद मैं विभूतवाड़ी गया। डेढ़ दिन घरमें बिताकर लौटा और शालामें कामपर हाज़िर हो गया। रामाके

रुपयेकी मुझे याद आयी। मैं उसे भँजाकर ले आया था। पर दो-चार दिन रामा शालामे नहीं आया। पूछ-ताछ करनेपर मुझे पता चला कि उसकी एक भेड़ गुम हो गयी है और उसे खोजनेके लिए वह दूसरे गाँव चला गया है।

इसके बाद जब वह शालामें आया तो मैने जेबसे रेज़गारी निकाली और उसे दे दी।

"तुम्हारा रुपया मैने भँजा लिया है। ये लो अपने पैसे।"

इतना कहकर मैं लड़कोंको पढाने लगा। रेजगारीको धोतीके पल्लेमे बाँधकर रामा बाहर कब चला गया, इसका मुझे पता तक न चला।

रातको भोजनके बाद मैं बैठा हुआ पढ रहा था, इसी समय वह लौटकर आया। आज तक पहले वह कभी रातको मेरे घर नही आया, और ज़मीनपर बैठ गया।

मैने पूछा, "क्यो रामभाऊ, तुम्हारी भेड मिल गयी?"

"हाँ, मिल गयी। यही पडोसके गाँवमे ही भाग गयी थी।"

"पर तुम्हे तो चार दिन लग गये?"

"मेटकरवाड़ीमे एक मेहमानके घर चला गया था।"

मैं आगे पढ़ने लगा। रामा बैठा रहा और बोला, "मास्टर, मेरे रुपयेकी रेज़गारी किस तरह लाये?"

"एक बनियेकी दुकानसे ले आया। वह मेरी पहचानका था।"

"यह नही पूछ रहा हूँ। किस तरहसे मतलब है, टेंटमे रखकर लाये या कोटकी जेबमे रखकर?"

मैं प्रश्नके रुखको न समझ सका। कहा, "पाजामेकी जेबमे रखकर लाया। क्यों?"

"बिलकुल पक्का?"

"हाँ, क्यों?"

"फिर ज़रा याद करके देखो तुम्हारे भी पैसे थे क्या उस जेबमे?"

उत्तर देनेमे मुझे कुछ समय लग गया ।

"थे । परन्तु क्यों ?"

"हाँ, तो अब हिसाब मिल गया। मेरे पास ज्यादा पैसे पहुँच गये है।"

और यह कहकर उसने जेबसे बटुवा निकाला, और उसमे-से दो आने निकालकर मेरे सामने रख दिये ।

उन दो आनोंको देखते ही सारा मामला मेरी समझमे आ गया। रानी छाप रुपया बन्द हो गया था । फिर भी उसमे चाँदी होनेके कारण कुछ व्यापारी अठारह आने देकर उसे खरीद लेते थे । इस हिसाबके अनुसार रामाके रुपयेके बदलेमे भी अठारह आने मिले थे । रामाको पैसे देते समय यह बात उसे बतानेके लिए मै भूल गया था । रामाने घर जाकर चार-चार आनेके चार ढेर लगाकर देखा । परन्तु चार ढेर लगानेके बाद भी, दो आने ऊपर बचने लगे । इसलिए सहज ही उसकी यह धारणा हो गयी कि देते समय मास्टरने भूलसे मुझे अधिक पैसे दे दिये है और यही पूछनेके लिए इस समय वह आया था ।

यह सब बात उसके सामने मैने स्पष्ट कर दी और वे दो आने उसे लौटा दिये । तब उसमे-का एक आना मेरी ओर फेंककर वह बोला, "अच्छा तो ले । यह एक आना तू रख ले, पान-तमाकूके लिए ।"

मैने वह एक आना नही लिया । रामाने बहुत आग्रह किया । फिर भी नहीं लिया ।

रामाने पूछा, "तो फिर रानी छाप रुपया चल जाता है ?"

"हाँ, चल जाता है—सिर्फ चलता ही नही बल्कि उससे दो आनेका फ़ायदा भी होता है ।"

"यह हम लोग क्या जानें ? गाँवमे बहुत-से लोगोंके पास ऐसे रुपये पड़े है । दस-बारह निकल आयेंगे । भेंजाकर ले आओगे उन्हे ?"

"गाँवकी बात गाँव जाने । तुम्हारे पास हों तो ले आना । मैं भेंजा लाऊँगा ।"

अगले सप्ताह जब मै घर जाने लगा तब रामाने बारह रुपये लाकर मुझे दिये। उन्हें मै अठारह आनेके हिसाबसे भँजा लाया। पान-तपाकूके लिए चार आने ले लेनेके लिए रामाने मुझसे फिर आग्रह किया। मैने इनकार कर दिया।

फिर उसने रातको मुझे अपने घर बुलाया। उस अँधेरेमे घरमे मैने झुककर प्रवेश किया, तब चूल्हेके सामने चिलम पीता हुआ एक साठ-सत्तर वर्षका बूढ़ा बैठा हुआ था। रामाकी औरत काम कर रही थी।

बैठनेके लिए कम्बल बिछाकर रामाने एक थालीमें मुझे बकरीका दूध पीनेके लिए दिया। वह ठण्डा हो तबतक मैं ठहरा रहा। तभी चूल्हेके सामने बैठे हुए बूढेकी तरफ़ देखकर रामा बोला, "यह मेरा बाप है।"

बूढेने बदनपर ओढे हुए कम्बलमे-से जल्दी-जल्दी अपने हाथ बाहर निकाले और राम-राम किया।

रामाने कहा, "सत्तर बरस हो गये। जब आठ बरसका था तबसे भेड़ें चरा रहा है यह। इसे दूसरा काम कुछ नही आता?"

आठ वर्षकी उम्रसे आज तक इस मनुष्यने भेडें चरानेके सिवा और कोई काम नही किया था? और आज भी वह वही कर रहा था। नातीके साथ दिन-भर भेडाके पीछे घूम रहा था। मुँहपर झुर्रियोंका जाला हो गया था। बाल बिलकुल पक गये थे, फिर भी यह बूढा हाथमे लाठी लेकर भेडोंके पीछे जाता था। उसे दूसरा कोई काम नहीं आता था। बैलगाड़ी कैसे जोती जाती है, यह वह न बता सकता था। परन्तु कुत्तेकी तरह उसे भेडियाकी बास आ जाया करती थी। खेतमे रातके समय खादके लिए भेड़ोंको बैठाकर एकाएक बूढ़ा नाक सूँ-सूँ करके कह देता, "ऐ लड़को, सावधान हो जाओ रे, भेडिया है आस-पास!"

लडके तैयार हो जाते! कुत्ते भौंचक्के-से होकर देखने लगते और दूर किसी ऊँचे स्थानपर खड़ा होकर टोह लगानेवाला भेड़िया दिखायी देता! देखभालके लिए सावधान बैठे-बैठे उसे ऐसी आदत पड़ गयी थी कि बदन-

को फैलाकर सोना वह भूल ही गया था ! बैल या घोडा जिस तरह बैठे-बैठे ही नींद लेता है उसी तरह यह बूढ़ा बैठे-बैठे ही नीद लिया करता था। जमीनपर लेटनेको उसे बिलकुल जरूरत ही नही मालूम पड़ती थी ! एक-दूसरेके खिरकोंमे मिली हुई भेडोंको गडरिये किस तरह पहचान लेते है, यह हमें एक पहेली मालूम होती है, परन्तु यह बूढा काकूबा गड़रिया इससे भी आगे बढा हुआ था। जब नये सिरेसे भेड़ोंका खिरका तैयार करना पड़ता है, तब मालिकको भेड़ें खरीदकर ही यह रोज़गार शुरू नही करना पडता। नये सिरेसे खिरका शुरू करनेवाला आदमी नारियलकी एक कटोरी और उसमे थोड़ी हल्दीकी बुकनी डालकर किसी अच्छे गड़रियेके पास जाता है और उसे वह नारियलकी कटोरी देकर उससे कहता है, "मै खिरका शुरू करना चाहता हूँ। मुझे बीज दो।"

फिर वह गड़रिया अपने खिरकेसे एक बढिया भेड निकालकर उस माँगनेवालेको मुफ़्तमे दे देता है। इस तरह दस-पन्द्रह भेडें प्राप्त कर खिरका आरम्भ किया जाता है और दो-तीन सालके भीतर बीज माँगने-वाला दूसरोंको बीज दे सकता है। परन्तु एक बात है कि बीजके लिए लायी गयी भेडें न बेची जा सकती है और न काटी जा सकती है। इस नियमका सख्तीसे पालन किया जाता है।

एक बार काकूबासे एक दूसरे गाँवका आदमी खिरका शुरू करनेके लिए बीजकी हैसियतसे दो-चार भेड़ें ले गया। आगे, एक-दो सालके बाद बूढा उस गाँवमे गया, तब उस मनुष्यने 'च्-च्' करके कहा, "काकूबा, तुम्हारी दी हुई चारों भेड़ें मर गयी।"

"मर गयी ! उनकी कोई सन्तान ?"

"नही, न सन्तान हुई न कुछ। बीज ही नष्ट हो गया।"

बूढ़ेको यह बात सच न मालूम हुई। वह बोला, "तुम अपना खिरका दिखाओ मुझे।"

उस मनुष्यने बूढ़ेको अपना खिरका दिखाया।

बहुत देर तक भेड़ोंको ध्यानपूर्वक देखता हुआ बूढा घूमता रहा और कुछ देरके बाद उसने अपनी भेड़ोंकी सन्तति खोज निकाली। वह बोला, "ये दो बच्चे मेरी भेडके हैं।"

और यह बात सच थी। लज्जित हुए उस मनुष्यने भी उसे स्वीकार किया।

रामा बनगरने अपने बापके बारेमे यह बात जब मुझे बतायी, तो मुझे बडा आश्चर्य हुआ। मैने काकूबासे पूछा, "काकूबा, यह तुमने कैसे पहचाना?"

बूढा बोला, "चेहरा, रंग और रूपका पता लगे बिना कैसे रहेगा? अब तुम ही हो। तुम्हारे बापका, तुम्हारी माँका, तुम्हारे आजाका, कुछ-न-कुछ तो तुममे उतरा ही होगा न! नाक हो, कान हो, आँख हो, कुछ-न-कुछ उनपर पड़ा ही होगा।"

फिर रामा मुझे थोडा भीतर ले गया। दीयेकी रोशनीमे वह भीतर गया और एक छोटा-सा घड़ा लेकर बाहर आया। उसमे चाँदीके नक़द रुपये भरे थे। सब रानी छापके। मै देखता ही रह गया। मुझे भूलकर भी यह शंका न हुई थी कि इस गड़रियेके यहाँ इतने रुपये होगे।

रामाने कहा, "कई बरसोसे जमा करता आया हूँ। इन्हे गिन लो। अपने साथ ले जाओ और भेंजाकर ले आना।"

मैने रुपये गिने। तीन-सौ चालीस थे। संख्या बताते ही वह मान गया और सारे रुपये उसने बिना किसी भयके मेरे हवाले कर दिये। मास्टरने पाँच रुपये कम गिने होगे, अथवा मास्टर इतने रुपये ले जा रहा है, इनमे-से वह कुछ खा जायेगा, ऐसी कोई शंका उसके मनमे न आयी।

मैंने कहा, "रामभाऊ, इतने रुपयोंको भेंजानेमे कुछ दिन लग जायेंगे। तुम्हे कोई अड़चन तो न होगी?"

रामाने कहा, "आरामसे भेंजाओ। महीना-पन्द्रह दिन भी लग जायें, फिर भी कोई हर्ज़ नहीं।" मै उठकर घर आ गया।

आठ

मईका महीना समाप्त हुआ। जून आया। गरमीके दिन चले गये। वर्षाका आगमन हुआ। इन्द्रगोप दिखने लगे और मृगका उदय हुआ। आकाश काला पड गया। स्वच्छ धूप लुप्त हो गयी। हवा बहने लगी। पेड-पौधे जोर-जोरसे हिलने लगे। धूल और मिट्टी चारों ओर उडने लगी। आकाशकी ओर देखकर लोग कहने लगे, "हवा पानीको उडा ले जायेगी। परन्तु वह न हुआ। पानीकी झडियाँ आने लगी। मृगकी वर्षा बनगरवाडी-को पीटती रही। आवारा कुत्ते दीवालकी ओटमें खडे हो गये। पानी जल्दी खुलनेके लक्षण नहीं दिख रहे थे। गड़रियोंकी दौड-धूप शुरू हो गयी। सिर-पर खाली बोरे ओढ़कर उन्होंने खुले बाडेमें बँधी हुई भेडोंको खोला और झोंपड़ियोंमें ले जाकर बन्द कर दिया। झोंपड़ीके भीतर एक-दूसरेसे सटकर खड़ी हुई भेडोंने अंग झटकारे। भीगे हुए ऊनकी महक गडरियोंके घरोंमें छा गयी। झड़ीपर-झड़ी आयी। तपी हुई ज़मीनसे भाप निकली। धूल उड़ी। कीचड़ हो गया और फिर वह भी बह गया। धूलके नीचे दबे पत्थर खुल गये।

फूससे छाये हुए घर चूने लगे। सुघराईसे लीपी हुई ज़मीन जगह-जगहपर गीली होकर उखड़ने लगी, तब गड़रियोंकी स्त्रियाँ क्रोधसे तिल-मिलायीं और चू रहे स्थानोंपर उन्होंने छोटे-बड़े बरतन रख दिये। भेड़ोंकी गड़बडीके बीच भी भरे हुए बरतनोंमें टपकनेवाले पानीकी आवाज़ कानको पकाने लगी। घाबेके घर चूने लगे, तब सिरपर खाली बोरे ओढकर गड़रिये अटारीपर चढ़े। जहाँ पानी भरा हुआ था—घाबेमें छेदकर भीतर घुस रहा था, उन छेदोंको उन्होंने पत्थर और मिट्टीसे उस समयके लिए बन्द कर दिया।

हवामें सर्दी आयी। गड़रियोंकी कुल्हाड़ियोंपर मुर्चा लगने लगा और उनकी घरवालियों-द्वारा सुरक्षित रखा हुआ नमक पझरने लगा।

सुआ-रंगी घासने ज़मीनके बाहर सिर निकाला। आँगनमें, घाबोंपर, छप्परोंपर—जहाँ न उगनी चाहिए वहाँ घास उगने लगी। सब तरफ़ जगमगाता हुआ सुआ-रंग बिखरा हुआ दिखने लगा।

अँगूठेके नाखूनपर बैठ सकें, इतने बारीक मेंढक एकाएक दिखायी देने लगे। रास्तेमें चलते हुए उड़ने लगे। छोटे-छोटे पंखोंवाले सम्पाती हज़ारों-लाखोंकी तादादमें उडने लगे और चिडियोंने उन्हें हडपना शुरू किया। उनमें जो बचे, वे रातको दीयोंपर झपटकर मर गये। दो दिनके बाद उनके महीन पंख जगह-जगह गलकर पड़े हुए दिखायी दिये और पंख-विहीन वे नन्हे इल्लीनुमा पीले रंगके कीड़े लुप्त हो गये। मटमैले रंगके लम्बे-लम्बे जन्तु एक-दूसरेकी पीठपर बैठकर अनेक पैरोंपर चलने लगे। अँगुली बराबर काले लम्बे कीड़े आलसीकी तरह इधर-उधर घूमने लगे। मनुष्य या जानवरका स्पर्श होते ही कुण्डली मारकर पड़ने लगे। गडरियोंके लड़के जान-बूझकर उन्हे हाथ लगाते और जब वे उनके स्पर्शसे कुण्डलीरूप हो जाते तो उन्हे हथेलीपर लेकर पैसेकी तरह नचाने लगते। मक्खियाँ बे-हिसाब बढ गयी। झोंपड़ियोंके भीतर भिनभिनाने लगीं। भेड़ोंको नाकोंपर बैठने लगीं। मच्छर बहुत हो गये और गड़रियोंकी आँखोंके सामने उड़ने लगे।

जुती पड़ी हुई ज़मीनोंके ढेले गल गये। ज़मीनने पानी पी लिया। जगह-जगह पोखर भर गये और नीले-काले आकाशका प्रतिबिम्ब उनमें दिखायी देने लगा। खेतोंमें-से चलते समय मनुष्यों, भेड़ो और मवेशियोंके पैरोंमें कीचड़के लौदे चिपकने लगे। चरोखर भींग गया और हरे मैदानमें काली भेड़ें घूमने लगीं। और उनकी पीठपर बैठकर काले कोतवाल भर्रायी हुई आवाज़ें निकालने लगे। इस सावधानीसे कि कोई उन्हे देख न ले चित्तूर ऊँचे स्वरमें चिल्लाने लगे।

नौ

बनगरवाड़ोकी पाठशाला लगनेका कोई निश्चित समय न था। सारी दुनियामें गरमीकी छुट्टी होती तो इस शालामे फ़सली मौसमोंपर छुट्टी होती थी। मनमे आता कि तभी शाला लगे जिस तरह मोटरकी सब सीटें भर जानेपर मोटर-सर्विसवाले मोटर छोड़ते हैं, उसी तरह जब शाला पूरी भर जाती तभो मास्टर पढाना शुरू करता। इसके कारण मास्टरका क्षेत्र शाला तक हो मर्यादित नही रहता था—रह नही सकता था। कोई आकर मास्टरसे चिट्ठो लिखाता, कोई अर्ज़ी लिखाता। मैं इतवारकी छुट्टीके दिन अपने घर जाता, तब मेरे कोटकी जेबें डाकमे डालनेको दिये गये पत्रोंसे भरी रहतीं। इन कामोंको जब मैं किसी शिकायतके बिना करने लगा तो नौबत यह आयी कि कोई भी आता और मुझसे कुछ भी सलाह लेता या अपना कोई भी काम करनेको बता देता। पति-पत्नीकी लड़ाईसे लेकर भेडों-की चोरियों तकके सब मामले मास्टरके पास आने लगे। मास्टर पढ़ा-लिखा है, बुद्धिमान् है, इसलिए उसे क़ायदे और क़ानून ज़रूर मालूम होना चाहिए। उसमे भले और बुरेको पहचाननेकी अकल ज़रूर होनी चाहिए?

इस कारण यद्यपि शालामे काम न रहा, फिर भी इस तरहके धन्धोमे समय बोतने लगा। ऊपरसे यदि साहब लोग शिकायत करते कि शालामे लडकोंकी दर्ज-संख्या बहुत कम है, तो यह कारण देकर कि शाला अभी नयी है या यह फ़सली मौसम है, मै शाला सँभालने लगा। मेरी शाला सब कुछ थी—अदालत, थाना, म्यूनिसिपल्टी आदि सब। और मै मास्टर, जज, पुलिस, दारोगा और स्टाम्प-वेण्डर आदि सभी कुछ था। गाँवके झगड़े बहुधा गाँवके बाहर नहीं जाते थे। सारा फ़ैसला वही सरकारी कार्यालयके सामने दस मनुष्योंके बीच सुना दिया जाता था। मास्टर और पटेल, काकूबा और शेकूबा-जैसे वृद्ध लोग न्याय किया करते थे। दस आदमी जो

दी जाती, जो न्याय मिलता, उसे वह मंजूर कर लेता। यदि उसे वह न्याय न जँचता, तो अपील करनेका उसे अधिकार था। इस अपीलके लिए गड़रियोंके देवताको बुलाना पड़ता। उस समय गड़रियोंके जाति और कुल-के बहुत-से लोग इकट्ठे होते और फिर न्याय किया जाता। परन्तु ऐसा कोई न करता। क्योंकि देवताको बुलानेमे एक बडा भोज देना पडता और इतने बड़े भोजके लिए सात-आठ-सौ रुपये खर्च करने पडते।

गाँवमें विवाह भी एकदम एक साथ कर देनेका रिवाज था। हर-साल एक मुहूर्त ले लिया जाता और उस दिन गाँवके सारे विवाह निपटा दिये जाते। इसके कारण सारे गाँवको खिलानेका बोझ एक ही पर न पड़ता था। जो दस-बारह विवाह होते, उनमे हर-एकके हिस्सेमे दस-बीस पत्तलें पड़ती। इस विवाहके दिन यदि धनाभावके कारण किसीका काम रुक जाता तो सारा गाँव एकत्र होता और, "अमुक आदमी अड गया है, आओ, हम सब मिलकर उसे धक्का दें"—यह विचार पक्का हो जाता। सब लोग मिलकर उसका बोझ उठाते और गरजीके घरका विवाह अच्छी तरह-से सम्पन्न हो जाता।

दादूकी धमकियोंकी जरा भी परवाह न कर मै बेधड़क गाँववालोमे मिल-जुल गया था। ऐसी परिस्थिति हो गयी थी कि मास्टरके बिना गाँव-वालोंका पत्ता न हिलता था।

गाँवमे किसान अँगुलियोंपर गिने जायें, इतने भी न थे, पर थे। मृगकी वर्षासे धरतीमे घासके अंकुर फूटे। वे खूब बढ़े और फैले। बोनीसे पहले एक बार जमीनकी जुताई करके किसानोंने इस घासका नाश किया और फिर आर्द्राकी झड़ी लगी। खेतोंमे कीचड हो गया। लोग बतरकी राह देखने लगे। वह भी आयी। कीचड़ सूखा। खेत इतने सूख गये कि उनमे बैलोंके पैर नहीं धँसते थे, मिट्टी इतनी भुरभुरी हो गयी कि नारीका छेद बन्द होनेकी कोई सम्भावना न रही। ओल भीतर चली गयी और ऊपरसे जमीन सूख गयी। तब बोनीकी दौड़-धूप शुरू हुई। बाजरा, मक्का आदि-

की बोनी होने लगी। बीज लेकर और हल जोतकर पौ फटते ही किसान खेतोंकी ओर जाने लगे।

इस बोनीकी गड़बड़ीमें शेकू मेरे पास आया। यह आदमी बहुधा गाँवमें नहीं दिखा करता था। उसके पास दो-तीन एकड़ जमीन थी। उसीकी सेवामें वह व्यस्त रहा करता था। खून-पसीना एक किया करता था। इतना ही वह जानता था। सुबह किरन फूटनेसे पहले ही बदनपर एक धोती ओढ़े वह मेरे पास आया। उस धोतीको उसने इस ढंगसे ओढा था कि उसका सूखा हुआ चेहरा और चल-चलकर खुरदरे हुए बेढब नाखूनोंवाले उसके पैर ही भर दिखायी दे रहे थे।

मै बैठा हुआ था। आयबू भी बैठा था।

शेकू खडे-खडे ही बोला, "ए मास्टर, मुझे एक बैल ला दे न कहीसे! मेरी बोनी रुकी पडी है।"

मै स्कूल-मास्टर था। मेरे पास बैल कहाँ! परन्तु शेकूसे यह कहनेमें कोई मतलब न था। वह बोला, "तुम माँग दोगे तो मिल जायेगा। मेरे पास एक ही है। एक मर गया है। दूसरा मिलेगा, तभी बोनी कर सकूँगा। नही तो, पूरे साल भूखों मरनेकी बारी है।"

मैने कहा, "पर यह बताओ कि बैल किसके पास है तभी तो मैं उससे माँगूँगा।"

"जिसके पास है वह अपनी बोनी कर रहा है। अपना काम रोककर कौन देगा? मैने सबसे माँगकर देख लिया।"

"फिर मै किससे माँगूँ?"

"अब यह तुम जानो। कुछ भी करो, पर मेरी यह अड़चन दूर कर दो। सारा गाँव कहता है कि मास्टर वक्तपर काम आता है। फिर मेरे लिए ही क्यों इतने तन रहे हो?"

अभीतक आयबू चुप था। वह शेकूकी ओर मुँह घुमाकर बोला, "कैसा पागल है रे शेकू? मास्टरके पास बैल कहाँसे आयेंगे? वे क्या कोई

किसान हैं या बनजारे ? जो भी चाहा माँगने आ गया ? जा, घर जा।"

आयबूके इस तरह फटकारते ही शेकू नरम पड़ा। उसे शक हुआ कि उससे कोई गलती तो नहीं हो रही है।

"घर तो जाना ही है। पर मास्टर, देखो अगर कुछ मेरी भी मदद कर सको तो····!" वह नरम होकर बोला।

आयबू निश्चयपूर्वक उठा। उसने शेकूका कन्धा पकड़कर उसे सीढ़ियोंसे नीचे उतारा और कहा, "बडा अक़्लमन्द है रे शेकू ? बैल क्या मास्टरकी टेंटमें रखा है!"

और बड़ी दीनतासे कुछ पुटपुटाता हुआ शेकू चल दिया।

शेकूको बाहर खदेडकर आयबू लौटा और बोला, "उसकी बातपर कोई ध्यान न देना, मास्टर ? वह साला बुद्धू है!"

मुझे रह-रहकर लगा कि गाँवमें मेरा काम सिर्फ क-ख-ग पढ़ाने-लिखाने-का ही है। परन्तु इनकी जरूरतें कुछ दूसरी ही है। आयबूको कुटुम्बकी ज़रूरत है। आनन्दको रोटीकी जरूरत है। शेकूको बैल चाहिए।

दो दिन शेकू पूरे गाँवमे भटकता रहा, पर उसे बैल न मिला। वह घर जाकर चुपके-से बैठ गया। घरवालीसे बोला, "मेरी कहीं कुछ न चली।"

शेकूकी औरत गाँवकी सब औरतोंसे एक हाथ अधिक ऊँची थी। उसके शरीरमे शक्ति भी काफ़ी थी। खेतके सब काम वह मरदोंकी बराबरीसे किया करती थी। जब उसने देखा कि पति सिरपर हाथ रखे बैठा है, तब 'वह बोली, 'किससे माँगा था ?"

"सारे गाँव-भर घूमा कोई बैल नहीं देता।"

"फिर अब क्या होगा ?"

"इस साल भूखों मरना होगा। इसके सिवा और क्या होगा ?"

पतिकी यह बात पत्नीने सुनी, तेल खत्म हो रहे दीपककी तरह उसकी आँखोंको देखा और धीरजसे बोली, "कल बोनी करेंगे।"

"और बैल कहाँसे आयेगा ?"

"मै लाऊँगी ।"

"तू कहाँसे लायेगी ?"

"जहाँसे मेरा जी चाहेगा ।"

"फिर भी, सुनूँ तो—?"

"इससे तुम्हे क्या वास्ता ? मै तो बैल ले आऊँगी । तुम सुबह उठकर खेतमे चले जाना । बैल आ जायेगा ।"

यह सोचता हुआ कि औरत आखिर किसका बैल लायेगी । सुबह शेकू उठा और नारीको कन्धेपर रखे और एक बैल एक हाथमे पकड़े हुए, खेतमे गया । गाँवकी ओर मुँह करके मेडपर बैठ गया और पत्नीके आनेकी राह देखने लगा ।

एक घण्टा हो गया और शेकूकी औरत आती हुई दिखायी दी । पर उसके पास बैल न था । शेकूका मुँह उतर गया । औरतने शर्त लगाकर कहा था कि वह बैल ले आयेगी । पर उसे भी बैल नही मिला है । अब बोनी नही होगी । सबकी हो जानेके बाद यदि बैल मिला तो किस काम-का ? बो भी दूँगा तो फ़सल पिछड जायेगी । ठीक तरहसे बढ़ेगी नही ।

साल-भरका अनाज यदि न जुटा तो भूखों रहना पड़ेगा । गाँव छोड़-कर किसी रोज़गारकी तलाशमे गाँव-गाँव चक्कर काटने पड़ेंगे ।

यह बात मनमे आते ही वह मेहनती गड़रिया उदास हो गया और उसकी तगड़ी औरत खेतमें आयी ।

"क्यों री, बैल नहीं मिला ?"

"नहीं मिले तो क्या हो गया ? नारी जोतो ।"

"पर दूसरा बैल कहाँ है ?"

"मैं तो हूँ । एक तरफ़ बैल जोतो । दूसरी तरफ़ मैं जुतकर खीचूँगी !"

पत्नीकी यह बात सुनकर शेकू काँप उठा । उसकी समझमें न आया कि क्या करूँ ।

"छि: ! यह कैसे होगा ?"

परन्तु उस औरतने तो दृढ़ निश्चय ही कर लिया था। उसे अपनी ताक़तपर पूरा भरोसा था।

"अब कुछ सोचने-साचनेकी जरूरत नहीं है। उठो जल्दी और नारी जोतो।"

यह देखते ही कि पति अपनी जगहसे टससे-मस नही होता है और नीचे गरदन लटकाये बैठा है, वह स्वयं उठी और नारीमे एक तरफ़ बैल जोता और जुआड़ीका दूसरा सिरा अपने कन्धेपर रख लिया। फिर चिल्लाकर बोली, "हाँ, हाँको अब।"

फिर हृदयको पत्थर बनाकर वह दुर्बल शरीरवाला पति उठा और हलको मूठ पकड़कर उसने इशारा किया। बैल हिला, औरत हिली। नारीका कुसिया गीली ज़मीनमे घुसा और जमीन चीरता हुआ आगे बढने लगा। शेकूने मुट्ठीसे बीज छोड़ा। पोले बाँसकी नलीसे दाने नीचे उतरे और जमीनपर बिछने लगे। अपने बदनकी ताक़तसे शेकूकी औरत, बैलके साथ नारी खींचती रही।

सुबहसे दोपहर तक शेकूने बोनी की। फिर उसने और हाँफती हुई पत्नीने चुपचाप कलेवा किया। शेकूसे कुछ भी न बोलते बनता था। पत्नी-ने कुछ कहा। फिर दोनोंने मिलकर खेतमें पाटा चलाया जिससे कि बोया हुआ बीज पूरी तरह मिट्टीके नीचे ढक गया। शाम होते तक दो एकड़ खेत उन्होंने बो डाला। सूरज डूबनेके बाद थके-माँदे तीनों वापस घर आये।

यह समाचार गाँवमें फैल गया। सब लोगोंको बडा आश्चर्य हुआ। उसमे सराहना, आश्चर्य और खिल्ली उड़ानेका भी भाग था।

रातको शालामे घर लौटते समय शेकूके घरके सामने मैं क्षण-भर खड़ा हो गया। भीतर दीयेकी रोशनीमें शेकूकी औरत दीवालसे सटकर औंधी पड़ी हुई थी और उसकी पीठपर खड़ा हुआ शेकू पैरोसे उसका बदन दाब रहा था। उसने दोनों हाथोसे दीवालको पकड़कर उसका सहारा ले रखा था

और धीरे-धीरे एक-एक पैर उठाकर पत्नीकी दर्द कर रही पीठको दबा रहा था ।

दस

शनिवारको शालाकी छुट्टीके बाद मैं अपने गाँव गया और छह कोस जमीन खोदकर वापस लौटा । तब बिलकुल थक गया था । यह आना-जाना सचमुच बडा दुःखदायक था । यदि शारीरिक परिश्रमको छोड़ दें, फिर भी इतनी देर तक गाड़ीकी सडकसे चलते आना मुझे एक बडा संकट-सा लगता था । शालाको छुट्टी देकर रवाना होते-होते सुबहके दस-ग्यारह बज जाते थे । विभूतवाडी पहुँचते तक दोपहर ढल चुकी होती । वहाँ पहुँचते ही माँके हाथकी रसोई खाकर लम्बी तान देता तो शामको उठता । रातको नींद लेता । रविवारको दोपहरका भोजन होते-होते दिन डूब जाता और फिर वापस लौटनेकी चिन्ता लग जाती । रातको सोते समय मै बार-बार माँको जताता, "माँ, सुबह जल्दी उठकर चला जाऊँगा । साथ ले जानेके लिए रोटी बना देना ।" वह बेचारी एक नीदके बाद ही उठ जाती और रसोई बनाने लगती । इधर चाँदनी ऊगती और उधर पीठपर पाथेय बाँधकर मै बनगरवाड़ीके रास्तेपर होता । हर शनिवारको आने-जानेमे कोई बड़ा सुख न था । फिर भी जानेको जी चाहता । घरका आकर्षण कुछ और ही बात होती है ।

मेरी इस पाँव-पिटाईपर आयबूको भी दया आती । वह कहता, "मास्टर, घर कब बसाओगे ?"

"क्यों ?"

"खानेकी तकलीफ़ जो हो रही है तुम्हे । अब शादी कर डालो और गृहस्थी जमा लो ।"

शादी करके घर बसाना, और वह सिर्फ़ इसलिए कि खानेकी कोई तकलीफ़ न हो ? वरना आयबूको वैसे और किसी बातके लिए शादीकी कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती होगी। सच है, उस बेचारेने जो महसूस किया, वही कह दिया। हाथसे रसोई बनाकर चूल्हेमें हाथ जलाते रहनेसे कौन पुरुष नही ऊब जाता ? लेकिन सिर्फ़ इसी सुखके लिए और दूसरी बातोंका खयाल न कर शादी करनेका विचार मेरे मनमे भी न उठा। जब बहुत ही अलसा जाता तब किसी-किसी सप्ताह जाना टाल भी देता। कभी सोमवारके बदले मंगलवारको लौटता अन्यथा मेरी पाँव-पिटाई तो चल ही रही थी।

गाँवमे आया तो शाम हो चुकी थी। भेडें अभी जंगलसे नहीं लौटी थीं। इस बार रामाके सब रुपयोंको मै भँजा लाया था। सारा रास्ता तय करते हुए पाथेयके झोलेमें रखी हुई रुपयोंकी थैली मेरे सिरपर थी। उस थैलीको मजबूतीसे पकड़कर चलते हुए मेरे मनमे आता कि इस समय यदि अचानक कोई आ जाये और मुझे लूट ले तो मुझपर कितनी भयानक आपत्ति आ जायेगी। इस विचारसे दबा हुआ मैं बडी तेज चालसे आया था। गाँवमे प्रवेश करते ही वह भार मेरे सिरसे उतर गया। कमरेका द्वार खोलकर मैने बत्ती जलायी और मुँह-हाथ धोकर, ज़रा टिककर, बैठ गया। बहुत चलकर आनेके बाद पैर फैलाकर बैठनेमे कितना आनन्द आता है, यह जाननेके लिए उसका अनुभव ही करना चाहिए।

बरसाती हवाके कारण दीवालोंपर खार लग गया था। दो-चार दिन खुली हवा न आनेसे कमरेमे दुर्गन्ध भी छा गयी थी। कोनेमे बैठे हुए मच्छर उठकर खड़े हो गये थे। उनकी सिर पका देनेवाली गुनगुनाहट चल रही थी। मैं बहुत थक गया था—ऊब गया था। आँखें बन्द होने लगी थीं। परन्तु दीया-बत्तीके समय सोना उचित नहीं। यह लक्ष्मीके आनेका समय होता है। इसलिए इस समय सोना दरिद्रताका लक्षण है। परन्तु भाग्यवान् भी थकनेके बाद क्या करता है ? जहाँतक शरीरका प्रश्न है वह भाग्यवान्

और दरिद्री दोनोंके शरीर एक-से ही होते है। थक जानेपर वे विश्राम चाहेंगे ही। शरीर विश्राम लेने लगा तो आँखें बन्द होंगी ही और फिर नीद आ ही जायेगी। यह ठीक नहीं, यह अच्छा नही।

अभीतक यूँ ही बैठा हुआ था, अब लेट गया। दुख रहे बदनको ढीला छोड़कर पड रहा और आँखें भी बन्द कर लीं। आँखें बन्द कर लेनेपर उनके सामने झिलमिले वलय क्यों दिखते है? जामुनी-नीला और काला रंग क्यों दिखता है और किसलिए दिखता है? शालामे लड़कोने यदि यह प्रश्न पूछ लिया तो मास्टरकी आफ़त है? शायद इसका उत्तर सरल हो, बिलकुल मामूली हो, पर मै नही जानता। मराठी मिडिल पास करके मास्टर हुआ एक लडका क्या जान सकता है? परन्तु लडके यदि पूछ मारें तो आफ़त ही है? अब यह बात दूसरी है कि बनगरवाड़ीमे इतने होशियार लड़के नही है? परन्तु शिक्षक होनेके नाते यह बात मुझे मालूम होनी चाहिए। इसका कारण खोजकर निकालना चाहिए। आँखोकी बनावट कैसी होती है? आरोग्य-शास्त्रमे यह बात पढ़ी है जरूर····

पढी हुई बातें बडी जल्दी भुला दी जाती है। भारी हुई आँखें कसकर बन्द हो गयी। वे खुलती ही न थी।

क़रीब चार घण्टेके बाद मै जागा। तब बाहर रिमझिम बूँदें पड़ रही थीं। कमरेमे दीया न था और खुले द्वारसे चुभनेवाली हवा भीतर आ रही थी। मै उठकर बैठ गया और एकाएक मुझे याद आयी। झटसे उठा और सिरहानेकी ओर टटोलकर देखा। झोला हाथमे आया पर उसके भीतरकी रोटीकी गठरी और उसमे बँधी हुई रुपयोंकी थैली ग़ायब थी। मेरा कलेजा धक-से हो गया। अँधेरेमे ही मैंने बार-बार वह थैली इधर-उधर खोजी। झोलेमे-से कुछ रोटियाँ निकली। धोती, कुरता आदि और भी चीजें निकली। पर रोटीकी गठरी और उसमें रखी हुई रुपयोंकी थैली, उसका कठिन स्पर्श मेरे हाथको न लगा। जेबसे दियासलाई निकालकर मैंने मिट्टीके तेलका दीया जलाया। एक पागलकी तरह मैं झोला, बिस्तर और ज़मीन टटोलने लगा।

रुपये गायब हुए चार-पाँच दिन हो गये। मैं अपने नित्यके काम कर रहा था। खाता था, पीता था, शाला जाता था। रातको जाकर गाँव-वालोंकी सभा या पंचायतमे भी बैठता था। पर वे रुपये किस तरह ग़ायब हो गये, इसका मुझसे कोई अनुमान भी लगाते न बनता था। जैसे-जैसे इस विषयमे सोचने लगता वैसे-वैसे इस उलझनमे और भी अधिक फँसता जाता। मेरे मनमे आता—घरसे रवाना होते समय मैंने रुपयोंकी थैली अपने साथ रख ली थी या नही? रास्तेमे विश्राम करनेके लिए बैठा, उस समय रुपयोंकी थैली कही गिर तो नही पड़ी? सुरक्षाके लिए मैंने रुपयोंकी थैली और रोटियोंकी गठरी एक ही साथ बाँधी थी। यदि रास्तेमे अकेला पाकर कोई बदमाश मुझे घेर लेता तो उससे यह बहाना कर सकता था कि मेरे पास रोटियोंके सिवा और कुछ नही है····

अब तो रोटियाँ भी चली गयी थी और रुपये भी लुप्त हो गये थे। कोई कुत्ता रोटीकी बाससे वह गठरी न ले गया हो? या कहीं इस अजीब दिखनेवाले आयबूने ही बदला न निकाला हो। पर उसके चेहरेसे तो वैसा नहीं दिखता। उसके बरतावमे कोई संकोच नही दिखायी देता। फिर घरमे घुसकर रुपये कौन ले जायेगा? चौबीसों घण्टे यही एक विचार निरन्तर मनमे चक्कर काट रहा था। रामाने मुझपर विश्वास रखकर भुनानेके लिए रुपये दिये थे और उन्हे मै अपनी बेवक़ूफीसे गवाँ बैठा था। वे मैंने खाये न थे। वैसा विचार भी मेरे मनमें न उठा था। पर इसपर रामा क्या विश्वास कर लेगा? और वह क्यों करे? यदि मै जाकर उससे कहूँ कि भैया, तुम्हारे रुपये मेरे झोलेसे चोरी चले गये, तो वह जरूर यही कहेगा कि इस बेईमानने दस-पाँच रुपयोंको बडी ईमानदारीसे भेंजाकर हमे यह दिखा दिया कि हम बड़े सज्जन हैं और अधिक रक़म हाथमे आते ही उसे हड़प कर गया। आखिर यह अपनी जातपर ही गया। हमारे अनाड़ोपनका फ़ायदा उठाकर इसने अपनी जेब गरम की? सहज ही रामा बनगर यही कहेगा। जिस सज्जनताको पानेके लिए मैं जी-भर चेष्टा कर रहा था, उसे बातकी-बात-

मे सुरंग लग जायेगा। इस विचारके मनमे आते ही मैं बहुत अस्वस्थ हो जाया करता। मैं सोचता कि कहाँसे मुझे यह अक़्ल सूझी और मैंने इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी अपने सिरपर उठायी। सम्भव होता तो मै अपनी गाँठसे रामाके रुपये लौटा देता और उसे पता तक न चलने देता कि मेरे हाथसे उसके रुपये गुम हो गये। पर इतने रुपये मेरे पास न थे। मेरे घरमे न थे। कोई उधार देता, यह भी सम्भव न था। चारो तरफ़के रास्ते इस तरह बन्द हो जानेपर फिर मै यही सोचता रहता कि ये रुपये कहाँ और कैसे ग़ायब हो गये और रह-रहकर मुझे ऐसा शक होता कि कहीं दादूने तो कोई षड्यन्त्र नही रचा है! रह-रहकर लगता कि मास्टरसे बदला लेनेके लिए, उसे बदनाम करनेके लिए उसीने रुपये चुराये होगे। परन्तु आज तक वह चुप क्यो रहा, इसका कोई कारण मुझे देते न बनता। यह बात न थी कि मेरे घरसे लौटनेके बाद रामा मुझसे न मिला हो। वह शालामे आता था, बैठता था, लेकिन उसने कभी अपने रुपयोकी बात न निकाली। इस विचारसे कि मास्टरके पास जो मेरी रक़म है वह घरमे अपनी सन्दूक़मे रखी जैसी ही है, अभी उसे रेजगारी न मिली होगी, मिल जानेपर वह खुद घर आकर रक़म मुझे लौटा देगा, फिर व्यर्थ ही मै उसे क्यो छेड़ूँ, मनका ओछापन क्यो दिखाऊँ, रामा इस विषयमे मुझसे कुछ न पूछता था। और मै भी कुछ न बोलता था। लेकिन मै स्वयंको चोरकी तरह लगने लगा। मेरे मनमे आने लगा कि रामाकी नज़रमे न पड़ूँ उससे बोलना टालूँ, यह गाँव ही छोड़ दूँ, इन लोगोंमे-से किसीसे भी फिर कभी न मिलूँ और मै अपने-आपपर ही चिढ़ रहा था।

इस अवधिमें एक दिन पटेलकी साँवली नातिन धोती फड़फड़ाती हुई मेरे पास आयी। कमरेमे मै अकेला ही था। दरवाज़ेमे-से उसने झाँककर देखा एक बार दो बार तीन बार और मुँहको आँचल लगाकर वह बाहर ही खड़ी रही। मैने कहा, "कौन है?"

"मैं, अजी"

"पटेलकी अंजी ?"

"हाँ।"

"क्या काम है ? भीतर आ जाओ।"

अंजी शरमाती हुई आयी। वह करघेकी बुनी लाल सुर्ख धोती पहने हुई थी। हरे कपडेकी चोली थी। गाँवमें और पटेलके घर इस लड़कीको मैं बीच-बीचमे देखता रहता था। परन्तु मैंने अभीतक यह महसूस नहीं किया था कि वह इतनी नयी-नवेली है कि उसपर जाकर नज़र अटक जाये। जब मैं इस गाँवमे आया था, इस लड़कीका बाप मलेरियासे बीमार था। बिस्तरपर पड़े-पड़े नातिनके विवाहका प्रश्न भी बूढे पटेलके सामने उपस्थित था। क्योंकि अंजी तेरह पार कर चौदहकी सीमामे आ गयी थी। फिर भी उसके हट्टे-कट्टे बदनको देखकर लगता था जैसे वह लगभग बीसकी हो।

अंजीने यूँ ही अपना आँचल सँभाला। वह ज़रा नज़ाकतसे इधर-उधर मुडी और बोली, "विभूतवाड़ी कब जाओगे, मास्टर ?"

सप्ताह समाप्त हो रहा था। कल शनिवार था। और यदि कोई दूसरा काम न भी था, फिर भी रामाके रुपयोंका इन्तज़ाम करनेके लिए मुझे घर जाना ज़रूरी ही था।

"कल सुबह जाऊँगा। क्यों ?"

"मेरा एक काम करोगे ?"

शनिवारको अनेक लोगोंके काम मेरे पास रहा करते। किसीको दवा लाना, किसीके नोट भँजाना, किसीके मनीआर्डर करना, किसीके पत्र लिखना आदि।

"बताओ। करने लायक़ होगा तो करूँगा।"

अंजी बोली, "मेरी यह चोली सिलवा लाना।"

और मैं भौंचक्का होकर उसकी ओर देख रहा था तभी उसने नापके लिए पुरानी चोली और एक बढ़िया नया कपड़ा मेरे सामने रख दिया।

"चोरीसे बनवा रही हूँ। बूढ़ेसे मत कहना। मज़दूरी करके मैंने पैसे

बचाकर यह कपडा खरीदा है। दो महीने हो गये। अभीतक सिला न सकी। सिलाकर ले आओ। फिर मै सिलाईके पैसे दे दूँगी।"

और मैं 'हाँ' या 'ना' कहूँ इससे पहले ही कपड़ा और पुरानी चोली मेरे पास छोड़कर अंजी चल दी।

ग्यारह

शनिवारको दोपहर घर पहुँचते ही मैंने मौक़ा देखकर, रुपये खो जानेकी बात पिताजीसे कही। मेरी बात शान्तिपूर्वक सुनकर उन्होंने मुझपर पहले यह दोष लगाया कि मुझे वह जिम्मेवारी स्वीकार न करनी चाहिए थी।

मैंने अपने समर्थनमे कहा, "मुझे उसका विश्वास प्राप्त कर लेना था, इस लिए मैंने वह दायित्व लिया।"

"परन्तु तुम्हे यह भी तो सोच लेना चाहिए था कि यदि ये रुपये हमारे पाससे गुम हो गये, तो इतने रुपये लौटानेकी ताक़त हममे नहीं है, हमारे घरवालोंमे भी नही है। वे यदि न लौटाये जा सके तो इसके कारण आज तक हमने जो विश्वास प्राप्त किया है, वह सब जाता रहेगा?"

"हाँ पिताजी, भूल तो हो गयी है। अब मैं इस मामलेमे आपकी सलाह चाहता हूँ।"

पिताजी थोड़ी देर चुप रहे। व्यर्थका धन्धा करना उन्हे पसन्द न था। वे हमेशा कहा करते थे कि हमे किसीकी बातोंमे न पड़ना चाहिए, हमारी यह नीति होनी चाहिए कि हम भले और हमारा काम भला। रुपयों-जैसे दायित्व और जोखिमके मामलेमे तो हमे कभी भूलकर भी न पड़ना चाहिए। रुपयोंके कारण अवश्य ही बुराई पैदा हो जाती है। इसलिए मेरे द्वारा उठाये गये इस दायित्वकी झंझटको सुनते ही वे इस प्रकार कड़े शब्दोंमें बोले। लेकिन फिर शायद उनके मनमे आया हो कि लड़केसे यह

कहना कि जो तुमने किया है, अब तुम्ही उसे निपटाओ, उचित न होगा, वे बोले, "तुम उस गड़रियेसे साफ़-साफ़ कह दो कि रुपये चोरी चले गये है। तुम्हारे ही गाँवमे यह चोरी हुई है। आओ, हम-सब मिलकर इस चोरीका पता लगायें। चोर मिल जायेगा। यदि वह बहुत ही गडबड़ करने लगे तो कहना—मै कोई अपरिचित आदमी नही हूँ। मेरे पास ज़मीन है, घर है, सरकारी नौकर हूँ। तुम्हारे रुपये लौटा दूँगा ?"

पिताजीने जो बात कही वह मुझे भी जँच गयी। पर मुझे रह-रहकर लगने लगा कि मुझसे यह कहते न बनेगा। रामा विश्वास न करेगा। गाँवके लोग विश्वास न करेंगे। पुलिसमे खबर देनेपर भी कुछ लाभ होगा, यह निश्चित नही। अकारण गाँवमे आकर पुलिसवाले ऊधम मचायेंगे, किसीको भी पकडकर मारेंगे-पीटेंगे। सारे गाँवपर आफ़त आ जायेगी। सब लोगोंको कष्ट होंगे। इसलिए मेरे मनमे यह विचार पक्का होने लगा कि इस मामलेमे चुप ही रहूँ। किसीसे भी यह न कहूँ कि मेरे रुपये चोरी चले गये है, अपने पाससे रुपये उसके हवाले कर दूँ और चुप बैठ जाऊँ। अब हिसाब लगाने लगा कि मुझे इतने रुपये कहाँसे और कैसे मिलेंगे। परन्तु कही कोई मार्ग दिखायी नही दिया। तीन-चार मित्रो और एक-दो साहूकारोसे रुपये माँगकर देखे। परन्तु मुझ-जैसे व्यक्तिको इतने रुपये कौन देगा ? कोई पिताजीका हवाला माँगता। कोई साफ़ इनकार कर देता। घूमते-फिरते मै थक गया। मुझे बुरा लगा कि मै तीन-सौ, साढ़े तीन-सौ रुपये भी नही जुटा सकता। मेरा मुँह ज़रा-सा निकल आया। इतवारको रातको मैने खाना भी ठीक तरहसे नही खाया। बड़ी देर तक नींद भी नही आयी। मेरी यह छटपटाहट माँने महसूस की और अँधेरेमे ही वह उठकर मेरे पास आयी। मन्द स्वरमे बोली, "राजाराम, अभीतक जाग ही रहा है, क्या रे ?" मैने 'हूँऽ' कहा और उसी समय उसकी हथेली मेरे शरीरपर फिर गयी।

"जो रुपये चोरी चले गये है, पहले देख ले कि वे मिलते हैं, या नहीं।

यदि गड़रिया बहुत ही पीछे पड़ गया तो तेरी ननसारमे जो घर है उसे बेच देना। चार-पाँच-सौ रुपयेमें मजेसे बिक जायेगा। उन रुपयोंको लेकर गड़रियाको दे देना। इसमे इतनी चिन्ता करनेकी क्या बात है ?"

माँकी इस बातसे मुझे धीरज बँधा। मेरी मदद करनेवाला एक है। यदि जरूरत पड़ ही गयी तो रामाके रुपयोको लौटानेका मार्ग निकल आया और चोरीकी बातको पचायतके वक्त गाँववालोको बतानेका मैने अपने मनमे निश्चय किया। परन्तु अब भी ये दोनों बातें मुझे बड़ी मुश्किल मालूम होती थी। मै माँके मकानको बेचना भी नहीं चाहता था और न रामासे यह कहना चाहता था कि मैने उसके रुपये गुमा दिये है। भँवरमे फँसे रहने-सी यह अवस्था इसी तरह रही आयी और माँको ऊपरसे यह दिखाता हुआ कि मैने सब फ़िक्र छोड दी है, सोमवारको बनगरवाडीकी राह ली।

सोमवारको शालाकी छुट्टीके बाद मैं अपने घर आया। मैने अपने मनमें पक्का निश्चय कर लिया कि रातको नित्यकी भाँति जब गाँववाले शालाके सामने इकट्ठा होगे, तब उन लोगोसे इस चोरीकी बात कह दूँगा। यह सब कहनेसे पहले एक बार बूढे पटेलकी सलाह लेनेके इरादेसे मैने आयबूको उसके घर भेजा। उसके हाथ यह सन्देशा भेजा, "थोडी देरके लिए आ जाइए। मास्टरका बड़ा ज़रूरी काम है।" आयबूके चले जानेपर मै यह सोचने लगा कि पटेलसे चोरीकी बात किस प्रकार कही जाये। चोरी हो गयी थी। मामला यहाँतक पहुँच गया था, फिर भी मेरे मनके एक कोनेमें लगातार लग रहा था कि इस मामलेमे मेरा कोई नुक़सान न होगा। सब मामला सरलतासे निपट जायेगा। मै व्यर्थ ही इसे तूल दे रहा हूँ—यूँ ही एक हौआ समझ रहा हूँ। रुपये चोरी नही गये है। वे सिर्फ़ भूलसे कहीं रह गये हैं—गुम गये है·····

मैं यह नहीं कह सकता कि मुझे ऐसा क्यों लग रहा था। पर लग रहा था ज़रूर। इस मामलेमे कोई बड़ा धोखा है, ऐसा मुझे सचमुच नहीं लग रहा था।

आयबू बूढ़ेके घरसे लौटकर आया, तो उसके चेहरेपर क्रोध झलक रहा था। जब वह नाराज़ होता तो उसके माथेपर बल पड जाते, गाल फूल जाते और दोनों हाथोंकी मोड़ सीनेपर आ जाती। वह द्वारपर पहुँचा ही था, तभी मैंने पूछा, "क्यों, बूढ़ेसे मुलाकात नही हुई क्या ?"

"मुलाक़ात क्यों न हुई ? मुलाक़ात न होनेके लिए क्या वह पन्त सरकार है ?"

"फिर क्या कहा उसने ?"

"उसने कहा, मैं नही आता। जाकर मास्टरसे कह दे कि मुझे फ़ुरसत नहीं है। फ़ुरसत होगी उस दिन मिलूँगा।"

मैं क्षण-भर सन्न हो गया। मुझे कभी धुँधली-सी भी कल्पना न थी कि मुझे पटेलसे ऐसा कोई उत्तर प्राप्त होगा। हमेशा 'मास्टर, मास्टर' करनेवाला, बड़ी समझदारीसे बरताव करनेवाला यह भावुक बूढ़ा इस तरह चिड़चिड़ा प्रत्युत्तर कभी न भेजेगा। मैने आयबूसे पूछा, "मज़ाक किया था या सच कहा था ?"

"उसमे मज़ाक काहेका ? अच्छी तरह तनतनाकर बोला था।" आयबूके नथुने गुस्सेसे फूल रहे थे। मास्टरके बुलानेपर गडरिया इस तरहका कोई जवाब दे, यह बात आयबूके हृदयको चुभ गयी थी। थोड़ी देर ठहरकर वह फिर बोला, "तुमपर वह बहुत बिगड़ा हुआ दिखा, मास्टर।"

मेरी कुछ समझमे न आया। बूढ़ा क्यों नाराज़ हो गया ? मैने उसका कौन-सा अपराध कर डाला ?

टोपी पहनकर मैं झट बूढ़ेके घर पहुँचा। चूल्हेके पास रखे मिट्टीके दीयेका धुँधला प्रकाश कमरेमें फैला हुआ था। चूल्हेके धुएँसे घर भर गया था। अंजी रातके भोजनके लिए रोटियाँ सेंक रही थी। मेरे आते ही उसने चोरीसे मेरी ओर देखा। उस देखनेका मतलब यह था कि मैंने जो चोली सिलायी है, उसके बारेमें बूढ़ेसे कुछ न कहना। वास्तवमें मैं कहनेवाला

भी न था। दीवालसे पीठ टेककर दोनों घुटने खड़े कर पटेल बैठा हुआ था। मेरे पहुँचनेपर उसने 'आओ' तक न कहा।

उस बौने घरमे खड़े होकर मैंने कहा, "क्यों बाबा, आज चुप क्यों बैठे हो ?"

बूढ़ेने सिर्फ़ 'हूँऽ' कहा, और गुमशुम ही रहा।

मुझे लगने लगा जैसे मेरे भीतरका चोर मेरे सामने आकर खड़ा हो गया है। धुएँसे काले हुए ऊपरके छप्परकी ओर देखता हुआ मै खड़ा रहा। अंजोको भी बडा अजीब-सा लगा। एक-दो बार बारी-बारीसे उसने मेरी ओर और बूढ़ेकी ओर देखा। उसका चेहरा व्याकुल हो गया था। बूढ़ेके इस बरतावका मतलब वह भी नहीं समझ पा रही थी। चूल्हेमे जलानेके लिए बाहरसे लकड़ियाँ तोड़कर लानेके बहाने वह बाहर आयी। मै और पटेल भीतर रह गये। वह अकड़कर बैठा हुआ था और मैं इस अवस्थामे खड़ा हुआ था कि अब क्या करूँ।

चूल्हेकी ज्वाला बुझ गयी थी और धुआँ अधिक निकलने लगा था। चूल्हेपर चढ़े हुए बरतनमे पक रही तरकारीकी गन्ध भापसे बाहर निकल रही थी। रट्‌रट् आवाज़ हो रही थी। द्वारसे आनेवाले हवाके झोकेसे दीयेकी रोशनी काँप रही थी। दीवालपर पड़ी हुई काली परछाइयाँ हिल रही थी।

मैं इस सम्भ्रममे पड़ा था कि अब क्या बोलूँ। यूँ ही मै खड़ा रहा और धीमे स्वरमे बोला, "मै आपसे कुछ बातें करना चाहता था, बाबा ? एक ज़रूरी बात आपसे कहनी थी।"

बूढ़ेने ज़रा भी ध्यान न दिया।

अंजी हाथमे लकडियोंकी कौरी लेकर भीतर आयी। झुककर चूल्हा फूँकने लगी। बूढ़ेने अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमे मुझसे कहा, "तुम जाओ, भाई। अपना काम करो। मुझसे कुछ न कहो। मैं एक न सुनूँगा।"

और अपनी जगहसे उठकर वह मेरी ज़रा भी परवाह न कर द्वारसे बाहर चला गया और अँधेरेमें लुप्त हो गया।

उस अपमानसे मेरे चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगी। कनपटियाँ गरम हो गयी। थूक गिटककर मैं बाहर जाने लगा, तभी अंजी धीरेसे बोली, "उस भडुवे दादूने बूढेसे कुछ कहा है।"

मैंने पूछा, "क्या कहा है ?"

"कौन जाने क्या बका है ! बडा झगड़ा करानेवाला है, मुआ ?"

मैंने सुन लिया। एक जवान लडकी घरमे अकेली रहते हुए उससे बातें करते खड़े रहना मुझे उचित न लगा और उससे बिना कुछ कहे, मैं घरसे बाहर निकल पड़ा। अँधेरेमे ठोकरें खाता हुआ अपने घर आया। आयबू दीया जलाकर बैठा हुआ था।

कुछ समय तक कोई किसीसे न बोला। परन्तु जो कुछ मैं सुन आया था, उसको कहे बिना मुझसे रहा नही जाता था।

"दादू बालट्याने बूढेके कान भरे है, आयबू, और इसीसे वह मुझपर बिगड गया है।"

आयबूको एकाएक समस्या कुछ सुलझी-सी लगने लगी।

"अच्छा, यह बात है ?"

"हाँ, मुझे पता लगा है और वह सच भी होगा।"

"सच तो है ही। बालट्या तुमसे बहुत जलता है, मास्टर ?"

"परन्तु जलनेका कोई कारण नहीं है। मैंने उसका क्या बिगाड़ा है ?"

"जबसे तुम गाँवमें आये हो, तबसे लोगोंपर उसकी रंगदारी नहीं चलती। कोई उसे पूछता नहीं है।"

"क्या वह बड़ा नक़शेबाज़ है ?"

"हाँ, नहीं तो उसका पेट कैसे चलता है ? अजी वह खासा हट्टा-कट्टा और गोल-मटोल नक़शेबाज़ है। एककी पगड़ी दूसरेके सिरपर रखना और दूसरेकी तीसरेके सिरपर रखना—यही धन्धा है उसका।"

किसी उपन्यास या नाटकमे जैसे खलनायक हो, उस तरह यह बालट्या मेरे पीछे क्यों लगा था, यह मेरी समझमे न आता था। मैने उसका कुछ न बिगाड़ा था, कोई अपराध न किया था। परन्तु पहले दिनसे ही वह शनिकी तरह मेरे पीछे पड़ गया था। जैसे मेरी ओर उसकी शत्रुता जन्मजात ही थी। कौवे और उल्लूमे तथा साँप और नेवलेमे जैसी होती है ठीक उसी तरह यदि यह मान भी लिया जाये कि मेरे आनेके बादसे गाँवमे उसका प्रभाव कम हो गया है, नक़शेबाज़की हैसियतसे उसकी कोई रंगदारी नही चलती, लोग उससे सलाह पूछने नही जाते तो बिलकुल पहली ही मुलाकातमे उसने मुझे क्यों फटकार बतायी! शायद मेरे पहलेवाले मास्टरने उसका कोई अपराध किया होगा और मास्टर जातिपर वह नाराज हो गया हो। परन्तु इतने दिनों तक गाँवमे मैने जो व्यवहार रखा है, उसे देखते हुए उसकी नाराज़गी निकल जानेमे कोई हर्ज न था।

आयबू उठा और रोटियाँ माँगनेके लिए गाँवमे चल दिया। एक तो रामाके रुपयोंकी चिन्ताने पहले ही मेरी नीद उड़ा दी थी। उसपर बालट्याका यह पुराना रोग फिर उमड़ पड़ा। पहलेसे ही जिसका मुझे पूरा-पूरा सहारा था और जो गाँवमे सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति था, वह बूढा पटेल भी मुझपर बिगड़ गया था! आजकल मुझमे यह विश्वास जम गया था कि गाँवमे मै कोई अच्छा काम करूँगा और यह आशा हो गयी थी कि शिक्षा-विभागसे प्रशसा प्राप्त करूँगा और तभी ये घटनाएँ घटी।

मेरा मन गिर गया। उठकर मैने कुल्ली की। घरसे जो रोटियाँ बाँध लाया था, उन्हे निकाला। अकेला ही बैठे-बैठे खाने लगा। उस खानेकी आवाज़ भी मुझे बड़ी लगने लगी।

और आनन्दा रामोशी आया। द्वारके बाहर ही खड़ा होकर बोला, "क्या अकेले ही हो, मास्टर?"

"हाँ, अकेला ही हूँ। रोटी खा रहा हूँ। क्यों, क्या है रे आनन्दा।"

"खा लो। मैं फिर आता हूँ थोडी देरमें।"

"रोटी तो खा चुका। कुछ काम है क्या ?"

"मैने बची हुई रोटियोंको बाँधकर रख दिया। हाथ धोये और आनन्दा भीतर आकर बैठ गया। कमरेका दरवाज़ा उसने भेड़ लिया।

मन्द आवाज़में उसने पूछा, "तुम्हारे रुपये चले गये है क्या इस कमरेसे ?"

मुझे एकाएक धक्का लगा। सोचा, जिस बातको अभीतक मेरे सिवा और कोई नहीं जानता, वह आनन्दाके पास कैसे पहुँची ? उससे किसने कहा ? जब कि उसे यह बात मालूम है कि इस कमरेसे मेरे रुपये चले गये है, तो उसे यह बात भी मालूम होनी चाहिए कि वे रुपये मुझे किसने और क्यों दिये थे। यह बात अब गाँव-भरमे फैल जायेगी कि रामाके द्वारा भेंजानेके लिए दिये गये रुपयोको मै हज़म कर गया। मतलब यह कि इतने दिनों तक मैने अपनी प्रतिष्ठाको बचानेका जो प्रयत्न किया वह सब व्यर्थ ही हुआ। अब क्या इसे सच्ची बात बता दूँ या टालमटोल कर दूँ— या कुछ भी उड़न-छू उत्तर दे दूँ ? मै काफ़ी घबड़ा गया और मेरे मुँहसे निकल ही पड़ा, "हाँ, तुझे कैसे मालूम हुआ ?"

"मुझे मालूम है ?"

"परन्तु कैसे ?"

आनन्दा शान्तिपूर्वक बोला, "मै ही ले गया था उन्हे।"

मुझे अपने कानोंपर विश्वास न होता था। मै अपनी आँखों और खुले मुँहसे सिर्फ़ देखता रहा।

आनन्दा अपने साथ धोतीकी एक गठरी लाया था। वह गठरी उसने खोली और उसमें बड़ी हिफ़ाज़तसे रखे हुए रुपये निकालकर उन्हे मेरे सामने रखता हुआ बोला, "जैसा ले गया था उसी तरह वापस ले आया हूँ। लो अपनी जोखिम सँभालो।"

मैं रुपयोंपर टूट पड़ा। उन्हें अपने कब्ज़ेमें किया। मनपर-का एक

भारी बोझ उतर गया। मुझे लगा, मेरे आपत्तिकालमें यह आनन्दा एक परमेश्वरके रूपमें मेरे सामने आकर खड़ा हो गया।

फिर आनन्दा बोला, "गिनकर देख लो। मैं इसमें-से तीन रुपये दस आने खा गया हूँ।

उन्हें मैं नहीं लौटाऊँगा। परन्तु बाक़ीके तुम्हारे सब रुपये ज्योंके-त्यों हैं।"

उस रामोशीपर मुझे बड़ा क्रोध आया और उसके प्रति प्रेम-भाव भी पैदा हुआ।

"आनन्दा, तू रुपये क्यों ले गया था रे? ये तुझे मिले कहाँ?"

आनन्दाने कहा, "खण्डोबा (एक देवता) की सौगन्ध खाकर कहता हूँ मास्टर, मैं चोरी करनेके इरादेसे इन रुपयोंको नहीं ले गया था। मैं तुम्हारे पास रोटी माँगने आया था। परन्तु उस वक्त तुम्हें नींद लगी थी। सोये हुए आदमीको किस तरह जगाता? तुम घरसे जो रोटियाँ बाँधकर लाये थे उसकी गठरी तुम्हारे सिरहाने रखी थी। वह मुझे दिख पड़ी। उसकी खुशबू आने लगी। सोचा यही रोटियाँ ले चलूँ। मास्टर जाग जायेगा तो उसे लगेगा कि कोई कुत्ता ले गया होगा। ऐसा सोचकर मैंने चुपचाप गठरी उठायी और बग़लमें दबाकर उसे घर ले गया। वहाँ जब गठरी खोली तो रोटियोंके साथ ढेर-से रुपयोंसे भरी एक थैली भी थी उसमें। उसे देखते ही दिलमें लालच आया।"

"ठीक? पर इधर तो मेरा गला फँसा था।"

"वह कैसे फँसेगा, मास्टर? पाण्डुरंग आपका सहायक है। मैं वेरड जातिका हूँ। चोरियाँ हज़म कर जाना मेरा धन्धा है। इन सब रुपयोंको हज़म कर जाना मेरे लिए मुश्किल न था। पर आठ दिन तक रुपये अपने घरमें रखे रहा और लगातार मनमें आने लगा, "अबे आनन्दा, मास्टरके रुपये क्यों लिये रे? मास्टर क्या कोई साहूकार या ज़मींदार है? उसे यह धोखा क्यों दे रहा है? तू उसके साथ उठने-बैठनेवालोंमें-से है। उसके

साथ इस तरह दग़ा करना उचित नहीं। "और मास्टर, आज ये रुपये लाकर तुम्हारे चरणोंमें रख दिये है। अब तुम चाहो तो पुलिसमें रिपोर्ट कर दो, मुझे जेल भेज दो और चाहो तो माफ कर दो।"

यह सारा वृत्तान्त आनन्दाने इतने सहज भावसे और दिल खोलकर कहा था कि मुझे यही नहीं सूझ पड़ता था कि इसपर मैं उससे क्या कहूँ। छुटपुट चोरियाँ करनेवाले इस रामोशीने बड़ी दूरका पल्ला गाँठा था। परन्तु आप-ही-आप आकर उसने वह रकम लौटा भी दी थी। चोरीके इरादेसे वह मेरे कमरेमे घुसा था, परन्तु वह रोटीकी चोरीके इरादेसे, रुपये चुरानेका उसका बिलकुल विचार न था। वही उसके साथ चले गये। पर अब वह जो यह कह रहा था कि मुझपर तरस खाकर उसने वे लौटा दिये है, यह बात सच न होगी। यह सोचकर ही कि इतनी बडी चोरीका पता दस-पन्द्रह दिनोंमे ज़रूर लग ही जायेगा, आनन्दा सज्जन हो गया। छोटी-मोटी चोरियाँ करके भी दस-पन्द्रह दिनोमे वह मालिकोके पास स्वीकार कर लेता था। चोरी गया हुआ माल इतना मामूली रहा करता कि उसके लिए चार गालियाँ देनेके अलावा कोई उसे दूसरी और सज़ा न दिया करता था। क्योंकि आनन्दा कहा करता माँगकर कोई नही देता इसलिए चुपचाप उठाकर ले जाना पड़ता है। और मैं ज्यादा कहाँ ले जाता हूँ। जितना पेटके लिए ज़रूरी होता है, उतनी ही की मुझे ज़रूरत होती है। ढोर खाते है, पक्षी खाते है, कोड़े खा जाते हैं, उस तरह सोच लिया करो कि आनन्दा खा गया और व्याकुल न हो। पलथी मार-कर आनन्दा मेरे सामने बैठा था और मै क्या कहूँगा इस तरफ़ उसका ध्यान था।

मुझे क्रोध आया। ऐसा लगा कि इस शख्सका अब फिर कभी मुँह भी न देखूँ। उसकी इस मूर्खताके कारण मुझे कितनी मानसिक यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ी थी। पिछले आठ दिन मेरे प्राण कैसे हो गये थे?

ज़ोरसे चिल्लाकर मैंने कहा, "अबे बड़ा होशियार है? जा मुँह काला

कर यहाँसे । मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहता ।"

आनन्दा कुछ भी न बोला । कानपर रखी हुई आधी जली बीड़ी निकालकर उसने दीयेपर जलायी और वह उठकर चल दिया ।

मैं उठा और सीधा रामाके घर गया । उसके रुपये उसके हवाले किये और छुटकारेकी साँस ली ।

रामा बोला, "कोई जल्दी नही थी, मास्टर ? रुपये तुम्हारे घरमे थे यानी मेरे ही घरमें रखे थे ।"

मैंने कहा, "सच है ।"

बीचके समयमे क्या उथल-पुथल हो गयी इसकी उसे कोई कल्पना न थी । अन्तमे वापस घर लौटते समय मैंने विनम्र शब्दोंमे रामासे कहा, "रुपये घरमे न रखो । किसी धन्धेमे लगा दो । जमीन खरीद लो या भेड़ें ले लो ! परन्तु यह जोखिम घरमे मत रखो । बुरे दिन कहकर नही आते ।"

आगे चलकर कुछ दिनोके बाद रामाने उन रुपयोकी भेड़ें खरीदी । उसका खिरका बहुत बड़ा हो गया ।

बारह

बाजरा धीरे-धीरे बढ़ गया । पोटरीसे लम्बी डण्डियोके छरहरे बदनके भुट्टे बाहर निकले । हरी डण्डियोपर कत्थई रंगके भुट्टे सर्वत्र डोलने लगे और शीघ्र ही जामुनी रगके फुलेरोंसे खिल गये । वह सुकुमार फुलेरा भर गया और छोटी-छोटी चोटियाँ भुट्टोपर चढने लगीं । मधु-मक्खियाँ भुट्टोके आस-पास मँडराने लगी । पीले रंगकी छोटी तितलियाँ जोड़ी-जोड़ीसे चक्कर काटती हुई आकर बैठने लगीं । मस्तीसे बह रही हवामे फुलेरा उड़ने लगा और भुट्टे खुलने लगे । उसी खेतके भीतर बाजरेमे मिलाकर बोयी हुई दलहनकी बेलें फैलने लगी । मटकोकी फलियोंके गुच्छे कहीं-कहीं दिखायी

देने लगे। कुलथीको जोश आया। अरहरके सीधे फैले हुए पेडोंपर सांवले रंगकी फलियाँ दानोंसे भरने लगीं। मूँगफलीकी जड़ोंमे गाँठें लगने लगीं। बाँधोंपर उगे हुए पौधोंके सफ़ेद और जामुनी रंगके तुर्रे झूमने लगे। और शीघ्र ही फुलेरोंसे भरे हुए बाजरेके भुट्टे चमकदार दानोंसे ठस गये। चिड़ियोंके दलके-दल उड़ते हुए आकर उन दूध-भरे दानोंको चुगने लगे।

जिनके खेत थे वे लोग बहुत सवेरे उठकर रखवालीके लिए खेतमे जाने लगे। बनगरवाड़ीके स्त्री और बच्चे मज़दूरीके लिए पड़ोसके गाँवोंके खेतोमे जाने लगे।

हरी घास खाकर भेड़ें गोल-मटोल दिखने लगी। उनके शरीरपर चरबी बढ़ी। आड़े वक़्त जब गड़रिया उन्हे बाजार दिखाता तो उसे उनके अच्छे दाम मिलने लगे।

बाजरा काफ़ी पक गया। लड़के काले खजूर खाकर तैयार होने लगे। दशहरा आया। लोगोंने सीमोल्लंघनके सोम-पानके साथ बाजरेके नये भुट्टे भी बाँटे और फिर कटाई शुरू हुई। पाँच महीने बढ़े हुए बाजरेके मज़बूत तने हँसियोंकी भारसे आडे पड़ गये। यदि वे इसी तरह ज़मीनपर पड़े रहने दिये जायें तो ज़मीनमे रहनेवाले कीड़े भुट्टोंको खा जायेंगे, इसलिए लगे हाथ उन्हे बटोरकर इकट्ठा खड़ा करके झोपड़ीके आकारकी जूड़ियाँ बना दी गयी। दाब और गरमाहटके कारण बाहर न निकले हुए दाने भी बाहर निकल पड़े और फिर दूसरे-तीसरे दिन जूड़ियाँ खोलकर छोटी-छोटी कोथलियाँ बनायी गयीं। एक दूसरेसे सटाकर खड़ी की हुई वे पूलियाँ धूप लेने लगीं। गीले दाने सूखने लगे। सुबहो-शाम चिड़ियाँ और हरियलोंके झुण्ड उनपर आकर जमा होने लगे।

जिन्हे जल्दी थी, उन्होंने भुट्टे तोड़े और उन्हें पीटकर दाने निकाले। घरके मवेशी कुरकुरी कड़बी खाने लगे और घरोमें हरी ज्वारकी रोटियाँ सिकने लगीं। जिनके घर रातिब था उन्होने इस कामकी चिन्ता न की और दूसरे कामोंको करनेके बहाने बाजराकी मिसाईके कामकी टालमटूल

करने लगे। लेकिन आज नही तो कल उन्हे भी यह सब करना ही था।

धीरे-धीरे दलहनें भी निकली। कुलथीकी फलियोके खुनखुने बजने लगे। कुलथी निकली, मूँगफली उखडी, अरहर निकली, मटकी निकली। खाली खेतोमे मवेशी घूमने लगे। भेड़ें घास-पातमे मुँह मारने लगी। बाजरे-की बंजर भूमि और लाल खेत सूने दिखने लगे।

कडाकेकी ठण्ड शुरू हो गयी। रातको और सुबह घास-फूस इकट्ठा कर लोग तापने लगे। उनके मुंह और होठ ठण्ड-से फटने लगे। गडरियोके काले अंग काले कम्बलसे बाहर नही निकलते थे। नालेके निर्मल पानीपर और कुएँपर सुबहके समय भाप दिखायी पड़ती थी।

इस बीच उत्तरा नक्षत्रमे बोयी गयी ज्वारने जोर पकडा। काले खेतोमे ज्वारके तने घुटनों और जांघो तक बढ गये, धीरे-धीरे कमर छूने लगे। बीच-बीचमे बोये खिले कुसुममे कांटे आ गये। चना भी भरपूर फूल उठा। देखते-देखते ज्वारमे भुट्टे दिखने लगे। कुसुममे सुन्दर पीले फूल आये। चनेमे नन्ही-नन्ही घण्टियाँ लटकने लगी। हरे डण्ठल खाकर मवेशी भी फूलकर मस्त हो सफेद चिट्टा दिखने लगे। सीगोसे मिट्टी खोदने लगे। मोटे तनेका गन्ना और चनेका होरहा खानेके लिए लडके चोरियाँ करने लगे। रखवालकी नजर बचाकर बकरे ज्वारके तने खरोंचने लगे। चिपचिपे हाथो और सफ़ेद उभरे हुए मुंहसे नटखट लडके खेतोमे ऊधम मचाने लगे।

जगह-जगह होरहा भूँजनेके लिए अलाव सुलगे। सुबहसे ही हर खेतमे जल रही आगका धुआँ उठता दिखायी देता। जवान लड़कोने तो चनेके इन कोमल दानोसे ही अपना पेट भरना शुरू कर दिया। बूढोंने भी खरलमे कूटकर उसका स्वाद चखा। स्त्रियाँ और लड़कियोने भी समय निकालकर चार दानें मुँहमे डाले।

पिछले सालोंकी तरह, इस बार भी परदेशी पक्षियोके झुण्ड आये जैसे उन्हे सन्देशा पहुँच गया हो। सूरज निकलते ही दूरसे उनकी आवाज़ें कानों-मे पड़ने लगीं। सुनील निर्मल आकाशमे उनके हज़ारों-हज़ार दल उड़ने

लगे। उड़ते-उडते उनकी एक बडी लम्बी क़तार, भिन्न-भिन्न प्रकारके आकार लेने लगी। आँगनमे और खेतमे खड़े हुए लड़के मुँह उठाकर चिल्लाने लगे, "काड्याकरकोच्या, बारा बैलांचा नागर धर, नागर धर"

(हे करकोच पक्षियो, बारह बैलोंका हल पकडो—बारह बारहकी कतारमें हो जाओ।)

पक्षियोंकी यह फ़ौज फ़सलको नुकसान न पहुँचाये इसलिए किसान सिरके साफे हवामे ऊँचे फेंक ऊपर लहराकर उन पक्षियोंको डराते और ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाते। फिर भी ऊँची-ऊँची टाँगोवाले पक्षी, गोलके गोल मँडराते हुए, फ़सलोंपर हमला कर देते और "ट्राँव ट्राँव" चिल्लाते हुए ज्वारके भुट्टे खरोंचते।

तीन मुर्गियोंके बराबर वजनवाले और चरबीसे भरे हुए इन पक्षियोंको देखकर रामोशियोंके मुँहमे पानी भर आया। टोपीदार बन्दूक और गुलेल आदि लेकर उनके जवान लड़के इन पक्षियोंके पीछे दौडने लगे। और परिणामस्वरूप दो-चार पक्षी घायल होकर नीचे गिरने लगे। बहुत दिनोंके बाद रामोशीकी झोंपडीसे पक रहे मासकी गन्ध उठी।

कुसुमके खिले हुए फूलोंसे मधु इकट्ठा कर सुरक्षित जगहोंमे मधुमक्खियोंने छत्ते बनाये। टहनियाँ काटनेकी छोटी-छोटी कुल्हाड़ियाँ लेकर गड़रियों और रामोशियोंके लड़के जगलोंमे घूमने लगे और करीलकी सघन झाड़ियोंमे बने छत्तोंको ढूँढ़-ढूँढकर उनके मधुर शहद खाने लगे।

और फिर ज्वारकी फ़सलें तैयार हुईं। कुसुमकी फ़सल पकी। चना तैयार हुआ। जगह-जगह खलिहानोंकी धूम शुरू हो गयी। लोगोंने अपने खलिहानोंको लीप-पोतकर तैयार किया। भुट्टे काटकर अलग किये गये। मोगरोके प्रहार उनपर पड़ने लगे। उड़ावनी हुई। हवाके झोंकेसे भूसा एक ओर हट गया और मोती-जैसे ज्वारके दानोंका ढेर लग गया। पवनीके हक़दारोंकी धूम मची। ढेरियाँ नापी गयीं। और अन्तमे पक्षियों, मवेशियों और चोरोंसे बचा हुआ अनाज किसानके घर आया।

मूँगफली और चनेके ख़ाली खेतोंमे घूम-घूमकर ग़रीबोने वहाँ पडे एक-एक दाने बीनकर घर ले आये। जो दाने उनकी नज़रसे चूक गये उन्हे चिड़ियोंने चुग लिया, चीटियाँ ले गयी। इनसे भी जो बचे वे जमीनमे पडे रहे और बारिशकी बाट जोहने लगे।

दस महीनोंके बाद हरे खेत फिर काले दिखे। फ़सली मौसम ख़त्म हो गया। पक्षी तितर-बितर हो गये। किसानोको राहत मिली और मुँहमे सुरती दाबकर घड़ी दो घड़ी शान्तिपूर्वक बैठने लगे।

नट और नटनी आकर अपनी कलाबाजियाँ दिखाने लगे, मदारी आकर रीछको नचाने लगे, जादूगर आकर हाथकी सफ़ाई दिखाने लगे। इन खेलोंको देखकर गाँववाले अपना मनोरंजन करते। हँसते और खुशियाँ मनाते। खुश होकर सेर-सवा सेर अनाज नट, मदारी और जादूगरको दे देते।

गडरियोंके लड़के भी गोल बनाकर नृत्य करने लगे। शीशे लगी हुई, सफ़ेद धागेसे मोर और बैलके चित्र कढी हुई काली जाकटें बदनमे पहने और हाथोंमे रंग-बिरंगी रूमाल लेकर वे गोलमे खडे हुए। एक बडा ढोल लेकर ढोलवाला 'इडिबाग-डीपांग' करने लगा। झाँझवाला झाँझ बजाने लगा। हरे और लाल रंगके रूमालोंको हवामे उड़ाते हुए गड़रिये आगे-पीछे क़दम रखने लगे। मन्द गतिसे नृत्य शुरू हुआ। धीरे-धीरे गति बढ़ी। पैरों-की थिरकन भी बढ़ी। नीले और जामुनी रंगके रूमाल उड़ने लगे। ढोल घूमने लगा। देखते-देखते वे पचीस-तीस गड़रिये और वह ढोलकवाला, सब इकट्ठा हो गये। और ऐसा लगा, जैसे एक ही कलाकार मस्त होकर नाच रहा है।

ज़मीनपर बिछे कम्बलपर बैठे हुए गड़रिये, दरवाज़ोंपर खड़ी होकर देखनेवाली स्त्रियाँ और बच्चे, अपनी सुध-बुध भूल मानो समूची बनगरवाड़ी नृत्य करने लगी, "इडिबांग-डीपांग-डिपोबाडी डीपांग-डीबाडो-डीपांग-डीपांग-डोपांग-डीपांग····"

तेरह

एकाएक बिगड जानेवाला पटेल बहुत दिनों तक मुझसे न बोला। कभी स्कूलमे भी आकर न बैठा। कभी मेरे घर न आया। मेरी पूछ-ताछ करना उसने छोड दिया। पहले तो मुझे इस बातकी बडी चिन्ता हुई, किन्तु आगे चलकर मै भी यह सब भूल गया। थोडा-सा अहम्भाव मुझमे भी आ गया। न कहूँ, फिर भी मुझे यह बात लग गयी कि मेरी कोई गलती न होते हुए भी यह बूढा एकाएक मुझपर बिगड जाता है और उस बालट्या-की बातोमे आकर बातचीत करना बन्द कर देता है? अपने-आप जाकर बूढेसे बातें करनेकी कोशिश करना मैने छोड़ दिया। स्कूलकी स्थिति काफ़ी सुदृढ़ हो गयी थी। लड़के बहुत आने लगे थे। उनकी परीक्षा, पढायी और उपस्थितिकी ओर अब अधिक ध्यान देना पडता था, क्योकि अफ़सर लोग आते रहते थे। शिक्षा-विभागको यह ज्ञान हो गया था कि गाँव-गाँवमे जो शालाएँ खोली गयी है उनका समय-समयपर निरीक्षण भी करना चाहिए। ऊपरसे भिन्न-भिन्न प्रकारकी सूचनाएँ आया करती थी, आदेश निकलते थे। फ़सली मौसमको छुट्टियोमे तितर-बितर हुए लड़कोको इकट्ठा करके उन्हे फिर नियमित रूपसे शालामे लानेका कठिन काम आयबू, रामा बनगर और आनन्दा रामोशी कर रहे थे। गाँववाले भी अब मेरी बातको नही टालते थे। शाला और मास्टरके प्रति उनमे अपनापा भर गया था।

एक सोमवार मै शालामे गया तो लड़कोने समाचार दिया कि तीसरी कक्षाके एक छात्र 'सता' ने अकेले ही एक भेड़ियाको मार डाला। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ।

"कैसे मारा रे?" मैने पूछा।

"बबूलके काँटे साफ़ करनेकी छोटी कुल्हाड़ीसे मार डाला, मास्टर! उसका चमडा उसके घर टँगा हुआ है।"

"सता कहाँ है? क्या शालामे नहीं आया है?"

अब वह स्कूल नहीं आयेगा, मास्टर। उसके बापने उसे भेडें चरानेके लिए भेज दिया है।

रातको नित्यकी भाँति शालाके सामने जब लोग इकट्ठे हुए, मैंने उनसे पूछा, "क्या यह सच है कि सताने भेड़िया मारा?" और उन्होंने वह वृत्तान्त मुझे विस्तारपूर्वक कह सुनाया।

गाँवके आस-पासकी झाडियोंमें एक-दो भेडिये हमेशा रहा करते। इक्का-दुक्का खिरका देखकर, वे भेड पकडते और उसको लेकर भाग जाते। यदि सब ठीक-ठाक हुआ तो गडरिया पीछा करता और भेडियेको मुँहका कौर नीचे डाल देनेके लिए मजबूर करता। तोडो गयी भेडका गला फट जाता। छोटी जातिके लोग उसे थोडी क़ीमतमें खरीद लेते और खा डालते। लेकिन, बहुधा गडरियोंको निराश ही होना पड़ता और भेड़िया भेड़को ले जाता। ऐसी घटनाएँ बार-बार होती रहती। जब भेड़िया बहुत ऊधम मचाने लगता, तब किसी दिन गाँवके बीस-पचीस जवान लाठियो और कुल्हाडियोंसे लैस होकर बाहर निकल पड़ते। चिलचिलाती धूपमें जंगल-जंगल घूमते। हाँका करके भेडियेको बाहर निकालनेकी कोशिश करते। परन्तु चालाक भेड़िया उन्हें न मिलता। और फिर दिन-भर लगातार बेकार घूमकर किसीके भी खेतका चना या मूँगफली उखाड़कर खाते हुए शिकारियोंका यह दल खाली हाथ लौट आता। फिर चार-छह दिनके बाद किसी भेड़को तोड़नेकी खबर आती। इतना सब होते हुए भी भेड़िया मारनेका विशेष प्रयत्न किसीको न सूझता। चूँकि यह जानवर खाया नहीं जाता इसलिए रामोशी लोग इसके शिकारमें कोई दिलचस्पी नही लेते थे। और अन्य गड़रियोंकी यह भी धारणा थी कि खिरकेसे भेडिया यदि भेड़ ले गया तो भेड़ोंको कोई संक्रामक या छूतकी बीमारी नही होती। इस विश्वासके कारण भेडिये ढीठ हो जाते और दिन-दहाडे खेतोंमें घूमते रहते। यदि किसी मनुष्यको देख लेते तो चट जमीन खोदने लगते।

सताके बाप विराको किसी कामके लिए दूसरे गाँव जाना पड़ा। इस-

लिए उसने भेडें चरानेका काम सताके जिम्मे सौप दिया। टहनियाँ काटनेकी छोटी कुल्हाड़ी हाथमे लिये सता हारमे भेड़ें चरा रहा था और शामको भेडियेने जंगलके एक ऊँचे-से स्थानपर चढकर खिरकेकी टोह ली। करीलकी झाडियोमे-से लुकता-छिपता हुआ किनारे-किनारे चलकर वह खिरकेके नजदीक आ पहुँचा। फिर भी सताको कोई पता न चला। अन्तमे खिरकेसे अलग होकर चरती हुई एक हट्टी-कट्टी भेडको देखकर भेडिया उसपर झपट पड़ा और उसके गलेको मुँहमे दबाकर भागने लगा। सताका शिकारी कुत्ता आगबबूला होकर भौकता हुआ दौड़ा। तब सताका भी ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ। भेड़िया किनारे-किनारे बेतहाशा भाग रहा था।

जोर-ज़ोरसे गालियाँ देता हुआ सता भी दौड़ा। कुत्ता भी दौडा। बातकी-बातमे कुत्ता जाकर भेड़ियेसे भिड़ गया और उछलकर उसने भेड़ियेके पिछले भागको पकड़ लिया। उस वेदनासे विह्वल होकर भेडियेने मुँहकी भेड़को नीचे डाल दिया और वह पीछे मुड़ा और दाँतसे कुत्तेकी गरदन पकड़नेकी कोशिश करने लगा—अपना पिछला भाग कुत्तेकी पकडसे छुड़ानेके लिए छटपटाने लगा। लेकिन जैसे-जैसे भेडिया मुड़ता जाता था कुत्ता भी उसी तरह मुडता और मुँहमे पकडे हुए भागको खीचता हुआ आगे सरक रहा था। इस तरह दोनो बाजुओसे मुड़कर भी भेड़ियेको कुत्तेकी गरदन नही मिल रही थी। दोनोकी खूब झटापट हुई। धूल उडी। कुत्तेकी अपेक्षा अधिक ताक़तवर होनेके कारण भेडियेने कुत्तेको ज़ोरसे खीचा और पटक दिया। दाँतोंकी पकडसे छूटकर कुत्ता सिरके बल उलटा गिर पडा और गुस्सेसे भरे भेड़ियेने कूदकर उसका गला चीर दिया। कुत्ता बहुत चिल्लाया। इस बीच सता वहाँ पहुँच गया और कुत्तेके सीनेपर बैठे हुए भेड़ियेकी गरदनपर उसने ज़ोरसे कुल्हाडी मारी। खूनके फ़व्वारे उडे। भेड़िया चित होकर पैर फटकारने लगा और क्रोधसे भरा सता उसपर दनादन प्रहार करता रहा।

भेडिया मर गया। कुत्ता भी मर गया। किनारे ज़मीनमें गढ़ा खोदकर सताने कुत्तेको वहीं पूर दिया। आँखें पोंछी। उस मरी हुई भेड़को कन्धेपर रख भेड़ियाके पैरमे रस्सी बाँधकर उसे घमीटता हुआ दीया -जले सता गाँव लौटा। और सारा हाल माँसे कहते हुए फूट-फूटकर रोने लगा। कुत्ता मर गया, भेड मर गयी, इसलिए रोया। स्वयं रोते हुए माँने उसे समझाया। हृदयसे लगाकर कहा, "जाने दे। कुत्ता मर गया—वह भेडियाका खून पीकर मरा। भेड मैंने उसपर निछावर कर दी। रोता क्यो है ?"

यह सब हाल सुनकर मैं इतना उतावला हो गया कि सता कब शालामे आता है और कब मैं उसे बधाई देता हूँ। परन्तु छह-सात दिन हो गये वह शालामे नही आया। सन्देशा भेजा तो उसके घरसे खबर आयी कि वह अब भेडें चराने जाता है, शालामे अब नही पढ़ेगा।

फिर समय निकालकर एक दिन जान-बूझकर मै उसके घर गया जो खेतमे था।

सूरज डूब चुका था और फीकी चाँदनी पड़ रही थी। उसका घर जब नजदीक आया तो यह सोचकर कि उसका कुत्ता मुझपर झपटेगा, मैंने दूर ही से उसे पुकारा, "ओ सता····"

घरकी तरफ़से आवाज आयी, "कौन है ?"

"मै हूँ मास्टर। अपना कुत्ता पकड़ लेना। मै आ रहा हूँ। वह मुझपर झपटेगा।"

सताकी आवाज़ एकदम गिर गयी। "कुत्ता नहीं है मास्टर, आ जाओ।"

और एकदम मेरे ध्यानमे आया कि सताका कुत्ता तो कुछ दिन पहले भेड़ियासे लड़ते-लड़ते मर गया। मै अपनेमे ही एक अपराधी-जैसा लगा।

घरके सामने साफ़ लिपा हुआ सहन था। मिट्टीका टेढा-मेढा वृन्दावन था। उसमे फैली हुई तुलसी लगी थी। उस चबूतरेपर कम्बल बिछाकर सताने कहा, "बैठो।"

फीकी चाँदनीके प्रकाशमे मवेशी जल्दी-जल्दी चारा खाते हुए दिखायी दे रहे थे। सताका बाप विरा बकरी दुह रहा था। बाहरके बरामदेमे भेडें बँधी थी। बैलोके गलेकी घण्टियाँ रुनझुन कर रही थीं। खाते समय कड़बी टूटनेकी आवाज़ आ रही थी।

"तुमने बडी बहादुरी की भैया। मैंने सब सुना है।"

सताने कहा, "पर भेडियेने कुत्तेको मार डाला, मास्टर!"

"हाँ, वह भी मैंने सुना।"

फिर क्षण-भर मै चुप रहा। सता भी कुछ न बोला। दूधका लोटा लेकर विरा मेरे सामने आया।

"दुह रहा था। बड़ी रात गये आये?"

मैंने कहा, "चला आया घूमता हुआ।"

"बैठो। हमारे यहाँ न चाय है और न कुछ है। दूध पियोगे?"

"नहीं, मुझे चाय या दूध, कुछ नही चाहिए।"

"वाह, ऐसा कहनेसे कैसे होगा? लो न। कमसे-कम हमारे मानके लिए ही। जा रे सता, एक गिलास ले आ भीतरसे।"

विरा मेरे नज़दीक ही चबूतरेपर बैठ गया।

मैंने पूछा, "सता एक हफ़्तेसे स्कूल क्यो नही आ रहा है?"

"नही गया। मैंने ही कहा, न जाओ, अब भेड़ें चराओ।"

"अब तुम्हारी अडचन दूर हो गयी हो तो कलसे भेजा करो उसे।"

विरा थोडा हँसा। गिलासमे दूध डालकर उसे मेरे सामने रख दिया और सतासे लोटा भीतर ले जानेके लिए कहा।

उस स्वादिष्ट दूधको मैंने स्वाद लेते हुए पी डाला। वैसे बकरीके दूधमे हलकी-सी हीक आती है, लेकिन आदत हो जानेसे मुझे वह नही आती थी।

फिर आरामसे विराने कहा, "सता अब स्कूल नहीं जायेगा, मास्टर! अगर पूछोगे क्यो, तो मैंने ही उसे पढ़नेसे मना कर दिया है

और यह कहा है कि पढ़ायो काफ़ी हो गयी। अब अपने काममे लग जाओ।"

"परन्तु इस तरह एकाएक उसकी पढायी क्यों बन्द कर दी ? पढ़ने दो उसे सातवी तक।"

गरदनको थोडा झटका देकर विरा बोला, "क्या करना है पढकर ? अब जवान हो गया है। अकेले उसने भेड़िया मार डाला। अब वह बच्चा नहीं रहा। फिर अब उसे शाला और स्लेट-पट्टीकी क्या जरूरत ? लगने दो उसे अपने काममे।"

मैने उससे बहुत कहा, परन्तु लड़केके और चार साल व्यर्थ बरबाद करनेके लिए विरा राज़ी न हुआ। बार-बार उसने दृढतापूर्वक कहा कि अब मै लडकेको शाला नही भेजूँगा। मेरी मददके लिए एक आदमी और हो गया। अब मेरा काम जल्दी पूरा हुआ करेगा। तुम आग्रह न करो, मास्टर ! और शालामे आनेके लिए सताने भी कोई खास ज़िद न की, कोई दिलचस्पी न दिखायी। इस तरह आध घण्टे बहस करके मै उठा और खाली खेतोकी ठण्डी हवा खाता हुआ अपने घरकी ओर चल पड़ा। मेरा मन गिर गया।

एक दिन दोपहरको शालाकी छुट्टीके बाद नहानेके लिए मै गाँवके बाहर बावडीपर जा रहा था। उस समय बूढ़ा पटेल मेरे पीछे-पीछे आ रहा था। एक-दो बार मैने मुड़कर देखा। वह चला आ रहा था। दोपहरकी धूप जुती हुई जमीनपर चिलचिला रही थी और नगे बदन, धोती घुटने तक खोंसे हुए मेड़पर-से चलता हुआ वह मेरे पीछे-पीछे चला आ रहा था। पहले मैने सोचा कि वह किसी कामके लिए कही जा रहा होगा। लेकिन मेड़से उतरकर मै जब खेतके ढेलोको कुचलता हुआ बावडीकी तरफ़ जाने लगा तब वह भी मेड़से उतरा। ढेले खूंदता हुआ वह भी बावड़ीकी तरफ़ आने लगा। यदि यह कहे वह भी नहाने आ रहा था तो उसके पास धोती और लोटा न था। यूँ ही मेरा हृदय धड़कने लगा। परन्तु पीछे न देखता

हुआ मैं बावडीके निकट पहुँचा। कपडे उतारकर रख दिये और लँगोट पहनकर भीतर उतरा। पानीमें डूबा। कुछ डुबकियाँ लगाकर सीढ़ीपर आ बैठा और बदन मलने लगा।

बूढ़ा पटेल भी सीढियोसे नीचे आया और मैं जिस सीढ़ीपर बैठा था उसके ऊपरकी दो सीढियाँ छोड़कर, एक सीढीपर वह भी बैठ गया। थोड़ी देर ठहरकर बोला, "एक ही गाँवमे रहकर एक-दूसरेसे बातें न करना ठीक नहीं है, मास्टर ?"

पटेल स्वयं मुझसे बोल रहा था, इसपर मुझे आश्चर्य हुआ। मैने कहा, "बातें करना तो आपने ही बन्द किया है, बाबा। मैने नही।"

"परन्तु तुमने मुझसे कभी यह भी पूछा था कि मैं क्यों नहीं बोलता, किसलिए नही बोलता ?"

"मै क्यों पूछूँ ?"

"क्यों, क्या तुम्हे कुछ हलकापन मालूम हुआ उसमे ? अरे, मान और अपमानका खयाल हम बूढोको होना चाहिए या तुम-जैसे लड़कोंको ?"

इस बातसे मै थोड़ा हिला। मुझे लगने लगा कि मुझे भी इस तरह तनकर नही रहना चाहिए था। यदि बूढ़ेसे समझदारीसे बोला होता तो सचमुच वह मुझे अपने न बोलनेका कारण बता देता। फिर बूढा ही कहने लगा, "मुझसे बालट्याने कहा कि तुमने अंजीको एक चोली दी। क्या यह सच है ?"

मेरे चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। क्षण-भर मुझे यही न सूझ पड़ा कि क्या उत्तर दूँ। मुझे धुँधली-सी भी कल्पना न थी कि बूढा ऐसी कोई बात पूछेगा और उसके न बोलनेका ऐसा कोई कारण होगा। मैं यह भी भूल गया था कि किसी दिन मैंने अंजीको एक चोली ला दी थी। यह देखकर कि मै चुप हूँ बूढा फिर बोला, "उसने महावीरकी सीढीपर हाथ रखा। तुम्हारे चोली देते हुए और अंजीको हँसते-हँसते उसे लेते हुए उसने देखा। यह सुनते ही मेरा सिर भन्ना गया। लड़कीको मैंने खूब मारा-पीटा

और तुमसे बोलना बन्द कर दिया। परन्तु तुमपर मेरी कड़ी नज़र थी—निगरानी थी। लेकिन मुझे ऐसी कोई बुरी बात तुममे न दिखी कि जिससे मुझे कुछ शक होता। फिर सोचा. एक बार तुमसे पूछ लूँ और सच और झूठका पता लगा लूँ।"

"झूठ है, बिलकुल झूठ है। बालट्या नालायक आदमी है। मेरी और आपकी घनिष्ठता उससे देखी नही गयी, इसीलिए उसने यह सारा षड्यन्त्र मेरे विरुद्ध रचा।"

मेरी साँस ज़ोर-जोरसे चलने लगी। हृदयकी धडकन बढ़ गयी।

बूढेने फिर कहा, "तो यही कहो न कि तुमने चोली दी, यह बात बिलकुल झूठ है।"

"मैने चोली दी, पर भेंट नही की। अंजी मेरे पास एक नया कपडा ले आयी थी और मुझे शहरसे उस कपड़ेकी एक चोली सिला लानेके लिए कहा था। मैने यह बात तुमसे नही कही। क्योंकि उसने मुझसे कह दिया था कि मै यह चोली चुपके-से सिलवा रही हूँ, बूढेसे न कहना। चाहो तो मेरे सामने उससे पूछ लो। ऐसा नालायक़ आदमी नही हूँ मै। मुझसे कोई भी किसी कामको करनेके लिए कहता है, मै उसे कर देता हूँ, सारे गाँवमे शोर मचानेसे क्या फ़ायदा? हाँ, सबके काम करता हूँ, पर इसका बदला तुम लोग इस तरह चुकाओगे, इसकी मुझे कल्पना न थी। मुझे कोई ज़रूरत नही। मैं सिर्फ शालाको सँभालकर भी रह सकता हूँ। मुझे क्या, सिर्फ लड़कोंको चार अक्षर पढ़ाना है—पढ़ाया करूँगा।" मैने यह सब इतनी जल्दी और झुँझलाहटमे कहा कि बूढ़ा भी सकपका गया।

"देखो भाई, मैने तुमसे कभी कहा है कि यह बात सच है? तुम्हारा कुछ किया मैंने? मुझे खुद भी यह बात सच नही मालूम हो रही थी और ऊपरसे आज तुमने सब कुछ खुलासा कर दिया। बालट्या पहलेसे ही तुम्हारी बुराईपर तुला हुआ है। उसने ज़बरदस्ती ही रस्सीका साँप बनाया। ठीक है। तो तुम्हारे मनमे कोई पाप न था न?"

मै अभी भी जोशमे था। ऊपरसे बाजी बूढेपर ही उलट गयो थी। यह उसकी बातोंसे और चेहरेसे झलक रहा था। इसलिए मुझे और भी अधिक जोश आया।

"हाँ, अभी भी पूछो कि मेरे मनमे क्या कोई पाप था? बुद्धिमान् आदमीका तुम्हारे गाँवमे रहना पाप है। तुम लोग भले आदमीको गधा बना दोगे। बस, अब जितनी नौकरी कर ली, काफ़ी है। मैं दरख्वास्त देकर यहाँसे किसी दूसरे गाँवमे अपनी बदली करा लेता हूँ।"

इस तरह आखिरी बात कहकर मैं ऊपर आया। और कपडे पहनकर घरकी ओर चल दिया। मैं नही जानता कि बूढा सीढीपर कितनी देर तक बैठा रहा और कब लौटा।

उस दिन दिन-भर मैं क्रोधसे बेचैन रहा। अपने मनको बहुत समझाया। फिर भी बालट्यासे बदला लेनेके भावको मनसे न निकाल सका। मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि सब गाँववालोके सामने उसकी अच्छी मरम्मत करूँ। लेकिन मुझ-जैसे कमजोर आदमीके लिए उसे मारना सम्भव न था। तब सोचने लगा कि किसी मामलेमे फँसाकर उसे जेलकी हवा खिलाऊँ, कमसे-कम अपनी पहचानके थानेदारसे उसे थोडा पिटवा दूँ और अच्छी तरह डाँट खिलवा दूँ। मै मनसे बहुत ही नीचे चला गया।

मेरी इस मनःस्थितिको आयबू ताड गया। वह अनुमान न कर सका कि मुझे क्या हो गया है। मुझसे कुछ पूछनेका उसे साहस न होता था। और मैने कुछ कहा भी नहीं। किन्तु रातको अँधेरेमे पडे-पडे जब कि ये सारीकी-सारी बातें मुझे मथे डाल रही थीं, अपनेको न रोक सका और आयबूसे मैने कह ही दिया, "आयबू, बालट्याने मुझे मुफ़्त बदनाम कर दिया है, यार।"

द्वारके पास आयबू चद्दर ओढ़कर लेटा हुआ था। वह बोला, "उसे सबक़ सिखाओ, मास्टर।"

"सबक़ सिखाना कठिन नहीं है। लेकिन गाँवमें व्यर्थ ही बुराई हो

जायेगे । आज तक अच्छी तरहसे दिन बिताये । किसीको कुछ कहनेका कभी मौका नही दिया ।"

आयबूको भी वह बात जँच गयी । जब कोई बात समझाकर कह दी जाती, तो वह उसे तत्काल जँच जाती थी । कमसे-कम वह अपने चेहरेपर ऐसे भाव दिखाता कि उसे वह जँच गयी है । मुँहसे भी कह देता था।

"आज तुम्हारा क्या किया उसने, मास्टर ?"

"एक-दूसरेको लडानेके सिवा और क्या करेगा ? पटेल बात नहीं करता था, उसका कारण बालट्या ही था ।"

"वह तो मैने भी तुमसे कह दिया था ।"

"सुनता हूँ बालट्याने पटेलसे यह कहा कि मेरा और अंजीका अनुचित सम्बन्ध है ।"

इस अनपेक्षित समाचारसे आयबू झल्ला उठा और उसके मुँहसे एक बहुत गन्दी गाली निकली । बालट्या झूठ-मूठ कोई दूसरी बात कह देता तो कुछ न था । लेकिन वह मास्टर और अंजीका सम्बन्ध जोड़कर पटेलसे शिकायत करे, इसका आयबूको बड़ा ताज्जुब हुआ और फिर गुस्सा भी आया । वह बोला, "मैने यह कभी नही सोचा था कि बालट्या इतना आगे बढ जायेगा ।"

मैने कहा, "गाँवमे कोई भी मेरी बुराई नही चाहता, पर बालट्या पहलेसे ही मुझपर सर्पकी तरह खार खाये है । कुछ समझमे नही आता कि क्या करूँ । अच्छा-भला आदमी सामने आकर दो हाथ भी नहीं करता । छिपकर गोलियाँ चलाता है ।" बोलते-बोलते मुझे उस समयका स्मरण हो आया जब बालट्या पहली बार ही मेरे कमरेमे आया था और उसने मुझे डाँट लगायी थी और लगा कि अंजीके प्रकरणको लेकर यह आदमी कभी-न-कभी सारे गांवको मेरे विरुद्ध भड़का देगा और मुझे पीटेगा । बहुत देर तक मुझे नींद न आयी । आयबू खर्राटें लेने लगा ।

इसके बाद तीसरे या चौथे दिन रातको जब मैं घर लौटा तो आयबू

सोया हुआ था। दियासलाई जलाकर मैने बिस्तरको देखा और लेट गया। नींद आ गयी। पहली नीद पूरी हो रही थी तभी किसी शोर-गुलसे मै जाग उठा। पहले कुछ समझमे ही न आया। बादमे लगा कि चावडीकी तरफ़ कुछ हो-हल्ला हो रहा है।

अँधेरेमे ही मै उठकर बैठ गया और उस तरफ़ कान लगा दिये। सिवा हो-हल्लाके और कुछ भी नहीं सुनायी देता था। मैने सोचा, शायद भेडिया आया हो या कही साँप निकला हो। और यह जाननेके लिए कि आयबूका क्या अनुमान है, मैने कहा, "आयबू, यह हो-हल्ला क्यों हो रहा है?"

आयबू जल्दी न जागा। तब अँधेरेमे ही उसे हिलाकर मैने जगाया। वह घबड़ाया और उठकर बैठ गया और "क्या है—क्या है, किसे चाहते हो?" कहने लगा। जब थोड़ा होशमे आया तब मैने पूछा, "क्या तुम्हे कुछ शोर-गुल सुनायी दे रहा है?" चावड़ीके सामने लोग इकट्ठे हुए मालूम होते है। उसने भी कान लगाकर सुना।

"कुछ गड़बड़ ज़रूर हो रही है। क्या जाकर देख आऊँ?"

मैने कहा, "चल, मैं भी चलता हूँ।"

बिस्तरोंको ठीक तरह लपेटकर हम दोनों बाहर निकल पडे। घना अन्धकार था, पर आदत थी इसलिए उस अन्धकारमे भी तेजीसे चलते हुए हम लोग चावड़ीके पास पहुँचे। पहले ही जो मिला उस व्यक्तिसे मैने पूछा, "क्या हो गया है? यह शोर-गुल काहेका है?"

वह बोला, "दादू बालट्याको किसीने बुरी तरह मारा है।"

"किसने?"

"जाने कौन था, अँधेरेमें दिखा नहीं।"

भीड़को चीरकर मैं आगे बढ़ा। दीया लेकर बालट्याकी बुढिया बैठी हुई थी। "ओ माँ, अब क्या करूँ?" कहकर चिल्ला रही थी। और दादू बालट्या धूलमे औंधा पड़ा हुआ था। उसका साफा उड़ गया था। सलूका फट गया था। बालट्या बेदम मार खाये हुए कुत्तेकी तरह जोभ निकाल-

कर हाँफ रहा था। पटेल और रामा बनगर उसके पास उकड़ूँ बैठे हुए लगातार कह रहे थे, "अरे, तू उठकर बैठ तो दादू। बता तो क्या हुआ? किसने मारा?"

और बालट्या आँखें बन्द कर सिर्फ़ गरदन हिला रहा था। उससे उठा नहीं जाता था, बोला नहीं जाता था।

मैंने कहा, "अरे, तुम लोगोंने उसे इस तरह धूलमें ही क्यों पडा रहने दिया है। उठाकर घर ले जाओ।"

सबको मेरी बात जँच गयी। और उसे स्वीकारा भी। पर आगे बढ़कर कोई उसे उठाता न था। तब आनन्दा रामोशी आगे बढ़ा और जिस तरह मरा हुआ बकरा उठाते है, उसी तरह उसने बालट्याको उठाया और उसके घरकी तरफ़ ले चला।

पन्द्रह-बीस आदमियोंका झुण्ड खाँसते-खखारते और एक दूसरेसे यह पूछ-ताछ करते हुए कि क्या हुआ और कैसे हुआ, उसके पीछे-पीछे हो लिया। उसके घर पहुँचते ही कम्बल बिछाकर उसपर उसे सुला दिया। उसकी बुढिया धाड़ मारकर रो रही थी। उसपर बिगड़कर पटेल बोला, "तू चुप रह सुन्द्रा। अरे वह क्या मर गया है जो इतना गला फाड़ रही है?"

घरमे और घरके बाहर लोग भीड़ लगाकर खड़े हो गये। उसके मुँहपर पानी डाला, उसे पंखा झला। तब बालट्याका हाँफना कुछ बन्द हुआ। आँखें घुमाकर वह चारों ओर देखने लगा।

मैंने कहा, "मुझे पहचाना?"

तब उसने मुँह दूसरी ओर फेर लिया। उसके मुँहके पास मुँह ले जाकर पटेल बोला, "होशमे आया दादू? मैं कौन हूँ?"

तब दादूने थूक गिटका और बूढ़ेका हाथ अपने हाथमे कसकर पकड़ लिया।

"डर मत। तुझे कुछ नहीं होगा।" कहकर बूढ़ा उसके हाथ-पैर

दबाने लगा। किसीने कहा, जब यह चिल्लाया, "मरा, मरा, मुझे मार डाला रे!" तब मै भागता हुआ घरसे बाहर निकला। अँधेरेमें कुछ सूझता न था। आगे बढकर देखता हूँ तो कोई ज़मीनपर पड़ा हुआ कराह रहा है। मैने पूछा, "क्या हुआ, कौन है रे?" तब यह बोला, "मै हूँ दादू, मुझे मारा।"

रामाने कहा, "अरे पर किसने, कैसे, किस लिए, या कि कह दिया मारा और बस·····?"

कहनेवाला बोला, "यह तो भगवान् जाने। इसके बाद दादू कुछ बोलता ही न था, तब मुझे पता कैसे चलता?"

"तूने किसीको भागते या छिपते हुए नही देखा?"

"नहीं भैया, माँकी क़सम। झूठ क्यों बोलूँ?"

कोई बाहरसे बोला, "यह तो कोई भानुमतीका खेल मालूम होता है।"

"अरे तो फिर कोई पटेलकी बाड़ीमे दौड़ते हुए जाओ और उस गुनियाको ले आओ अपने साथ। कहते है वह तो बड़ा देवता है।"

कोई जानेको तैयार न होता था। मै-मै तू-तूमे ही बात खतम होती-सी लग रही थी। मुझे यह अच्छा न लगा। ज़रा आवाज़ चढ़ाकर मैंने कहा, "भानुमती वग़ैरह कुछ नही। उसे थोड़ा विश्राम कर लेने दो, उठकर बैठ जाने दो तब आप ही मालूम हो जायेगा कि क्या हुआ है।"

परन्तु पहले मुर्गेने बाँग दी, फिर भी बालट्या नहीं उठा। धीरे-धीरे भीड़ छँट गयी। लोग चल दिये। मै, पटेल, आयबू, रामा और गाँवके दो-चार आदमी बैठे रहे। दिन निकलते ही बालट्याने अच्छी तरह आँखें खोलीं। पानी माँगा। मैने उसे पानी दिया। गरम चाय बनाकर पिलायी। तब उसमे कुछ अधिक ताज़गी आ गयी।

रामाने पूछा, "क्यों दादू, अब जी अच्छा है?"

बालट्या धीमी आवाज़मे बोला, "हाँ।"

"तुम्हे मारा किसने ?"

साँस लेकर दादू बोला, "मुझे मारनेवाले दिखे नहीं।"

"कितने लोग थे ?"

कुछ पता न चला। अँधेरेमे एकाएक कम्बल मेरे सिरपर डाल दिया, मुँहमे कपडा ठूँस दिया और लाठियाँ बरसाना शुरू कर दिया। उन कायरोंने ढोरकी तरह पीटा रे मुझे, रामा।"

"तुम्हे किसीपर शक है ?"

बालट्याने गरदन हिलाकर 'नहीं' कहा और मेरी ओर देखा।

धूप निकल आयी थी। तब "अच्छा, आराम करो अब" कहकर पटेल उठा। हम भी उठे। बाहर निकलकर रामा बोला, "इस सालेके पीछे हज़ार झंझटें तो लगी रहती है। किसी दूसरे गाँवके आदमियोंने आकर पीटा होगा, तो क्या पता चलेगा ?"

आयबू बोला, "वह कहता नहीं है। पर उसे पक्का मालूम है कि किसने मारा है।"

पटेलने कहा, "ज़रूर मालूम होगा। चोरके रास्ते चोर ही जानते हैं। ग़नीमत हुई कि सिर्फ़ पीटकर ही छोड दिया। अगर जान भी ले लेते तो कोई क्या कर सकता था ?"

घर पहुँचते ही मैने आयबूसे कहा, "आयबू, बालट्यासे मेरी ही दुश्मनी थी। यदि उसने मुझपर शक किया तो ?"

आयबू मुँह बिचकाते हुए बोला, "उस सालेकी अब काफ़ी मरम्मत हो गयी है। छह महीने उसका बिस्तर नहीं छूटता अब ?"

और हुआ भी वैसा ही। पन्द्रह दिन हो गये फिर भी बालट्या चल-फिर न सका। ऐसे आसार भी नज़र न आये कि वह जल्दी चल-फिर सकेगा। दिन-भर वह बिस्तरमें पड़ा-पड़ा कराहा करता। कोई उससे मिलने जाता तो बालट्या उससे बात न करता। उसकी यह हालत देखकर सारा गाँव कहने लगा, "बालट्याको भूतने पकड़ा है। अब वह न बचेगा।"

चौदह

एक दिन अनायास मेरे मनमे आया कि इस छोटे-से गाँवमे एक मज़बूत इमारत होनी चाहिए। होनी चाहिए, यह ठीक था। लेकिन वह बननी चाहिए गाँववालोंके खर्चसे। पर सवाल यह था कि क्या ये पागल गड़रिये इस कामके लिए रुपया देंगे? उस तरफ़ एक कहावत प्रचलित थी जिसका मतलब था कि गड़रियोका पागलपन छह महीने नही जाता। उनके उजड्ड स्वभावके कारण ही शायद यह कहावत पड गयी हो। गाँवमे इमारत होनी चाहिए, यह बात किसीको भी न जँचती। क्योकि यदि शालाके लिए कहूँ तो उसके लिए स्थान था ही और कमसे-कम निकट भविष्यमे ऐसा होनेकी कोई सम्भावना भी न थी कि वह स्थान कम पड जाये। फिर इमारतकी क्या जरूरत? सहज ही मेरे मनमे आया कि एक व्यायामशाला बनायी जाये जिसमे बच्चोंके खेल-कूदका इन्तज़ाम रहे और वह इतनी प्रशस्त हो कि कभी-कभी सब गाँववाले भी एकत्रित होकर वहाँ आरामसे बैठ सकें। रियासतके राजा साहब व्यायामके बड़े शौक़ीन है। इसलिए रियासतके शिक्षा-विभागसे अथवा स्वयं राजा साहबसे इस कामके लिए सहायता मिल जायेगी। साथ ही इस गाँवमें मै मास्टर था, इसकी यादगार भी बनी रहेगी।

रातको घर-घर रामोशीको भेजकर मैंने गाँववालोंको इकट्ठा किया। भोजनके बाद तमाकू दबाये कम्बल ओढ़कर लोग इकट्ठा हुए और पाठ-शालाके सामनेवाले खुले मैदानमे बैठ गये। मैं चबूतरेपर बैठा था। मेरे सामने पटेल बैठा था। रामा बनगर था। शेकू था। तातुबा था। खेतोमे कोई काम-धन्धा न होनेके कारण बहुधा सभी लोग आये थे।

शुरूमें तो यूँ ही इधर-उधरकी बातें हुई। उनसे पता चला कि बालट्यासे अभी भी अपनी जगहसे उठते नहीं बनता और उसके सारे

बदनसे टीसें उठती हैं। किसीने उसे फ़ौज़दारी करनेकी सलाह दी थी। तब उसने कहा था, "फ़ौज़दारी करूँ और मान लो कि मुझे मारनेवाले मिल गये और उन्हे सज़ा भी हो गयी। लेकिन इससे मेरे घाव थोड़े ही भर जायेंगे ?"

बात ठीक ही थी।

फिर मैंने असली बात छेड़ी। कहा, "मै चाहता हूँ कि गाँवमे एक अच्छी मज़बूत इमारत बनायी जाये। हमे झोपड़ियों और पटावोंके मकानों-से भी अधिक मज़बूत स्थान चाहिए। रोज हम सब लोग इकट्ठा होते हैं और कोई ठीक स्थान न होनेसे धूलमे बैठते है। बारिश हो या कड़ाकेका जाडा हो, तब यहाँ कोई बैठने नहीं आता। शालाका कोई अफ़सर आता है या पुलिस महकमेका कोई आता है तो उसे ठहरनेकी तकलीफ़ होती है। चमारोंकी बस्तीमे ऐसी एक पक्की इमारत है। फिर अपने गाँवमे भी क्यों न हो ? इसलिए मैंने सोचा है कि गाँवमे एक व्यायामशाला यानी अखाड़ा बनाया जाये। बोलो, तुम लोगोंकी क्या सलाह है ?"

लोगोंमे कानाफूसी हुई। शायद उन्होंने सोचा कि मास्टरका दिमाग़ घूम गया है। आपसमे ही वे बतकही करने लगे। तब मुझे गुस्सा आया। मैं चिल्ला पड़ा, "तुम लोग आपसमे बातें न करो। मुझे तुम लोग अगर गधा भी कह दोगे, फिर भी कोई हर्ज़ नही। लेकिन वह साफ़-साफ़ मेरे मुँहपर आकर कहो।"

. बाला बनगर झिझकते हुए बोला, "अखाड़ा तो बनाओगे, पर गाँवमे पहलवान कहाँ हैं ?"

"जब शाला शुरू हुई थी तब भी तुमने कहा था कि लड़के कहाँ हैं गाँवमें ? पर आजकल पाठशालामें लड़के आखिर आ ही रहे है न ? यही नहीं, बल्कि एक-दो सालमें पाँच-दस लड़के मिडिल पढ़ने बड़े स्कूलमें भी जायेंगे और सातवीं पास करेंगे।"

किसीने कहा, "क्या खाक पास होंगे ? ज़रा बड़ा तो होने दो उन्हें

फिर देखना कि वे चल देंगे भेड़ोंको चराने। हममें-से पढ़-लिखकर कोई अफ़सर हुआ है इस तहसीलमें?"

बूढ़ा पटेल अक़्लमन्दीसे बोला, "अरे बाबा, आज न होगा कोई पहलवान। लेकिन जब लड़के कसरत करने लगेंगे, खेलने-कूदने लगेंगे, तो खेलते-खेलते उनमें-से एक-दो पहलवान निकल ही आयेंगे!"

मैंने कहा, "और मान लो नहीं निकला। फिर भी गाँवमें इमारत क्या बेकार पड़ी रहेगी? किसी काम न आयेगी? तुम लोग नाचते हो। उसका सामान इस वक़्त दस जगह बिखरा हुआ है। ढोल कहीं है, झाँझें कहीं पड़ी है। तुममें-से कुछ लोग लेज़िम, पटा और बनेठी भी खेलते है। यह सारा सामान यदि क़ायदेसे व्यायामशालामे रखा रहे और जो इसके अच्छे जानकार है, वे फ़ुरसतके समय यदि लड़कोंको भी ये खेल सिखाया करें, तो यह क्या कोई बुरी बात होगी?"

"पर व्यायामशाला बनानेके लिए ढेर-भर रुपये चाहिए। वह कौन देगा?"

"गाँववालोंसे चन्दा वसूल करना चाहिए। हर घरसे दस-बीस रुपया लेना चाहिए।"

"हाँ, पर हैं किसके पास?"

"बहुतोंके पास हैं। मैं जानता हूँ। जिनके पास रुपये न हों, वे अपने गाड़ी-बैल दें। अपने जंगलसे लकड़ियाँ दें। यदि सारा गाँव चाह ले तो एक दस-खनी इमारत बातकी-बातमे खड़ी हो जायेगी।"

मैंने यह सब तो कह दिया। लेकिन मेरे विचार किसीको भी जँचे नहीं। खुल्लमखुल्ला विरोध करनेकी भी किसीको हिम्मत न हुई। बहुतों-की यही राय रही कि इमारत अधूरी रह जायेगी, यूँ ही एक तमाशा हो जायेगा। लेकिन मैं चुप न रहा। हर तरहसे यह बात उन्हें समझानेकी कोशिश करता रहा।

गाँवके बूढ़ोंको मैंने फिर एक दिन इकट्ठा किया। उनसे विचार-

विनिमय किया। दूसरे गाँवके लोगोंने किस तरह बिना सरकारकी मददके अपने गाँवमे स्कूल बनाये है, सरकारने उनकी किस तरह तारीफ़ की है, वे गाँव किस तरह तरक़्क़ी कर रहे है, इस गाँवसे किस तरह आगे बढ़ गये है, ये सब बातें मैंने उनसे कही और उनसे यह स्वीकार भी करा लिया।

जब ये लोग तैयार हो गये, तो सहज ही सारा गाँव भी तैयार हो गया। एकने कहा कि करेंगे, तो सबने कह दिया कि करेंगे। हर घरसे दस रुपया वसूल करनेकी बात लोगोने मान ली। जिनके पास बैल थे, गाड़ियाँ थी, वे श्रमदानके लिए राज़ी हो गये। यह तय हुआ कि आगामी चार-छह महीनेमे इमारत बना दी जाये और अपनी रियासतके राजा साहब-से उसका उद्घाटन कराया जाये। गाँवमे कभी न आया हुआ राजा मास्टरजीकी करामात और गाँवकी एकताके कारण हमारे गाँवमे आयेगा, यह कल्पना ही लोगोंको अत्यन्त उत्साहित करने लगी। घर-घरमे यही चर्चाका विषय हो गया। हमारे गाँवमे एक व्यायामशाला बनेगी। हमारे गाँवमें राजा आयेंगे, यह बात हर एककी ज़बानपर हो गयी। गाँवमे कई दिनोसे कहने लायक़ और बार-बार चर्चा करने लायक़ कोई घटना नही हुई थी, वह अब शीघ्र ही होनेवाली थी। लोगोने बड़ी तत्परतासे अपने-अपने हिस्सेका चन्दा लाकर बूढ़े पटेलके पास जमा कर दिया। मैंने भी मददके लिए सरकारको अर्ज़ी दे दी। राज और बढ़ईकी तलाश होने लगी क्योंकि ऐसे कारीगर गाँवमे न थे। इसलिए मुँहमाँगी मज़दूरी देकर उन्हे दूसरे गाँवोसे लाना आवश्यक था। लकड़ियोंकी ज़रूरत थी। दूरके पहाड़से पत्थर लाने थे। पत्थर फोड़नेवालोंकी मज़दूरी तय करनी थी। उनके द्वारा फोड़े गये पत्थरोंको गाँव तक लानेके लिए बैलगाड़ियोंका इन्तज़ाम करना था। वे पत्थर वहाँसे उठकर गाँवमे आयें, तब कारीगर उन्हें बनायेंगे। 'घर बनाकर देखना चाहिए' वाली कहावत झूठ नही। गाँवमे मामूली बातसे ही काममे बाधा आ जाती है। एक अदना-सा कारण भी गाँवमे घर बनाने-के काममें इतना विलम्ब कर देता है कि कुछ न पूछिए।

इस तरह तैयारियाँ शुरू हो गयीं और फिर सोचा कि अब इमारतके लिए जगह तय कर ली जाये। मेरा खयाल था कि गाँवमें इमारतके लिए जगह मिलना कोई कठिन बात न होगी। कहीं भी वह मिल सकती है। लेकिन जब प्रत्यक्ष देखनेके लिए गया तो इमारतके लिए योग्य जगह गाँव-भरमें, कहीं भी न मिली। व्यायामशालाके लिए सबके सुभीतेकी एक ही जगह गाँवमें मुझे दिखायी दी। लेकिन उस जगह एक टूटा-फूटा चार खनवाला मकान था जिसमें ताला पडा था। मन-ही-मन मैंने वही जगह चुन ली और रातको लोगोंसे कहा।

पटेल बोला, "लेकिन वह मकान तो दूसरेका है।"

"किसका है?"

"एक दूसरे-गाँवका बनिया इस गाँवमें आ गया था। वहीं उसमें रहता था। उसीने वह घर बनवाया है।"

"तो वह अब है कहाँ? हम उससे यह जगह खरीद लेंगे।"

मेरी इस बातपर लोग हँस पडे। किसीने स्पष्टीकरण किया, "वह बनिया तो अब मर गया, मास्टर। बीड़ी और चायके कारण उसका वंश ही नष्ट हो गया।"

और फिर लोगोंने मुझे उस घरके मालिकका सारा हाल विस्तारपूर्वक कह सुनाया। सचमुच सच्चा बनिया बीड़ी और चायका ही शिकार हो गया था। शराब, औरत और जुआके कारण घर-बारको बरबाद कर देनेवालोंके बहुत-से उदाहरण हैं। लेकिन चाय और बीड़ी-जैसे मामूली व्यसनोंसे सच्चा बनिया कैसे मरा और उसके घर-पर इनके कारण इतना बडा संकट कैसे आया? कहते हैं कि वह बनिया कुछ खाता-पीता तक न था। हमेशा तेज चाय बनाकर पिया करता और लगातार बीडियोंके कश खींचा करता था। घरमें उसकी बूढ़ी माँ थी। उसने उसे हज़ार बार समझाया-बुझाया। लेकिन लड़केके कानपर जूँ तक न रेंगी। कोई उद्योग-धन्धा न करके वह एक-एक घण्टेके बाद चायकी प्याली हलकके नीचे उतारा करता और

पाँच-पाँच मिनिटके बाद बीड़ियाँ सुलगाया करता। और यह भी सिर्फ़ अकेला ही करता हो, सो नहीं। मुहल्लेके दस-बीस लोगोंको आग्रहसे बुलाकर अपने घर लाता। जब वे सब इकट्ठा हो जाते, तो हण्डा-भर चाय बनवाता और सबको ज़बरन पिलाया करता। उनके सामने दर्जनों बीड़ीके बण्डल रख देता और उनसे ज़बरदस्ती उनके कश खीचनेके लिए कहता। लोगोंको क्या फ़िक्र थी ? उन्हे सब चीज़ें मुफ़्तमे मिल रही थी। लोगोंको कोई यदि ज़हर मुफ्तमें दे, तो वे उसे भी ले लें। सद्या बुलाता था, लोग जाते थे। उसके यहाँ चाय पीते, बीड़ीके कश खींचते और बादमे अपने-अपने घर आकर उसके बारेमे यह भी कहते कि, "पूरा मूर्ख है यह बनिया। साला व्यर्थकी शान बघारता है। एक दिन भिखमंगा हो जायेगा।"

लेकिन सद्याने इसकी कभी कोई परवाह न की। वह तो एकदम बडा दानवीर हो गया था। बरसों तक उसके घर यही क्रम चलता रहा। धीरे-धीरे खुद उसकी कमाई और उसके बाप-दादोंकी पूँजी खत्म हो गयी। फिर सद्याने अपनी सुन्दर गायें बेच दी। ज़मीन बेच डालो। इस तरह धीरे-धीरे अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर उसने चाय पीना शुरू किया और एक दिन बेचनेके लिए उसके पास कुछ भी न बचा। पहले वह बड़ा कसरती और तगड़ा जवान था। लेकिन अब सीकिया पहलवान हो गया। बीड़ीके धुएँके कारण उसकी छाती भीतर धँस गयी। चायके अतिरेकसे उसकी भूख मर गयी। काम करके कुछ कमानेकी थोड़ी भी ताक़त अब उसमे नहीं बच रही। घरके बरामदेमे वह यूँ ही बैठा रहता और राहगीरोंसे बीड़ी माँगा करता। गाँवकी बूढ़ी औरतोंको उसपर दया हो आती और वे कभी-कभी उसे गुड़की चाय पीनेको दे देती। ऐसी हालतमे सद्या कुछ दिन इसी तरह एक लावारिस ज़िन्दगी जीता रहा और एक दिन इस दुनियासे सदाके लिए चल बसा।

मैंने सद्याका यह विलक्षण वर्णन सुन लिया और कहा, "तो इसका मतलब यह हुआ कि इस ज़मीनका अब कोई वारिस नहीं बचा। यदि गाँवकी

व्यायामशालाके लिए हम इसे ले लें, तो इसमें कोई आपत्ति नहीं उठेगी।"

लेकिन यह बात माननेके लिए कोई तैयार न होता था।

बनियाकी जगह किस तरह ली जा सकती है, इस विषयमें गाँवका हर आदमी चुप्पी साध गया। मैंने बार-बार उन्हें समझाना चाहा। मैंने उनसे यह भी कहा कि यदि वह मकान गिराकर ज़मीन साफ़ कर ली जाये तो उसपर इमारतकी रूपरेखा खींचनेके लिए ठीक होगा। लेकिन कोई भी मेरी इस बातपर ध्यान नहीं देता था। फिर एक दिन मैं ही अपनी शालाके लडकोंको साथ लेकर उस जगह गया और लड़कोंकी मददसे उस मकानकी गिरी दीवालोंको तोड़ना-फोड़ना शुरू कर दिया। बन्दरोंकी फ़ौज काममें भिड गयी। कुदालियाँ और फावड़े लाकर लड़के उस घरकी दीवालोंको खोदने लगे। जब गाँवके लोगोंने देखा कि खुद मास्टर ही हाथमें कुदाली लेकर घर गिरा रहा है, तब वे भी मेरी मददके लिए आ गये। पहली कुदाली चल जानेके बाद सारा पाप मेरे सिरपर आ गया था। पापका धनी मैं हो गया था। गाँववालोंको अब कोई खतरा न था। गाँवके बहुत-से लोग इस काममें जुट गये और पूरा घर गिरा दिया गया। चार-छह दिनके बाद वह जगह बिलकुल साफ़ हो गयी। इसका कोई नामोनिशान भी न रहा कि वहाँ किसी बनियाका कोई मकान था।

इसके बाद लकड़ियाँ जमा करनेका काम शुरू हुआ। गाँवके दो-चार ज़िम्मेदार आदमियोंको साथ लेकर मैं खेत-खेत चक्कर काटने लगा। जिन-जिनके खेतोंमें इमारतके लिए उपयोगी नीमके पेड होते वे उन्हें देने लगे। देते समय कुछ आनाकानी ज़रूर करते, पर अन्तमें दे देते थे। बहुत बार ऐसा भी होता कि देनेवाला हमें ऐसा पेड़ दिखा देता जो इमारतके किसी कामका न होता अथवा मोटा होते हुए भी भीतरसे खोखला होता। तब इस बातको लेकर उससे झगड़ना पड़ता, हुज्जत करनी पड़ती। तब मैं तनतना जाता। मैं कोई अपने घरके लिए तो लकड़ी नहीं माँग रहा था। फिर भी लोगोंसे अपने पेड़ नहीं दिये जाते थे। कुछ खुशीसे देनेवाले भी

मिले, ऐसा नहीं कि न मिले हों। लेकिन पेड़ प्राप्त करनेमे बड़ी माथा-पच्ची करनी पड़ी। पेड़ मिल जानेपर मजदूर लगाकर उसे गिराना, काटना, किसीकी गाडी खोजना, कहीसे बैल जुटाना, उस लकड़ीको ढुलवाकर इमारतकी जगह लाकर बढ़ईके जिम्मे लगाना। यह सब शुरू हुआ। वक़्त-पर मजदूर नहीं मिलते थे, गाडी-बैलोंको पाना मुश्किल हो जाता था। इन कामोंके लिए झल्लाना पड़ता था, हाथ जोड़ने पड़ते थे, और धमकियाँ भी देनी पड़ती थीं। इन सब बातोंसे जब ऊब जाता तो जाकर मै बूढ़े पटेलसे कहता, "बाबा, अपनी व्यायामशालाका काम अब तुम्हीं सँभालो। मैं चला छुट्टी लेकर। तुम्हे अपनी शाला बनाना हो तो बनाओ और न बनाना हो तो न बनाओ। तुम्हारे गाँवमे जब किसीको भी उसकी जरूरत नही है तब उसके लिए मैं ही अकेला अपना खून क्यों सुखाऊँ ?"

तो पटेल मुझे समझाता, "लड़के, अगर तू चल देगा, तब तो बन चुकी इमारत। वह कभी नहीं बनेगी। इतनी मेहनत की है, वह सब व्यर्थ चली जायेगी। लकडियाँ पड़ी-पड़ी सड़ जायेंगी, जो पत्थर बनकर तैयार हो चुके है, उन्हे लोग धीरे-धीरे अपने घर ले जायेंगे। अरे भैया, इमारत बनाना क्या हँसी-खेल समझा है तुमने। इसमें तकलीफ़ तो होगी ही। पंचायती कामोमे तो ऐसी झझटें होती ही रहती है। अब जो काम सिर-पर उठा लिया है, उसे किसी-न-किसी तरह पूरा करना ही होगा।"

लेकिन मैं भी कहाँ उसे बीच ही मे छोड़ देनेवाला था। यह सम्भव ही न था। अब व्यायामशाला मेरे यश और अपयशका विषय बन बैठी थी। बनगरवाड़ीकी इज्जतका सवाल था। पड़ोसके छोटे-बड़े सभी गाँव बनगरवाड़ीकी ओर बड़े कुतूहलसे देख रहे थे। वे कहा करते थे, ये गड़रिये, ये पगले इस कामको क्या खाक़ पूरा करेंगे ? मास्टर हज़ार शौक़ीन हो, लेकिन केवल शौक़से क्या होगा ? उन्हें दिखा देना था। बनगरवाड़ीमें एक ऐसी इमारत बनवा देनी थी जैसी आस-पासके दस-पाँच गाँवोंमें न थी।

पेड़ोंको इकट्ठा करनेके सिलसिलेमें मैं एक बार बाला बनगरके खेतमें गया। आयबू और आनन्दा भी मेरे साथ थे। विशेष बात यह थी कि बालाके खेतका एक पेड़ बिलकुल सीधा था और हमे उसकी बड़ेराके लिए सख्त ज़रूरत थी क्योंकि उसके लिए वह बिलकुल ठीक था। आनन्दाने रास्तेमे ही एक बबूलपर बैठे हरियलको गुलेलसे मारा। वह तत्काल नीचे गिरकर तडप रहा था तभी आयबूने लपककर उसे पकड़ लिया। हरियलने गरदन झुका दी। आनन्दा फिर पक्षियोंको टोह लेने लगा और आयबू चलते-चलते उस मृत हरियलके पंख तोडने लगा।

मै अकेला ही उनके आगे बढ गया। शामके यही कोई चार-सवा चार बजे होंगे। मै बालाके खेत पहुँचा। उस समय वह एक पुराने गिरमेकी मरम्मत करता हुआ उसी नीमके पेडके नीचे बैठा था। एक धोतीके सिवा उसके बदनपर और कोई कपडा न था। तंग पशेमानी, फैली हुई नाक और सपाट ठुड्ढीवाला बाला एकाग्रचित्तसे वह टूटा हुआ गिरमा दुरुस्त कर रहा था।

मैं किसलिए आया हूँ, यह वह ताड गया। मेरा उसने कोई स्वागत न किया। यह भी न कहा कि बैठो। लेकिन कुछ बोलना तो चाहिए था, इसलिए उसने इतना ही कहा, "आज इधर कहाँ दौड़ पड़े, मास्टर।"

मैंने हँसते हुए कहा, "तुम्हारे ही यहाँ आया हूँ खासकर।" और वहीं ढेले और कंकड़ साफ़ कर जमीनपर बैठ गया। बाला आगे फिर एक शब्द भी न बोला। तब हिम्मत समेटकर मैंने ही कहा, "तो अब पेड़ कब दे रहे हो व्यायामशालाके लिए ?"

"कौन-सा पेड़, कैसा पेड़ ?"

ऐसे उत्तरोंको सुननेकी अब मुझे आदत पड़ चुकी थी। फिर भी मुझे गुस्सा आ गया। शायद वह चेहरेपर झलका भी होगा। ऊपर नीमके पेड़की तरफ़ देखकर मैंने कहा,"कौन-सा पेड़ क्या पूछ रहे हो ? यही पेड़ जिसकी छायामें तुम बैठे हो।"

गरदन हिलाकर वह बोला, "वह नहीं मिलेगा !"

"क्यों भाई ?"

"मेरी खुशी !"

"ऐसा कहनेसे कैसे चलेगा ?"

"देखूँगा कैसे नहीं चलता। जिसकी कलाईमें ताक़त होगी वही इस पेड़को गिराकर ले जायेगा।"

"जबरदस्ती ले जानेका सवाल ही नही है। यह तो खुशीका मामला है।"

"तो मेरी खुशी नहीं है। मुझे न गाँवकी जरूरत है और न तुम्हारी व्यायामशालाकी। मेरे खेतमे छायाके लिए अकेला सिर्फ यही एक पेड़ है। मेरे ढोर और बाल-बच्चे कुछ समयके लिए जिसकी छायामे रहते है, उसीको तुम ले जाओगे ? मैं नहीं दूँगा। पेडपर कुल्हाड़ी चलानेसे पहले वह मेरी गरदनपर चला दो और फिर खुशीसे पेड काटकर ले जाओ।"

"ठीक है।" इतना ही कहकर मै उठा और गाँवकी ओर जाने लगा। रास्तेमे आयबू और आनन्दा मिले।

"मिल गया बालाका पेड़, मास्टर ?"

मैने कहा, "नहीं। वह कहता है पहले कुल्हाड़ी मेरे गलेपर चलाओ और फिर पेड़पर !"

इसके बाद एक दिन पटेल, मै, रामा, गाँवके और दो-चार आदमी मिलकर बालाके यहाँ गये। उस समय भी नीमकी छायामे बैठा वह टूटा गिरमा दुरुस्त कर रहा था। उसकी भेड़ें आस-पास कान हिलाती बैठी हुई थी। औरत और बच्चे बैठे थे। उसी नीमकी छायामें उसने अपने दो बैल बाँध रखे थे। उसका शिकारी कुत्ता भी अंग समेटकर वहीं बैठा हुआ था। हमारे वहाँ पहुँचते ही हाथमें कुल्हाड़ी लिये बाला उठकर खड़ा हो गया। हम लोग जहाँके-तहाँ रुक गये। इस भयसे कि यह व्यक्ति मारपीटपर न उतारू हो जाये, मैं ठण्डा पड़ गया। और बाला कुल्हाड़ी लिये हुए हमारे

पास आया। उस दशामे उसे आते हुए देख बूढ़ा पटेल आगे बढ़ा। बाक़ी किसीका भी पैर टससे मस न हुआ। लेकिन ढलती उम्रका पटेल जूते खींचता हुआ आगे बढ़ा और बालाने अपनी कुल्हाड़ी उसके हाथमे देते हुए कहा, "कल मास्टरसे कहा था कि पेड़ गिरानेसे पहले मेरी गरदन गिरा दो, अब वही बात तुमसे भी कहता हूँ....." इतना कहकर वह मुड़ा और नीमकी छायामें बैठे हुए अपने परिवारकी ओर अँगुली दिखाकर बोला, "इतने जानवरों और मनुष्योंकी गरदनें उड़ा दो और फिर खुशीसे पेड़ ले जाओ।"

उसका हाथ पकड़कर पटेल उसे छायामें ले गया। उसे नीचे बैठाया और कहा, "बाला, चुप बैठ और पहले मेरी बात सुन ले।"

बूढ़ेके हाथको झटककर बाला उठकर खड़ा हो गया और हाथ नचाता हुआ बोला, "मैं किसीकी नहीं सुनूँगा। तुम लोग मुझे मिट्टीमे मिला दोगे। मैं व्यायामशालाको अपना पेड़ न दूँगा। फिर जो भी होना हो, सो होता रहे।"

पटेल अभी भी शान्त था। बोला, "व्यर्थ ही आपेसे बाहर न हो, बेटा। गाँवके लिए यदि एक पेड़ दे दोगे, तो तुम्हारा घर नही डूब जायेगा।"

"घर डूबे चाहे न डूबे। लेकिन मैं पेड़ नहीं दूँगा।"

"क्या यह बिलकुल पक्की बात है?"

"हाँ, बिलकुल पक्की बात है। चाहे रियासतके राजा (पन्त सरकार) आ जायें, मैं अपना पेड़ नहीं दूँगा। अँगरेज़ सरकार भी आ जायें, तब भी मैं पेड़ नहीं दूँगा। इसके लिए जो मुझे फाँसीपर चढ़ाना चाहता हो, खुशीसे चढ़ा दे!"

इतना सुननेपर बूढा पटेल लौट पड़ा और हाथका इशारा करते हुए उसने हम सब लोगोंसे कहा, "हाँ, चलो भाई, अब लौट चलें!"

सभी लोग बालाकी यह गुस्ताखी देखकर नाराज़ हो गये। यह बात

सच न थी कि उसके खेतमें छायाके लिए सिर्फ़ एक वही नीमका पेड़ था। मेड़ोंपर बहुत-से छोटे-छोटे पेड़ लगे थे। यदि वह यह पेड़ दे देता, तो यह बात भी न थी कि खेतमे उसे पूरी धूपमे ही बैठना पड़ता।

पटेलके चलनेके लिए कहनेके बावजूद भी रामा बनगर अपने स्थानसे न हिला। वह जोशमे आकर बोला, "बाला, यह ठीक नहीं है। तू गाँवकी कोई परवाह नहीं कर रहा है?"

बाला चिल्लाकर बोला, "मुझे गाँवकी जरूरत नहीं। आज आठ सालसे मैं अपने खेतमें ही रह रहा हूँ। इसके बाद भी यहीं रहा करूँगा। मुझे गाँवका क्या डर दिखा रहा है? राँड़को खसमका क्या डर रे!"

यह सुनते ही रामा और आनन्दा क्रोधसे उन्मत्त हो गये। वे बालापर टूट पड़नेके लिए उतारू हो गये। इसी समय बूढ़े पटेलने उन्हें अपनी लाठीसे धमकाकर पीछे हटाया। निश्चय-भरी आवाजमें पटेलने कहा, "बाला, जो कहा है उसे अन्त तक निभाना। अब गाँवमे कभी क़दम न रखना।"

और एक दूसरेसे कोई बात न कर हम सब लोग खेतसे गाँव लौट आये।

गाँवके नज़दीक आते ही बूढ़ेने कहा, "इस बालाकी कोई भी परवाह न करे। उसे कोई न पूछे। उसके जानवरोंको अपने खेतमे न घुसने दे। उसकी तकलीफ़ और अड़चनके समय कोई भी गाँववाला उसकी मदद न करे। ज़रा देखूँ तो कहाँतक इसी तरह अकड़ा रहता है वह।"

शीघ्र ही यह समाचार सारे गाँवमे फैल गया। बाला बनगरको सारे गाँवने बहिष्कृत कर दिया। यह समाचार बच्चे-बच्चे तक पहुँच गया और पटेलका हुक्म तुरत ही अमलमे लाया जाने लगा। बालाका लड़का बकरा काटनेके लिए आयबूको बुलाने आया, तब आयबूने साफ़ कह दिया, "मैं नहीं आता। तेरे घरको गाँववालोंने बहिष्कृत कर दिया है।"

"लेकिन तेरा गाँवसे क्या वास्ता? तू तो बाहरसे आया है। जो तेरे सामने टुकड़ा डाल दे उसीका काम करनेवाला है। मैं तुझे मुफ़्तमें काम करनेको नहीं कहता। सेर डेढ़ सेर अपने लिए माँग लेना।"

"मुझे तेरे सेर डेढ़ सेरकी परवाह नहीं। जा, अपना रास्ता नाप!"

जब बालाको इसका पता चला, तो उसने अपने लडकेको ही खूब डाँटा। उसने लड़केको छह कोस, तहसीलके सदर मुकाम भेजकर, वहाँसे मुलानी बुलाया और बकरा काटा।

गाँवका कोई भी मज़दूर बालाके खेतमे काम करने नहीं जाता था। इसलिए उसे दूसरे गाँवोसे अधिक मजदूरी देकर मजदूर लाने पड़ते थे। उसके कुएँका पानी खारा था। इसलिए रोज उसकी घरवाली घड़े-दो घड़े पानी गाँवके कुएँसे पीनेके लिए ले जाती थी। गाँववालोने अब उसे कुएँसे पानी लेनेकी मनाही कर दी। तब बालाको रोज दो-तीन मील जाकर, वहाँके कुएँसे पीनेका पानी लाना पड़ता था। उसने अपने जानवरो-को दूसरेके खेतोंमे ले जाना बन्द कर दिया। उसके बच्चे पहले गाँवकी शालामे पढ़ने आते थे। अब उन्होंने पढ़ायी बन्द कर दी। बाला बनगरने गाँववालोके सामने झुकनेसे साफ़ इनकार कर दिया। वह चीमड़ मनुष्य अपनी हेकड़ी चलाता रहा और गाँव यह देख रहा था कि कबतक वह अपनी अकड़पर डटा रहता है।

पन्द्रह

मेरा सोचना एकदम ग़लत निकला। जिस व्यायामशालाके कामको मैंने बड़ी तेज़ीसे हाथमे लिया था, वह मन्द गतिसे आगे बढ़ रहा था। इमारतके लिए आवश्यक लकड़ियाँ जुटानेमें काफ़ी समय लगा। पत्थर फोड़नेवालोंने खदानसे पत्थर फोड़कर दे दिये, लेकिन उन्हे गाँव तक ढोकर लानेमें बड़ी झंझटें उठानी पड़ीं। तहसीलके सदर मुक़ामसे खरीद-कर चूना लाना, फिर उसे चक्कीमें डालना, कीलें आदि इकट्ठे करना—इन छोटी-मोटी बातोंमें व्यर्थ ही बहुत-सा समय खर्च हुआ। मुझे मकान

बनवानेका कोई अनुभव न था। इसलिए यह समझकर कि समय व्यर्थ नष्ट हो रहा है, मैं काम करनेवालोंपर बिगड़ पड़ता। लेकिन गाँववालोंके लिए ये हमेशाकी मामूली बातें थी। गाँवमे इमारत बनाने या कुआँ खोदनेका काम शुरू करें तो उसका पूरा हो जाना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना हो जाती है। वरना बहुधा यही होता है कि बडे उत्साहके साथ आरम्भ किये हुए इस प्रकारके काम काफी समय लेकर भी अधूरे पड़े रहते हैं। घर बन जाता है, पर दरवाजे बननेको रह जाते हैं। कभी खूँटियाँ नही बन पातीं, तो कभी चबूतरा बच रहता है। कुआँ पूरा खुद जाता है, जुड़ाई हो जाती है, लेकिन उसका घेरा अधूरा पड़ा रहता है। दो मचानोंमे-से एक ही से काम लेना शुरू कर दिया जाता है। फिर बनानेवाला भी सोचता है कि जितना बन चुका है उतना अपनी गुज़रके लिए फ़िलहाल काफ़ी है। कमसे-कम अब हमारा काम तो नहीं रुकेगा। बाकी काम फुरसतसे कर लेंगे और वह खुद ही काममे ढिलाई कर देता है। पर अधूरा पड़ा हुआ वह काम फिर कभी भी पूरा नही होता। इस तरहके अधूरे पड़े काम हर गाँवमे कितने ही दखनेको मिलते है। गाँववाले इस बातको जानते थे। इसलिए काम जल्दी न होनेकी उन्हे कोई फ़िक्र न थी, इसका उन्हे कोई दुःख न था। अपने दैनिक कामोको समाप्त करनेके बाद ही वे व्यायामशालाके कामको देखते थे।

इस काममे मैने भूख और प्यासकी तनिक भी परवाह न कर बहुत परिश्रम किया। कई बार ऐसा होने लगा कि मै दाढ़ी नहीं बना पाता था, समयपर नहा नहीं पाता था और खानेको भी फ़ुरसत नही मिलती थी। छुट्टीके दिन भी घर नहीं जा पाता था। चूना, चक्की, पत्थर, लकड़ी, सीढ़ी, कोने, खम्भे आदि बातोंके सिवा दूसरी बात मेरे दिमाग़मे ही न आती थी।

गाँवकी बैलगाड़ियाँ टूट गयीं, पत्थर ढो-ढोकर बैल-जोड़ियाँ थक गयीं। कारीगरोंकी ठक-ठकसे गाँववालोंके कान पक गये। रास्ते पत्थरोंके

छोटे-छोटे टुकड़ोंसे भर गये। जहाँ-तहाँ लकड़ीके ढेर लग गये।

व्यर्थके चक्कर काटते-काटते और लगातारकी पाँवपिटाईसे आयबूके पैरोंमें गाँठें पड़ गयीं। जो भी काम सामने आ जाता उसे करते-करते वह दुबला हो गया। दुनिया-भरका कामचोर आनन्दा भी बड़ा काम करने-वाला बन गया। दौड़-धूपके काम करने लगा। रामाका लड़का शिकायत करने लगा कि निरन्तर व्यायामशालाके काममें लगे रहनेके कारण उसका पिता घरके कामोंमें कोई दिलचस्पी नहीं ले रहा है। पटेल भी अपने परिवार और व्यवसायकी ठीकसे देखभाल नहीं कर पाता था। व्यायामशालाके कामके कारण प्रायः सभीके निजी दैनिक कामोंपर थोड़ा-बहुत प्रभाव पड़े बिना न रहा। गाँवमें ऐसा एक भी घर न बचा था कि जिसका सम्बन्ध इस कामसे न रहा हो।

इसी अवधिमें खेतीका दूसरा मौसम आकर चला गया। एक साल बातकी-बातमें बीत गया। लोगोंने अपने-अपने खेत जोत डाले। गड़रियोंने भेड़ोंका ऊन काटा। ऊन निकला। गड़रियोंकी औरतोंने उसे धुना। तकली और चरखेपर उसे काता। उनकी लच्छियाँ बाजारमें बेचकर नक़द रुपये पैदा किये। औरतोंने साल-भरके लिए साड़ियाँ खरीदीं। गड़रियोंके लिए साफा, धोती और अँगरखे खरीदे। किसीने अपना ऊन बुननेवालोंको देकर उनसे मोटे-मोटे कम्बल बुनवा लिये। भेड़ें दूसरी बार ब्यायीं। पहले बच्चे अपनी माँको भूल गये। उन्हें पहचान नहीं सकते थे। ग्रीष्मऋतुका अन्त हुआ। बारिश शुरू हुई। लेकिन व्यायामशालाकी इमारतका काम पूरा नहीं हुआ। मैं अपने-आपपर चिढ़ा, दूसरोंपर झल्लाया, लेकिन कामकी गति न बढ़ी।

दूसरे गाँवके लोग कहने लगे कि अब यह काम पूरा न होगा। मास्टरने गड़रियोंको यूँ ही घपलेमें डाल दिया। उनके रुपये बरबाद किये। पहले तो गाँवमें व्यायामशालाकी जरूरत ही क्या? खिलाड़ी लड़के खेतों और मैदानोंमें खेल सकते हैं, बालूमें कुश्तियाँ लड़ सकते हैं। यदि किसीको

पहलवान ही होना हो तो इन्हींमें-से वह निकल आयेगा। व्यायामशाला न होनेसे वह थोड़े ही रुका रहेगा? व्यायामशालाका यह सारा ढकोसला मास्टरकी रुपये खानेको एक चाल है। तनख्वाहसे उसका खर्चा नहीं चलता। इसलिए उसने गड़रियोंके साथ एक ऐसा खेल खेला है जिससे गड़रियोंका ध्यान किसी दूसरी तरफ़ लग जाये और उसकी जेब गरम होती रहे। अन्तमें ऊबकर मैंने ऊपरके अफ़सरको लिखा, "व्यायामशालाका काम पूरा हो गया है। सरकारसे प्रार्थना है कि गाँवमें पधारकर उसका उद्घाटन करनेकी कृपा करें।" यह चिट्ठी मैंने डाकमें डाली और गाँवके लोगोंको जाकर सूचित कर दिया कि सरकार इस महीनेमें आयेंगे। इसलिए या तो व्यायामशालाका काम जल्दी-जल्दी पूरा करो या जब वे यहाँ पधारें, तो उनके सामने जाकर कहना कि हमसे ग़लती हो गयी है। यह काम अब हम लोगोंसे पूरा नहीं होगा।

दादू बालट्या अभीतक बिस्तरपर ही पड़ा हुआ था। उसकी घरवाली और बूढ़ी माँ ओझाओंसे बहुत-से ताबीज़ और गण्डे लाकर उसे बाँध रही थी। लेकिन वे कोई काम न कर रहे थे। स्वयं बालट्या चुपचाप पड़ा हुआ था। उसे बिस्तरसे उठना मुश्किल हो रहा था। वह सुबहो-शाम चिल्ला-चिल्लाकर अच्छी-अच्छी चीज़ें खानेको माँगता था। कहता था मैं खूब खाऊँगा, दूध, घी, शक्कर, चपाती खाऊँगा, बकरे और मुर्गियाँ खाऊँगा और एक दिन फिरसे जवान होकर उठ जाऊँगा। उसका हठ पूरा करनेके लिए घरके लोग उसे उसकी रुचिका अच्छा-अच्छा खाना खिलाया करते थे। लेकिन यह खाना बेचारे बालट्याके पेटमें ठहरता ही न था। जो कुछ खाता वह हज़म न होता और उससे उसका खून नहीं बन रहा था। और वह जवान होकर भी अपने बिस्तरसे नहीं उठ पा रहा था।

बाला बनगर अभीतक गाँवके आगे सिर नहीं झुका रहा था। गाँववाले हर तरहसे उसके कामोंमें रुकावटें डाल रहे थे। लेकिन चीमड़ बाला जहाँ था, वहीं अभीतक स्थिर था।

शेकू और उसकी हाथ-भर ऊँची औरत दोनों अपने खेतमें खून-पसीना एक कर रहे थे। पटेलकी अंजी जवानीसे इठलाती हुई गाँव-भरमें घूम रही थी। आनन्दा छोटी-मोटी चोरियोंसे अब भी अपनी गुजर-बसर कर रहा था। रामा बनगरका निठल्लापन पहले-जैसा अब भी क़ायम था। बाससे भेड़ोंको पहचान लेनेवाला उसका बूढा अब भी भेड़ें चराने जाता था।

गाँवके जवान लड़के सुबह उठकर भेड़ें चराने जाते थे। दिन-भर खेतों और जंगलोंमें घूमकर शामको घर लौटते थे। भेड़ोंको मिलाते थे, उनकी देखभाल करते थे और रातको चौकन्ना होकर सोते थे। गड़रियों-की औरतें खाना पकाती थी और बच्चोंको दूध पिलाती थी।

इस तरह सब काम चल रहे थे और एक दिन सरकारकी ओरसे मेरे पत्रका उत्तर भी आ गया। उसमें मुझे सूचित किया गया था कि २० अप्रैलको राजा साहब बनगरवाड़ी पधारेंगे, और फिर तेजीसे काम-काजके चक्र घूमने लगे। तहसीलके सदर मुकामसे एक-एक दिनका अन्तर देकर अफ़सर गाँवमें दौरेपर आने लगे और कामोंका निरीक्षण करने लगे। तहसीलसे गाँव तक आनेवाली सड़क सुधर गयी। सडकके दोनों किनारों-पर सफ़ेद मार्गदर्शक पत्थर लगा दिये गये। नगरपालिकाके कर्मचारी आये और एक दिन गाँवके सारे आवारा कुत्ते पकड़कर ले गये। कूड़ेके ढेरोंको हटानेका हुक्म दिया गया। हर घरने उस हुक्मकी तामील की। शालाकी इमारतकी मरम्मत की गयी और उसे चूनेसे पोत दिया गया। जहाँ-जहाँ भी कूड़ा-कचरा और गन्दगी थी, वह हटा दी गयी और वह स्थान बिलकुल साफ़ कर दिया गया। अफ़सरोंने कहा, गाँवमें आनेके लिए सबसे पहले रामोशियोंका मुहल्ला पडता है, इसलिए सरकार पहले उस मुहल्लेमें प्रवेश करेंगे और किसी भी रामोशीके मकानमें जाकर उसकी हालत देखेंगे और उससे कुछ पूछ-ताछ करेंगे। तब रामोशियोंके मुहल्लेकी सफ़ाईके लिए दौड़-धूप शुरू हो गयी। प्रत्येक घर लीप-पोतकर स्वच्छ कर दिया गया। यह देखकर कि रामोशियोंने अपने घर साफ़ करके

आईनेकी तरह स्वच्छ कर लिये, गडरियोंकी औरतोंको भी जोश आया। उन्होने भी अपने-अपने घरोंको ठीकसे लीप-पोत डाला। कई बरसोंसे न पुते होनेके कारण जिन घरोंकी दीवालोंपर बदसूरत धब्बे उभरे हुए थे, उनपर भी कूँचियाँ फिरी। कुछ घर गिर पडे थे और उनके पत्थर लुढककर सडकमे आ गये थे। वे उठाकर घरमे यथास्थान लगा दिये गये। इस तरह कुछ डरसे और कुछ खुशीसे भी यह कभी न होनेवाला काम होने लगा। और अच्छी तरह नहा-धोकर, बाल सँवारकर और पूरे बदनमे स्वच्छ कपड़े पहने हुए गड़रियोके बच्चोंकी तरह, गाँव रंगीन दिखने लगा।

और व्यायामशालाका काम भी क़रीब-क़रीब समाप्तिपर आ गया। दीवालें खडी हो गयी, छाजनपर बल्लियाँ डाल दी गयी। कारीगरोंने अपना बहुत-सा काम पूरा कर डाला। थोड़ा काम अगर बच रहा था तो बढ़ईका। वे अभी तक तख्तोंपर रन्दा फेर रहे थे। खूँटियाँ खराद रहे थे। चौखटें जोड़ रहे थे।

यह महसूस करके कि हमारे राजा गाँवमे आयेंगे, सचमुच बनगरवाड़ीमे परिवर्तन हो गया। गाँवमे ऐसा एक भी मनुष्य न था जो राजाके आनेके विषयमे उदासीन हो। गाँवके गड़रियोमे-से किसीने भी आज तक अपने राजाको कभी देखा न था। और वह प्रत्यक्ष उनके गाँवमे पहली बार आ रहा था। यह एक अजूबी घटना थी। जिसके कारण गाँवमे एक अपूर्व नयी चेतना आ गयी। पड़ोसके गाँवोंको बनगरवाड़ीसे ईर्ष्या होने लगी थी। इस गाँवकी ओर कभी झाँककर भी न देखनेवाले अफ़सर, पटेल, पटवारी, तहसीलदार, थानेदार आदि सभी गाँवमे आ रहे थे। लेकिन ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे और अफ़सरोंके अधिक चक्कर लगने लगे, त्यों-त्यों हमे भी जल्दी पड़ने लगी। सभाके लिए मेज़, कुरसियाँ एकत्र करना, गुलदस्तों और फूल-मालाओका प्रबन्ध करना, शालाके विद्यार्थियोंके लिए अच्छे कपड़े बनवाना, गाँवके लोगोंसे अच्छी वेश-भूषामे आनेके लिए

कहना, ये काम भी मुझको ही करने थे। राजाके आनेके कारण अनेक झंझटें आयी और दौड़-धूप करके हम उन्हे पूरा करने लगे। यह दौड़-धूप अन्तिम दिन तक चलती रही।

दूसरे दिन सुबह साढे आठ बजे उद्घाटन समारोह था और अभीतक व्यायामशालाकी इमारतपर मिट्टीकी छाजन नहीं डाली गयी थी। दोपहर-के तीन बजे थे और अभीतक इमारत ऊपरसे खुली हुई थी। यदि महाराज ऐन मौकेपर इमारतको बिना छतके देखेंगे तो क्या कहेंगे ? मेरी सारी इज़्जत धूलमे मिल जायेगी, गाँववालोंकी हँसी होगी। यह मनमे आते ही मै बिलकुल घबड़ा गया और जाकर पटेलसे बोला, "गाँवकी बदनामी होगी, पटेल ! व्यायामशालापर अभीतक छाजन नहीं है और महाराज तो कल सुबह ही आ रहे है।"

पटेल जल्दी-जल्दी उठा। "आँऽ ? क्या कह रहा है, लड़के ? अभी-तक छाजन नही डाली ? अरे, तो बुलाओ सबको, गाँववालोंको इकट्ठा करो, मिट्टीका गारा बनाओ। छाजन चढानेमे क्या देर लगती है ?"

दौड-धूप मच गयी। सारे गाँववाले अपना-अपना काम छोड़कर इमारतके पास आकर इकट्ठे हो गये। मिट्टीका गारा बनाया गया। गारेसे लेकर इमारतकी छत तक सौ-डेढ-सौ आदमी खड़े हो गये और छाजन चढानेका काम शुरू हुआ। नंगे बदन गड़रिये मिट्टीके लोदे जल्दी-जल्दी एक-दूसरेके हाथमे फेंकने लगे। इमारतपर छत बनने लगी। पड़ोसके गाँव-से बुलाकर लाये गये बाजेवाले डफ बजाने लगे और उसके तालपर चिल्ला-चिल्लाकर 'हाँ-हूँ-ले-ले, आया रे आया' कहते हुए लोग काम करने लगे। बाजा जल्दी-जल्दी बजने लगा था और डेढ़-सौ हाथ एक साथ काम कर रहे थे।

शाम हो गयी। अँधेरेकी गाढ़ी परत आसमानपर चढ़ने लगी। पहलेसे ही गैसकी बत्तियोंका इन्तज़ाम कर लिया गया था। इसलिए उन्हें जलाया गया और रोशनीमें काम होने लगा। जब काम करनेवाले थक जाते और

उनके हाथ कुछ ढीले-से पडने लगते तो पटेल और आयबू चिल्ला पडते और काम करनेवालोंको फिर जोश आ जाता। सब तरफ़ गड़बडी मची हुई थी। सारा गाँव जाग रहा था। बन्दनवार बाँधे जा रहे थे। गाँवकी सरहदपर आते ही महाराजको इक्कीस बैलोंके रथमे बैठाकर गाँवमें लानेका तय हुआ था। इसके लिए बैल इकट्ठा किये जा रहे थे। रथ मजाया जा रहा था। इन्तज़ामके लिए पुलिसके अफ़सर पहलेसे ही पहुँच गये थे। वे यूँ ही लोगोको डाँट रहे थे। यह चिन्ता व्यक्त कर रहे थे कि महाराज कल सुबह आ रहे है और तुम लोगोंकी अभी कोई तैयारी नही हुई है।

आधी रात बीत गयी। काम समाप्तिपर आ रहा था। और एकाएक ऊपर किनारेपर खडा होकर मिट्टीके लोदे लोकनेवाला आयबू अचानक नीचे गिर पड़ा। गिरते हुए वह 'मरा, मरा' कहकर जोरसे चिल्लाया। मै शालामे बैठा हुआ कलके लिए सारा प्रबन्ध ठीक कर रहा था। पटेल रथकी सजावटके पीछे पड़ा था। रामा बन्दनवार बाँधनेमे व्यस्त था। आयबू जब गिरा उस समय हममे-से कोई वहाँ न था। वह गिरते ही बेहोश हो गया। छाजनका काम रुक गया। सब लोग अपने-अपने काम छोड़कर आयबूको घेरकर खडे हो गये। "मुलानी मर गया, मुलानी मर गया" की आवाजें आने लगी। एक तो पहलेसे ही गडबडी मची हुई थी और ऊपरसे यह इतना शोर-गुल हो रहा था कि हमारे इतने नजदीक होते हुए भी हममे-से किसीको भी उस चिल्लाहटका पता न चला। आनन्दा भागता हुआ पटेलके पास गया और बोला, "दादा, मुलानी गिर पड़ा। वह बेहोश है। उसके मुँह और नाकसे खून आ रहा है!"

पटेलने देखा कि इमारतकी छाजनका काम बन्द हो गया है तो वह बोला, "अरे, तुम लोगोंने काम क्यो बन्द कर दिया? मुलानी गिरा तो गिर पड़ने दो। जाओ तुम लोग, अपना-अपना काम करो।"

और उसने सब लोगोंको अपनी-अपनी जगह भगाकर छाजनका काम फिरसे शुरू करवाया। आयबूको उठवाया और मेरे कमरेमे ले जाकर लिटा

दिया। और पटेल काममे लग गया। मुर्गेकी बाँगके साथ पौ फट रही थी। थोड़ी ही देर बाद कार आनेवाली थी। किसीको मरनेकी भी फ़ुरसत न थी। फिर वहाँ रोनेकी किसे होती ? पटेलने प्याज काटकर आयबूको सुँघा दिया। उसके सिरपर पानीके खूब छीटे दिये। लेकिन आयबू आँखें नहीं खोल रहा था। तब दरवाजा खोलकर पटेल मेरे कमरेसे बाहर आया और फिर अपने काममे लग गया। वह एक प्रकारसे विवाहोत्सव ही था जिसे मुरदेको ढाँककर पूरा करना आवश्यक था।

छाजनका काम पूरा हुआ और सूरज निकल आया। लोग नहानेके लिए, कीचड़से भरे हुए अपने तन धोनेके लिए कुएँ और नालेपर गये।

चार-छह रामोशियोके लडकोंको सडककी ओर महाराजके आनेसे पहले ही रवाना कर दिया ताकि वे वहाँका प्रबन्ध देखें और राजाकी मोटर दिखायी पडते ही गाँवमे आकर खबर दें। सिगावालेको एक ऊँचे पेड़पर बैठा दिया गया। तय यह हुआ कि दूर—जब मील-दो-मीलपर महाराजकी मोटर दिखे, वह संकेतके लिए अपना सिगा बजा दे।

और ठीक आठ-सवा आठके लगभग सिगावालेने अपना सिंगा बजाकर इशारा किया। "सरकार आ गये, सरकार आ गये" कहते हुए लोगोकी दौड-धूप शुरू हो गयी। बगलमे बच्चोंको दबाये गड़रियोंकी औरतें गाँवकी सरहदकी ओर दौड़ने लगी। इन्तजामके लिए तैनात पुलिसके सिपाहियोंने उन्हे डाँटकर वापस लौटाया। रथमे बैल जोतकर हम तैयार हुए। उस तरफ़ यह रिवाज था कि जब राजा किसी गाँवमे आता तो वहाँका पटेल हाथमे नारियल और एक रुपया लेकर उसके सामने जाकर उसका स्वागत करता। लेकिन हमारे गाँवमे सरकारसे मान्य कोई पटेल न था और न पटवारी ही था। तब उद्घाटन समारोहका तमाशा देखने आया हुआ पड़ोसके गाँवका एक पटेल इस कार्यको स्वयं करनेके लिए बीचमे टाँग अड़ाने लगा।

लेकिन मैने डाँटकर उसे चुप कर दिया और यह तय कर डाला कि

सिरपर नया लाल साफा बाँधे और बदनमे नया कोरा गोल अँगरखा, जिसमे-से माडीकी गन्ध आ रही थी, पहने हमारे गाँवका बूढा पटेल ही यह रस्म निभायेगा। सरहदपर आरतियाँ लेकर कुछ सुहागिनें खडी थी। बार-बार एड़ी उठाकर लोग देख रहे थे कि टीलेपर मोटर दिखती है या नहीं। आवाज़ स्पष्ट सुनायी पड रही थी। सडकपर बैठा दिये गये रामोशीके लड़के दौड़कर आये और हाँफते हुए उन्होंने खबर दी कि मोटर आ गयी। 'मावला' माताके टीले तक अभी पहुँची है।

सब लोगोंने अपनी-अपनी टोपियाँ और साफे ठीक किये। अफसरोने कोटके बटन ठीकसे लगाकर अपने-अपने शर्ट नीचे खींचे और सडकपर खडे सिपाहियोंने सीटियाँ बजायी। महाराजकी लाल प्लेटवाली कोरी नयी चमकदार कार सरहदपर आकर खड़ी हो गयी। मै जल्दी-जल्दी आगे बढा। शिक्षा-विभागके अफसर साथ थे ही। सरकारको झुककर प्रणाम करते ही वे बोले, "ये यहाँके मास्टर है।"

अँगूठियोंसे भरे हुए हाथ जोड़कर सरकारने कहा, "जय देवा!"

सब लोग जल्दी-जल्दी झुके। गडरियोंने धरती छूकर अपने राजाका अभिवादन किया।

फिर तहसीलदार आगे बढ़े और बड़े अदबसे बोले, "महाराज! लोगोकी प्रार्थना है कि यहाँसे गाँव तक सरकार रथमे बैठकर चलें!"

"हाँ, हाँ, क्या हर्ज है। रथमे ही चलेंगे।"

नौकरने तुरत कारका दरवाज़ा खोला। महाराज बाहर आये। अपने गोरे और भव्य राजाको गड़रियोने देखा। महाराजके सिरपर गहरे लाल रंगकी पगड़ी थी। बदनमे सफ़ेद खादीका लम्बा कोट था। नीचे सफ़ेद चूड़ीदार पायजामा था। पैरोमें लाल जूते थे। चमकदार किनारोवाले उपरनेकी पट्टी उनकी चौड़ी छातीपर भव्य लग रही थी। बड़ी-बडी आँखें, सीधी नाक, रुपहली भरी हुई मूँछें ऐसा भव्य था महाराजका स्वरूप—जो सारे वातावरणपर छाया हुआ था। महाराजके रथकी ओर बढ़ते ही

गड़रियोंकी औरतें एक-दूसरेसे बतकही करने लगीं, "राजा बूढा हो गया। अब उसे लाठीके सहारे चलना पड़ता है।"

मैंने पटेलको इशारा किया। उसने हिम्मतसे नारियल और रुपया रखी हुई थाली आगे बढ़ायी। महाराजने उसे हाथ लगाया और पटेलके कन्धेपर एक हाथ रखकर कहा, "क्यों पटेल, अच्छे हो न ?"

पटेल अदबसे हँसा और गरदन हिलाता हुआ बोला, "हाँ सरकार !"

महाराजने फिर रथमें चढते समय भी पटेलके कन्धेका आधार लिया। महाराजके रथमें बैठते ही बैलोंकी रास पकड़े हुए लोगोंने बैलोंको इशारा किया। बैल रथ खींचने लगे। सिंगा बजा। शहनाई और ताशे बजे। गड़रियोंने महाराजकी जय बोली। शालाके लड़कोंने "महाराज चिरायु हों" का जयघोष किया। सुहागिनोंने आगे बढकर राजा साहबकी आरती उतारी। महाराज गाँवमें आये। आज तीस-पैंतीस झोंपडोंवाले गडरियोंके इस गाँवमें महाराज पधारे है !

व्यायामशालाका बन्द दरवाज़ा महाराजने अपने हाथसे खोला। फिर सिंगा बजा। बाजेवालोंने बाजे बजाये। वह प्रशस्त व्यायामशाला, हौदा और लाल मिट्टी देखकर महाराज अभिभूत होकर बोले, "कहाँ है वह मास्टर ?"

"मैं हाथ जोड़े सामने जाकर खड़ा हो गया।"

"उत्तम ! यह बहुत ही अच्छा काम किया है तुमने ! क्या नाम है तुम्हारा ?"

मैंने कहा, "राजाराम विट्ठल सौदणीकर।"

मामलेदारने स्पष्टीकरण किया, "यह विट्ठल घोडोबाका लड़का है। इसका पिता हमारे सरकारी दफ्तरमें कारकून है, सरकार !"

"अच्छा ! ठीक है। बहुत अच्छा है ! ज्ञानके साथ बलकी उपासना होनी ही चाहिए !"

मेरा हृदय आनन्दसे भर गया। एकदम रोमांचित ! गला कुछ भर-सा

गया। लगने लगा जैसे मेरी आँखोंसे आँसू निकल आयेंगे।

व्यायामशालामे हनुमान्‌जीकी एक मूर्ति प्रस्थापित थी। महाराजने उस मूर्तिके सामने स्वयं एक नारियल फोड़ा और फिर सभा शुरू हुई। मैंने अपना भाषण लिख रखा था। उसे स्पष्ट शब्दोंमे पढ दिया। पढ़ते समय मेरा कलेजा धुकधुका रहा था।

मैंने अपने भाषणमे कहा, व्यायामशालाके खेलोंसे लड़के आकर्षित हों, एकत्रित हों और खेलके साथ-साथ उनमे पढ़नेकी रुचि भी पैदा हो, इसी उद्देश्यसे हम लोगोंने इस व्यायामशालाको स्थापित करनेका प्रयत्न किया है। गाँववालोंने इसके बनानेमे जो सहयोग दिया, जो परिश्रम किया, जो सराहनीय उत्साह और एकता दिखायी उसकी मैंने प्रशंसा की। और अन्तमे अपने अभीष्ट-साफल्यके लिए महाराजसे आशीर्वादकी काक्षाके साथ अपना भाषण समाप्त किया।

फिर महाराजने छोटा-सा भाषण दिया। वे बोले, "यह देखकर कि मेरे पुत्रवत् इन गड़रियोंने इस छोटी-सी बस्तीमे ऐसी सुन्दर व्यायामशाला बनायी है, मेरा हृदय आनन्द और अभिमानसे भर गया है। बलोपासना और ज्ञान-संवर्धन मेरी रियासतका ध्येय है। मेरा यह आग्रह है कि मेरी रियासतके हर एक विद्यार्थीका सीना चौड़ा हो, बदन गठीला हो और बुद्धि तीक्ष्ण हो। और अपना यह आग्रह मै हमेशा कहकर सुनाता रहता हूँ। मेरी यह बात यहाँके गड़रियो तक भी पहुँचेगी, यह मैंने कभी नहीं सोचा था। आज यह देखकर कि वह यहाँतक पहुँच गयी है और कार्य रूपमे भी परिणत हो रही है, मै चकित हो गया हूँ। यह देखकर मेरी छाती दो इंच अधिक फूल गयी है। मेरी यह कामना है कि जगदम्बा तुम्हें सुबुद्धि दें, तुम्हारा कल्याण करें।"

मैंने आभार माना। लड़कोंने 'वन्दे मातरम्' गाया और समारोह समाप्त हुआ। महाराजकी मोटर धूल उड़ाती हुई चली गयी। साइकिलों और बैलगाड़ियोंसे दूसरे अफ़सर भी चल दिये। राजाके सम्बन्धमे घर-घर

चर्चा शुरू हो गयी। महाराज चले गये, समारोह समाप्त हो गया लेकिन गड़रियोंका आनन्द समाप्त नहीं हुआ। वे जगह-जगह टोलियोमे खड़े हुए ज़ोर-जोरसे बातें करते रहे। यह आनन्द उन्हे कितने ही दिनों तकके लिए तुष्टि देनेवाला था।

इस सारे समारोहमे सिर्फ दो व्यक्ति नही आये, बाला बनगर और बालट्या। बालाको मालूम हो गया था कि महाराज आ रहे है। किसीने उससे कहा भी था कि चलो उन्हे देख आयें, लेकिन उसने साफ़ इनकार कर दिया था।

बालट्या लगातार छटपटा रहा था। लेकिन बिस्तरसे उठना उसके लिए सम्भव न था। पटेलको घर बुलाकर उसने कहा, "मुझे महाराजको देखनेकी बडी इच्छा है। किसीसे कह दे तो वह मुझे अपनी पीठपर लादकर वहाँ ले चले।"

लेकिन पटेल डरा। यह वाहियात आदमी वहाँ अण्ट-सण्ट बकेगा, शिकायत करेगा कि उसे किसीने खूब मारा है। इसलिए पटेलने उसे नहीं आने दिया। बालट्याने सबको गालियाँ दी, लेकिन उसकी ओर किसीने भी ध्यान नही दिया।

समारोह समाप्त होनेके बाद किसीने मुझसे कहा कि आयबू व्यायामशालाकी छतसे गिर पड़ा। उसे ज़बरदस्त चोट लगी है। उसे उठाकर तुम्हारे कमरेमे डाल दिया है। यह सुनते ही मेरा सारा आनन्द एकदम किरकिरा हो गया। मैं घबड़ाकर उसी समय घर गया। कमरेके भीतर पहुँचकर मैंने देखा कि आयबू कम्बलपर औंधा पड़ा हुआ था। मेरा कलेजा काँप उठा। राजा गाँवमे आया तो क्या इसीलिए आयबूने अपने प्राण निछावर कर दिये? मै ज़ोरसे चिल्लाया, "आयबू! आयबू!!"

आयबू औधा पड़ा था। मैंने उठाकर उसे चित कर दिया और उसके मुँहकी ओर देखा। उसकी आँखें बटनकी तरह दिख रही थीं। धीरे-धीरे चलनेवाली उसकी ग़रम साँस मेरे गालोंको छू रही थी। क्षण-भरके लिए

खोली हुई आँखें उसने पुनः बन्द कर लीं और वह व्याकुल हो उठा।

मैंने पूछा, "आयबू, तुझे क्या हो गया है ? क्या चोट बहुत लग गयी है ? अरे, तुझे कैसा लग रहा है"

आयबूने आँखें खोली। काँपती आवाज़मे वह बोला, "मास्टर, राजा आया क्या ?"

"अरे, आया और आकर चला भी गया। तुझे क्या हुआ, इस तरह क्यो पडा है ?"

आयबू विलक्षण रूपसे दुःखी हुआ। उसके चेहरेपर स्याह रेखाएँ दिखने लगी। वह बोला, "राजा आया····और मै न देख सका।" और चित पड़ा हुआ वह फिर औधा होकर चुप हो गया।

सोलह

महाराज आकर चले गये। व्यायामशाला शुरू हो गयी। पिछले कई महीनोसे हो रहा काम पूरा हो गया। कसरतके शौक़के कारण गाँवके प्रायः सभी लड़के व्यायामशालामे आने लगे। डण्ड-बैठक लगाने लगे। लेज़िम, लाठियाँ, पट्टे और बनैठियाँ आदि सामान व्यायामशालामें रहने लगा। कभी-कभी गाँवके बुजुर्ग भी मज़ेके लिए लाल मिट्टीमे अपने बदन रगडते थे। शालामे अच्छी तरक़्की हुई। सुबह और दोपहरको रोज़ नियमसे बीस-बाईस लडके शालामे आने लगे।

छतसे गिरनेके कारण आयबूका हाथ टूट गया था और अन्दरूनी चोट लगी थी। उसका हाथ ठीक रहनेके लिए आनन्दाने अपनी जातका एक आदमी मेरे पास भेज दिया था। उसका नाम जगन्या था। यह लड़का बडा सुन्दर था और जवानीपर आ गया था। वह रोज़ घर आकर आयबूके हाथकी मालिश करता था। आनन्दाने मुझसे कहा कि टूटी हड्डियाँ बैठा

देनेकी कला जगन्याने अपने बापसे सीखी है। उसका बाप गाँवका मशहूर शिकारी था। पेटके बल सरकता हुआ तोड़ेकी बन्दूकसे वह हिरनको मार देता था। उसने बहुत-से हिरन मारे। उसके पास इतने हिरनके सींग थे कि वे कई कमरोंकी खूँटियोंके लिए काफ़ी हो जाते। अन्तमें बूढा होकर वह मरणासन्न हो गया। और हिरनकी तरह चिल्लाने लगा। सैकड़ों हिरन मारनेवाला तात्याबा रामोशी हिरनकी तरह चिल्ला-चिल्लाकर मरा!

जगन्याकी मालिशसे आयबूके हाथकी खिसकी हुई हड्डी फिर अपनी जगहपर जम गयी। अन्दरकी चोट होनेके कारण अकडा हुआ अंग भी ढीला पड़ गया और दस-पन्द्रह दिनके बाद वह उठकर चलने-फिरने लगा। मुलानीका लड़का मरते-मरते बच गया। लेकिन कुछ दिनोंके बाद ही जगन्याने एक झमेला उपस्थित कर दिया जिसे निबटाते-निबटाते गाँववाले परेशान हो गये।

बनगरवाडीसे पाँच-छह कोसकी दूरीपर वागी नामका एक गाँव था जो शरारत और बदमाशीके लिए हमारी समूची तहसीलमें बदनाम था। वहाँ खून और मार-पीटका बाजार हमेशा गरम रहा करता था। उस गाँवमें पराये आदमीको अपनी जान मुट्ठीमें लेकर ही रहना पड़ता था। जब किसी स्कूल-मास्टर या पटवारीकी उस गाँवमें बदली होती तो वह काँप उठते थे। जब तहसीलदार लगान वसूलीके लिए उस गाँवमें जाते, वे भी गाँववालोंसे बडी नरमीसे पेश आया करते। वे इतनी नम्रतासे लगान माँगते जैसे भीख माँग रहे हों। काम-काजके बहाने जगन्या कभी-कभी वागी जाया करता था।

एक दिन दोपहरको आठ-दस जवान लड़के बनगरवाडीमें आये। वे हाथोंमें कुल्हाड़ियाँ और भाले आदि लिये थे। सिरपर साफे और बदनमें मलमलके कुरते पहने हुए थे। ये नौजवान गाँवमें घुसे और सीधे रामोशियोंके मुहल्लेमें पहुँचे। जल्दी-जल्दी उन्होंने सारे रामोशियोंके घरोंकी तलाशी ली, औरतोंको खूब डाँटा, धमकियाँ दीं। एक-दो रामोशियोंको कुल्हाड़ीकी बेटसे मारा भी। रामोशियोंके मुहल्लेमें कोलाहल मच गया।

बच्चे डरकर चीखने-चिल्लाने लगे। कुत्ते भौकने लगे। रामोशियोंकी डरी हुई औरतें बच्चोंको उठाकर गडरियोके आश्रयमें आयी। गड़रिये जंगलों और खेतोमें गये हुए थे। मर्दोंकी संख्या गाँवमें अधिक न थी। ऐसी अवस्थामें ये उपद्रवी लोग जब झोपड़ोंकी तलाशी लेने लगे, एकदम कोहराम मच गया।

मैं शालामें था। आनन्दा भी वहीं था। यह मालूम होते ही कि रामोशियोंके मुहल्लेमें कुछ लोग घुस पड़े हैं, वह जल्दीसे उठकर वहाँ पहुँचा। पढाना छोड़कर मैं भी गया। इस बीच हर एक झोंपड़ीकी तलाशी लेकर वे लोग सड़कपर आकर खड़े थे। आनन्दा आगे बढ़ा और उसने पूछा, "यह क्या गड़बड़ है?"

वह एकदम पहचान गया कि ये लोग वांगीके हैं। आनन्दाके इस तरह पूछते ही उनमें-का एक लड़का उसपर टूट पड़ा और बोला, "तू भी रामोशी है न?"

और आनन्दाके 'हाँ' कहते ही उस लड़केने आनन्दाकी पीठपर अपनी लाठीके दो प्रहार किये और गाली देकर कहा, "जगन्या रामोशी कहाँ है?"

लाठीका प्रहार सहकर आनन्दा बोला, "क्यो, उसने क्या किया है?"

और, आनन्दापर उस लड़केकी एक लाठी फिर बरसी।

अब मुझसे न रहा गया। आगे बढकर मैंने उस लड़केका हाथ पकड़ लिया और पूछा, "तुम कौन लोग हो? एकाएक गाँवमें घुसकर इस तरह मार-पीट करते हो? क्या तुम्हारा यह खयाल है कि यहाँ तुम मनमानी कर सकते हो और कोई कुछ न करेगा?"

यद्यपि मैं शरीरसे छरहरा ही था। लेकिन मेरी ज़बानसे विलक्षण पैने बोल आप-ही-आप निकल पड़े और क्षण-भरके लिए उस लड़केको अपना हाथ छुड़ानेका भी होश न रहा।

फिर उन्हींमें-से एक नाटा, हट्टा-कट्टा और उम्रमें बड़ा आदमी आगे

बढ़ा। लड़केको एक तरफ़ खींचकर उसने मेरे सीनेसे अपना सीना भिड़ाते हुए कहा, "तू कौन है रे जो इतने जोशमें बोल रहा है ?"

"मैं सरकारी नौकर हूँ। यहांकी शालाका मास्टर हूँ। तुम किस आदमीको चाहते हो, ठीकसे पूछो। एकदम मारपीट करनेके लिए यहाँ कोई अन्धेरखाता नही है ?"

इस बीच टूटे हाथमे लकड़ी लिये आयबू आ गया था। शालाके चार-छह जोशीले लड़के भी अखाड़ेको लाठियाँ लिये मौकेपर आकर हाजिर हो गये थे।

मेरे सीनेसे-सीना भिडाकर खड़ा हुआ वह शख्स इधर-उधर देखकर थोड़ा ढीला पड़ा। नथुने फुलाकर बोला, "हम जगन्या रामोशीकी तलाश-मे है।"

मैंने कहा, "दो-चार दिनोसे वह इस गाँवमे नही है।"

"हम इसे कैसे सच मानें ?"

'मै कह रहा हूँ इसलिए।"

"तुझमे तो बड़ी मस्ती है रे मास्टर !"

इसी समय गाँवकी कोई बुढिया आगे बढ़ी और उस साफाधारीकी चिबुकको हाथ लगाकर बोली, "अरे मेरे बेटा, गरीब रामोशियोंपर क्यो कुल्हाड़ी उठाता है ? तू कुलवान् मराठा है। रामोशी तो तेरे पैरोकी धूल बराबर है। ठीकसे बैठ जा। धूपमे चलकर आया है, थोड़ा पानी पी ले, सुस्ता ले। फिर अगर तेरा कोई काम हो तो इस मास्टरसे पूछ।"

और फिर कोलाहल मचाती हुई रामोशियोंकी औरतें इकट्ठी हुईं, गड़रियोंकी औरतें भी आ गयीं और दोनोने मिलकर वांगीके उन जवानो-के पुरखोंका बखान करना शुरू किया।

मैंने कहा, "तुम सब व्यायामशालामे चलो। वहाँ हमे बताओ कि तुम क्या चाहते हो ? यहाँ क्यों आये हो ? यूँ ही मारपीट करना भले आदमियों-का काम नहीं है।"

जाने क्या सोचकर वे हमारे साथ चलनेके लिए राज़ी हो गये। लड़कोंकी टोली हमारे पीछे-पीछे आने लगी। औरतें भी आने लगीं। तब मुझे सबको डाँटना पड़ा। डाँटनेके बाद फिर ज़रूर गाँवका कोई भी हमारे पीछे-पीछे नहीं आया। मैं, आनन्दा, रामा और वागीके लोग, सब व्यायामशालामें पहुँचे।

मैंने कहा, "हाँ भाई, अब कहो क्या बात है?"

उनमें-से एक बोला, "हम लोग वागी गाँवके हैं। तुम्हारे गाँवका जगन्या हमारी जातकी एक विधवाको भगा लाया है। उसे ही देखने हम आये हैं।"

ये लोग एकाएक इस तरह झगड़ा करनेपर उतावले क्यों हो गये, इसका कारण अब मेरी समझमें आ गया। उनकी यह खोज बिलकुल स्वाभाविक थी। जगन्याने ऐसा कोई काम किया होगा, इसकी धुँधली-सी भी कल्पना हमें न थी। रामा और आनन्दा भी इस खबरको सुनकर चकित हो गये।

जगन्याको एक भद्दी गाली देते हुए आनन्दा बोला, "घरमें तो भूनी भाँग नहीं है और सालेको रंडीबाजीका शौक़ चर्राया है। तुम लोग खुशीसे उसे मार डालो, पटेल! गाँवका एक आदमी भी तुम्हें नहीं रोकेगा।"

आनन्दाके इस तरह पैंतरा बदल देनेसे वे लोग सीधे हो गये। ठीकसे बातें करने लगे। औरत विधवा थी, उसका चाहे कोई वारिस न हो, फिर भी यह सारे गाँवकी प्रतिष्ठाका प्रश्न है। उनका कहना था कि हमारे मुँहमें यह कालिख पुत गयी है कि एक रामोशी हमारे गाँवकी औरत भगा-कर ले गया। और उनका यह कहना ठीक भी था। आनन्दाने कहा, "वह अगर यहाँ होता, तो लात मारकर उसे तुम्हारे सामने हाज़िर कर देता। हम अपने हाथसे उसका सिर फोड़ देते।"

वे लोग बोले, "जाता कहाँ है? साला जहाँ भी होगा, हम वहीं उसे पकड़ेंगे और मारेंगे।"

"हाँ, हाँ, तुमसे बचकर कहाँ जा सकता है वह गरीब ! तुम लोगोंके सामने उसकी क्या हिम्मत ?"

मुझे यह नही सूझ रहा था कि मै क्या कहूँ ? ये उजड्ड लोग जगन्याके पीछे इस तरह पड़ गये थे जैसे कोई पागल कुत्तेके पीछे पड़ जाता है। यदि वह उनकी झपेटमे आ जायेगा तो ये लोग उसकी जान लिये बगैर न रहेगे।"

अन्तमे आनन्दाने उन सबसे कहा, "सरकार, जिस तरह यह तुम्हारी इज़्ज़तका सवाल है, उसी तरह वह रामोशियोंके लिए भी बड़े कलंककी बात है। इसलिए अब तुम लोग लौट जाओ। मै खाण्डोबाकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि उस औरतको और उस रामोशी छोकरेको आठ दिनके भीतर तुम्हारे सामने हाज़िर कर दूँगा। फिर तो तुमको सन्तोष होगा ?"

वांगीके लोग विचार करने लगे।

आनन्दा बोला, "क्यों मास्टर, तुम्हारी क्या राय है ?"

"ठीक है। यदि जगन्याने अपराध किया है तो उसे पकड़कर इन लोगोंके हवाले कर देनेमे कोई हर्ज़ नहीं।"

आयबूने गाँवमें घूमकर डलिया-भर मूँगफली और मुट्ठी-भर गुड़ इकट्ठा किया और दोनों चीज़ें लाकर वांगीके लोगोके सामने रख दी। थोडी देरके बाद बटलोई-भर चाय बनाकर लायी गयी। और जब मेहमान मूँगफली खा चुके तो उन्हे पीतलके बरतनोमे चाय पिलायी। आग्रह कर-करके पिलायी।

आनन्दाकी बात मानकर और मुझे ज़िम्मेदार बनाकर वांगीके लोग चल दिये। हम लोग उन्हे गाँवके बाहर तक पहुँचाने गये।

वे लोग दृष्टिसे ओझल हुए और हम लोग वापस लौटे। रास्तेमे मैने आनन्दासे पूछा, "जगन्या न मिला, तो क्या होगा रे ?"

आनन्दाने खखारकर थूका और कहा, "अगर वह मरघटमें गया होगा तो वहाँसे भी पकड़कर ले आऊँगा मास्टर ? देखो, उसका पता लगाकर

उसे लाता हूँ या नहीं ?"

बहुत तड़के उठकर आनन्दा रामोशी जगन्याकी टोहमें चल पडा। उसके साथ एक-दो जवान लडके और थे। ये सब लोग कुल्हाड़ियों और लाठियोंसे लैस थे और इस ठाठसे जा रहे थे जैसे हिरनके शिकारको जा रहे हों। गाँवके रामोशियोंके वसीले कहाँ-कहाँ थे, यह आनन्दा अच्छी तरह जानता था। जगन्याको यह गाँव छोड़े दो दिन हो गये थे। इस अवधिमें यह सम्भव न था कि इतना फ़ासला पैदल तय कर वह मोटरसे स्टेशन तक जा सके और बम्बई जानेवाली गाडी पकड़ ले। क्योंकि उसे यह विश्वास होना ही चाहिए कि चूँकि वह भागा है इसलिए उसका पीछा ज़रूर होगा और लोग सबसे पहले मोटरके रास्ते और स्टेशनपर ही उसकी खोज करेंगे। इसलिए सहज ही वह कहीं दूर अपने किसी परिचितके यहाँ गया होगा। वैसे उसके पहचाननेवाले तो गाँव-गाँवमें थे। लेकिन खास बात यह थी कि दस-बारह कोस दूरवाले निमरज गाँवमें जगन्याकी बहन ब्याही थी। इसलिए आनन्दा उसी गाँवकी तरफ चल पडा और दोपहरको ठीक भोजनके वक़्त जजमानके द्वारपर हाज़िर हो गया।

मेहमानोंके आते ही जगन्याके बहनके घर गडबड़ी मच गयी। बेचारी जल्दी-जल्दी पड़ोससे चून उधार माँगकर लायी और गरम-गरम रोटियाँ और साग बनाकर मेहमानोंको पेट-भर खिलाया। डकार लेकर ये लोग उठे और आनन्दाने पान खाते-खाते जगन्याके बहनोईसे पूछा, "जगन्नाथ आया था क्या ?"

जजमान थोड़ा चौंका और उसने जवाब दिया, "नहीं, यहाँ तो नहीं आया।"

आनन्दाको अन्दाज़ था ही। उसकी तीक्ष्ण दृष्टिसे यह न छूटा कि उसके प्रश्नसे जजमान चौंका था। उसे विश्वास हो चुका कि जगन्या ज़रूर यहाँ हो गया है। और उसने अपने बहनोईसे औरत भगा लानेकी बात भी कह दी है।

आनन्दा बोला, "तुमसे झूठ क्यों बोलूँ ? जगन्याने बड़ी बेवक़ूफ़ी की है। वांगीके एक अच्छे घरकी औरत वह भगा ले गया है। उस गाँवके सौ आदमी भाले और कुल्हाड़ियाँ लिये गाँवपर टूट पड़े थे। मैंने हाथ-पैर जोड़े और कहा कि मैं जगन्या और उस औरतको लाकर तुम्हारे हवाले कर देता हूँ। तुम लोग सारे गाँवको तंग न करो। वे लौट गये। वरना गाँवमें दो-चार लाशें बिछनेका मौक़ा आ गया था।"

शायद जजमानको इन सब बारीकियोंका पता न था। वह थोड़ा सोचने लगा। भीतर जगन्याकी बहन बेचैन हो गयी। लेकिन यह स्वीकार न कर कि जगन्या आया था, जजमानने कहा, "जगन्याने सचमुच बड़ी ग़लती कर दी। बहुत ऊँचेपर हाथ मारा। औरत भगानेमें हर्ज़ न था। अगर भगानी ही थी, तो कमसे-कम अपनी जातकी भगाता। ख़ैर ! पर मैं कहता हूँ, तुम उसे पकड़कर क्या करोगे ? औरतकी इज़्ज़त तो चली ही गयी है। वह अब लौटकर तो आनेको नहीं। उसे कोई भी गाँवमें न रहने देगा। अच्छा, वे लोग जगन्नाथका क्या करेंगे ? मार-पीट करेंगे—चाहे जान भी ले लेंगे। लेकिन यह सब करनेसे जो हो चुका है वह मिट जायेगा क्या ?"

आनन्दाने कहा, "नहीं, मिटेगा तो नहीं। यह सच है।"

"तो फिर तुम क्यों यूँ ही अपना ख़ून सुखा रहे हो ? रहने दो उन लोगोंको साथ-साथ और उड़ाने दो मज़े दोनोंको। मियाँ-बीबी राज़ी तो क्या करेगा क़ाज़ी !"

एक तरहसे जजमानका कहना ठीक था। लेकिन वह यह बात बिल-कुल भूल गया था कि जगन्या तो उस औरतके साथ रंगरेलियाँ करेगा, लेकिन वांगीवाले उसके झोंपड़ेको जलाकर खाक कर देंगे और उसके घर-वालोंको तंग कर-करके जीना दुश्वार कर देंगे। बनगरवाड़ीका समूचा रामोशी-मुहल्ला बरबाद हो जायेगा। सारे गाँवपर आफ़त आयेगी, परेशा-नियाँ होंगी। उस छोटे-से गाँवमें आखिर आदमी ही कितने हैं ?"

आनन्दाने यह बात ठीकसे समझाकर रामोशीसे कही, लेकिन वह अपने सालेका पता बतानेके लिए राज़ी नहीं होता था। बहुत खोद-खोदकर पूछनेपर भी उससे जगन्याका कोई पता न चला। तब आनन्दा उठा और चलते-चलते बोला, "ठीक है, तो अब हम देखते है कि क्या करना चाहिए? राम-राम!"

जजमान भी राम-राम करके उठा। लेकिन इसी समय जगन्याकी बहन भीतरसे बाहर आयी और रुआँसी होकर बोली, "आनन्दा, जगू आया था।"

उसका पति लाल-लाल आँखें निकालकर उसकी ओर देखने लगा फिर भी उसकी पत्नीने अपना मुँह बन्द न किया।

स्टेशन गया है वह। ऐसा जान पड़ता है कि उसका इरादा उस औरत-को सांगली ले जानेका है। लेकिन तुम उसकी जानको धोखेमे न लाना। तुम्हे मेरी क़सम है।"

आनन्दा बोला, "चलो छुट्टी हुई। अरी, हम भी कहाँ उसके प्राण लेना चाहते हैं। क्या हमें उसकी जानकी फ़िक्र नहीं है। हम भला उसे मरने देंगे? कब गया है यहाँसे?"

"सवेरे गया है। अभी गाड़ीमे नहीं चढ़ा होगा।"

स्टेशनसे मिरजकी गाड़ी दोपहरको तीन बजे छूटनेवाली थी। जल्दी-जल्दी उन लोगोंसे बिदा होकर और उसकी बहनको बार-बार धीरज देकर आनन्दा अपने साथियोंके साथ वहाँसे चल दिया। उसने अपनी धोती ऊपर खोंस ली, जूते हाथमें लिये और स्टेशनकी राह पकड़ी।

चिलचिलाती धूप और हाड़ बेधनेवाली लूमे वे मज़बूत रामोशी दौड़ने लगे और दूर सड़कके किनारे एक बरगदकी छाँहमे उन्हे एक औरत और एक नौजवान बैठे हुए दिखायी दिये।

जगन्या काफ़ी तगड़ा था। मोटरकी तरह दौड़ता था। लेकिन उसके साथ जो गोरी औरत थी वह मोटी थी। एक तो पहले ही औरतकी जात

और ऊपरसे मोटी। पीछे कितना ही डर हो फिर भी जल्दी-जल्दी रास्ता तय करना उन दोनोंसे सम्भव न हो सका। जगह-जगह रुकते, सुस्ताते दोनों अभीतक स्टेशनकी राहपर ही थे।

आनन्दा ठिठककर खडा हो गया। माथेको हाथ लगाकर उसने ध्यान-से देखा और अपने साथियोंसे कहा, "यार, मैंने भाँप लिया। वह जगन्या ही है। वह लाल साफा उसीका है। पर अब क्या किया जाये? वह भाग जायेगा।"

लडके बोले, "भागने दो। खरगोशकी तरह फलाँगकर हम पकड़ लेंगे उसे।"

"पकड लोगे?"

"हाँ। और अगर वह भाग ही गया तो वह औरत तो है?"

"औरतको लेकर क्या चाटना है हमे? हमे तो जगन्याको पकड़ना है।"

"वह भी आखिर भागकर कहाँ जायेगा! चलो, नीचे देखते-देखते यूँ ही आगे बढ़ो।"

फिर लड़के चारों तरफ़ तितर-बितर हो गये। चारों ओरसे उन्होंने उस जोड़ेको घेर लिया और चोरी-चोरी वे उस जंगलमे-से चलते हुए जगन्या-की तरफ़ बढ़ने लगे।

जगन्या बार-बार सूरजकी तरफ़ देख रहा था और उस औरतसे कह रहा था, "अरी जल्दी कर। नही तो गाड़ी छूट जायेगी।"

थकानसे पस्त वह औरत फटे होठोंपर-से अपनी सूखी जीभ फेरती हुई कह रही थी, "थोड़ा ठहरो न? वरना मैं मर जाऊँगी।"

इस तरह चल रहा था तभी घबड़ाकर जगन्या एकाएक उठकर खड़ा हो गया। उसने आस-पास नज़र दौड़ायी। पीछे कुछ ही दूरीपर उसे आनन्दा खड़ा हुआ दिखायी दिया। उसे देखते ही उसने चटसे उस औरतका हाथ अपने हाथमें पकड़ा और उसे खींचते हुए बोला, "अरी भाग जल्दी। लोग हमे पकड़ने आ रहे हैं।"

हथेलीमें जान लेकर वे दोनों एक-दूसरेका हाथ पकड़े हुए दौड पडे। आनन्दाने पीछेसे चिल्लाकर कहा, "जगन्या ठहर। भाग नही।"

लेकिन जगन्या जैसे होश खो चुका था। बेतहाशा भाग रहा था। वह औरत भी बेतहाशा भागी जा रही थी। उन्होंने सीधा रास्ता छोड़ दिया। वे घने जंगलसे भागने लगे। पीछे भी न देख रहे थे। उस औरतका आँचल हवामे फरफरा रहा था। जगन्याके साफेका छोर हवामे लहरा रहा था। कंकड, पत्थर, मिट्टी किसीकी भी परवाह न करके वे दोनो बेतहाशा भागे ही जा रहे थे। और आनन्दा भी उनका पीछा कर रहा था।

भागते-भागते दम उखड़ जानेके कारण वह औरत गिर पडी। पीछे मुडकर जगन्या उसे उठाने लगा और उसने देखा कि पीछा करनेवाले लडके बिलकुल नजदीक पहुँच गये है। और फिर गिरी हुई हिरनीको छोडकर जिस तरह काला मृग जान लेकर भाग जाता है, उसी तरह जगन्या औरतको वहीं छोडकर अकेला ही दौड़ने लगा।

औरतके पास आते ही लड़के वही रुक गये। लेकिन आनन्दा जगन्याका पीछा करने लगा। बहुत देर तक उनकी यह दौड़ चलती रही। लेकिन जवान जगन्या आनन्दाके हाथ नहीं लग रहा था। अन्तमे यह देखकर कि जगन्या पहुँचके भीतर आ गया है, आनन्दाने हाथमे रखी कुल्हाड़ी फेंककर उसे मारी। भागता हुआ हिरन डांड मारकर जिस तरह गिरा दिया जाये, उसी तरह आनन्दाकी कुल्हाड़ीने जगन्याको धराशायी कर दिया। दौड़-दौड़कर थका-हारा वह जवान अजीब तरहसे चीखकर नीचे गिर पड़ा।

आनन्दाने दोनोंको एक गाड़ीमे रखा और उन्हे वांगी ले आया। खून अधिक निकल जानेके कारण जगन्याका चेहरा सफेद पड़ गया था। वह औरत भी पीली पीली-सी दिख रही थी।

आनन्दाने कहा, "यह है तुम्हारे गाँवकी औरत और यह रहा हमारे गाँवका लड़का। मैंने अपने हाथसे इसे मारा है। उसके बचे-खुचे प्राण चाहो तो अब तुम ले सकते हो।"

जगन्या होशमें न था। उसके कपड़े ख़ूनसे तरबतर हो गये थे। औरत-को डण्डोंसे पीट-पीटकर लोग घरमे ले गये और आनन्दासे बोले, "जा, ले जा उस लड़केको और अपने गाँवमें जला दे उसे।"

जगन्याको लेकर आनन्दा बनगरवाड़ी आया। पेड़ोंकी पत्तियोंका रस लगा-लगाकर ही उस अनाडीने जगन्याका घाव अच्छा कर लिया।

वांगीके लोगोंने उस विधवा औरतकी सुन्दर नाक काट डाली और उसे अपने गाँवसे भगा दिया। नाकपर पट्टी बाँधकर रोती हुई वह जगन्याके घर आयी। लेकिन रामोशियोंके मुहल्लेमे उसे रखनेके लिए कोई राज़ी न हुआ। और एक दिन वह वहाँसे चल दी अपनी पीड़ाओंको अपनेमे ही समोये हुए। उसके बाद फिर वह कभी न दिखी।

सत्रह

जून आया। मृग चल दिया। इस नक्षत्रने कभी ठीकसे पानी नहीं बरसाया। इस वर्ष भी इस नक्षत्रमे गाँवमे बारिश न हुई। हर साल कमसे-कम ज़मीन गीली करने लायक़ पानी गिर जाता था। लेकिन इस साल वह भी न बरसा। नक्षत्र बिलकुल सूखा ही निकल गया। लोग आर्द्राकी बाट जोहने लगे।

अब सब तरफ़ वीरान दिखायी देता था। सूखा खंखाड़! जंगलोंमें घूमकर भेड़ें भूखे-पेट घर लौटती थीं। गड़रियोंने आस-पासके जंगलोंके बबूल झड़ा-झड़ाकर भेड़ोंको पहले ही खिला दिये थे। फ़सलके समय सुखाकर रखे गये पत्ते और भूसा आदि भेड़ोंके सामने डालकर, गड़रिये उनका पेट भर रहे थे। राह देख रहे थे कि कब बारिश होती है और कब हरियाली आती है।

इसी समय बूढ़े पटेलको सुबह-सुबह एक बुरा सपना दिखा। कमरमें

नीमकी टहनियाँ बाँधे, बाल खुले छोड़े हुए, माथेपर कुंकुमका लेप लगाये हुए एक औरत आयी और पटेलसे बोली, "पटेल, तुम्हें ले जाने आयी हूँ। तैयार हो जाओ।"

बूढ़ेने डरकर पूछा, "कहाँ ले जाओगी ?"

औरत बोली, "भगवान्‌के घर। तैयार हो जाओ। कल चलना है।"

और पटेल चौंककर उठा। पसीनेसे तरबतर, अँधेरेमें ही बहुत देर तक वह अपने बिस्तरपर बैठा रहा।

बड़े तड़के, जब मैं जागकर उठ ही रहा था, पटेल मेरे पास आया। मेरे बिस्तरके एक कोनेपर वह आकर बैठ गया और पैर छूकर उसने मुझे प्रणाम किया।

मैं हैरान था, कुछ भी न समझ सका।

पटेल बोला, "यह आखिरी राम-राम है मास्टर ! मैं जा रहा हूँ !"

जबसे मैं गाँवमें आया था, मुझे याद नहीं आता कि मैंने पटेलको गाँव छोड़कर अन्यत्र कहीं जाते देखा हो।

मैंने पूछा, "कहाँ जा रहे हो ? कबतक लौटोगे ?"

बूढ़ा बोला, "अब जा रहा हूँ, वापस नहीं आऊँगा।"

"इसका मतलब ?"

"कल सुबह तक मैं मर जाऊँगा !"

यह मज़ाक़ नहीं था। बूढ़ा सचमुच बड़ी गम्भीरतासे कह रहा था। मैंने हँसकर मज़ाक़ किया। तब उसने अपने सपनेकी बात कह सुनायी।

मैंने कहा, "क्या तुम पागल हो गये हो पटेल ? सपने भी क्या कभी सच हुआ करते हैं ?"

पटेल बोला, "होते हैं मास्टर ! मेरे हुए हैं।"

"छिः ! तुमने व्यर्थ ही बच्चोंकी तरह यह सब अपने दिमाग़में भर लिया है। तुम-जैसे सयाने ही अगर ऐसा करने लगें तो फिर कैसे होगा ?"

बूढ़ा बार-बार अपने उत्तराधिकारीके प्रबन्धके बारेमे बातें कर रहा था। लेकिन मैं उसकी एक भी बातपर विश्वास न कर सका। अन्तमें उसने कहा, "मैं आज अपना सब कुछ अंजीको दे देनेवाला हूँ। उसे शेकूबाके हवाले किये देता हूँ। वह उसकी देखभाल करेगा, उसे सँभालेगा और किसी अच्छे वरसे उसका विवाह कर देगा। तुम भी उसकी तरफ़ खयाल रखे रहना।" इतना कहकर वह उठा और चल दिया।

दिन-भर घूमकर पटेलने यह बात गाँवमे सबसे कह दी, और सबसे बिदा ली। इस पागलपनपर भला कौन विश्वास करता? बहुतोंने उसकी हँसी उड़ायी। बूढ़ेकी बात किसीने भी अपने मनमे गम्भीरतासे न ली। शेकू दुनिया-भरका बुद्धू था। लेकिन वह भी बोला, "नाना, यह क्या हो गया है तुम्हे? अभी पाँच साल तक तुम्हे कोई डर नही। जाओ घर।"

कोई कुछ भी कहा करता, मज़ाक़ करता, हँसी उड़ाता, फिर भी इसकी कुछ भी परवाह किये बिना पटेल अपने सभी अपनोंसे मिलता हुआ उस दिन सारे गाँवमे घूम रहा था। अन्तमे शाम हुई। भेड़ें जंगलसे लौटकर घर आयीं और किसीने मुझसे आकर कहा, "चलो, पटेलको कै और दस्त हो रहे है।"

दौड़ता हुआ मै पटेलके घर पहुँचा। बूढ़ेकी हालत काफ़ी खराब हो चुकी थी। आँखें भीतर धँस गयी थीं। मुँह सूख गया था। उससे ठीकसे बोला भी नहीं जाता था। मेरे जाते ही वह बहुत ही मद्धिम स्वरमे बोला, "झूठ नहीं है, बेटा! मेरा बुलावा आ गया है।"

मैंने डाँटकर कहा, "नही, तुम्हारा कोई बुलावा नहीं आया है। कल सुबह तक तुम बिलकुल अच्छे हो जाओगे।"

घरेलू इलाज हो रहे थे। लेकिन आधी रात हो गयी, फिर भी पटेलको कोई आराम न हुआ। सारे इलाज बेकार हुए। तब सबका धीरज छूट गया। अंजी और शेकूबा रोने लगे। बूढ़ेके रिश्तेदारोंकी आँखें डब-

डबा आयीं। यह सब देखकर और रोना सुनकर पटेल बोला, "अरे, रोते क्यों हो ? मेरा क्या होनेको रह गया है ? इतने बड़े महाराज पन्त सरकार—उन्होंने भी मुझसे कहा, 'क्यों पटेल, कैसे हो ?' मेरी पीठपर हाथ रखा। मेरी अब कोई साध पूरी होनेको नही रही।"

उसकी ये बातें सुनकर मैं भी रो पडा।

सूरज निकलनेसे पहले ही पटेलने आँखें सदा-सदाके लिए मूँद लीं। वह चला गया वहाँ—जहाँसे फिर कोई कभी लौटकर नहीं आता !

एक बूढ़ा गाँवसे सदाके लिए चल दिया और गाँव सूना दिखने लगा। मुझे यूँ ही लगने लगा कि मेरा एक बड़ा मददगार जाता रहा, इस गाँवमे मेरा अब कोई नहीं रहा। शाला और व्यायामशालाके बारेमे मै उदासीन-सा हो गया। जब कभी अपने घर जाता, तो आठ-आठ दिन तक बनगरवाड़ी लौटनेकी इच्छा न होती।

अठारह

कभी न आनेवाली शेकूकी वह हाथ-भर ऊँची औरत एक बार मेरे घर आयी। दोपहरका वक्त था। खाना खाकर मैं बैठा हुआ पढ़ रहा था। आकर वह दरवाजेके पास सिमटकर खडी हो गयी। मैं सँभलकर बैठ गया। वह बोली, "क्या हो रहा है, मास्टर ?"

मैंने कहा, "कुछ नहीं। अभी ही खाना खाकर बैठा पढ़ रहा हूँ। बैठो न !"

मेरी इस बातसे उसका संकोच शायद कुछ कम हुआ होगा। वह अपने आँचलमें क़रीब सेर-भर मूँगफली रखकर लायी थी। उसने वे मेरे सामने उँड़ेल दी और बोली, "मूँगफली खाओ, मास्टर ! तुम्हें देने लायक़ मेरे पास और क्या है ?"

"लेकिन मास्टरको कुछ देना हो चाहिए, यह कोई ज़रूरी बात तो नहीं है ! बैठो न ?" मैंने कहा ।

फिर भी शेकूकी औरत नहीं बैठी । मैं ताड़ गया कि वह कुछ कहना चाहती है । बूढ़े पटेलने मरनेके बाद अंजीको शेकूके हवाले कर दिया था। उसके घर रहकर अंजीने उसपर डोरे डाले थे । तीस सालका शेकू अंजी-के लिए पागल हो उठा था । यह भनक मेरे कानोंमें पहले ही पड़ चुकी थी । लेकिन मुझे उसपर विश्वास न होता था । लगता था किसीने यूँ ही बेसिर-पैरकी उड़ा दी है । मेरे मनमें इस समय एक विचार यह भी आया कि यह औरत कहीं यही बात तो मुझसे कहने नहीं आयी है । लेकिन ऐसी बातें कोई दूसरेसे क्यों कहेगा ?

शेकूकी औरत न बैठती थी और न बोलती ही थी । इसके कारण मैं कुछ अन्यथा अनुभव कर रहा था । उससे मैं स्वयं ही कुछ पूछूँ, यह भी मुझे उचित नही लग रहा था । किन्तु अन्तमें यूँ ही मैंने कहा, "इस साल तुम्हारी फ़सल कैसी हुई है ?"

तब ज़रूर शेकूकी औरत देहलीके नज़दीक आकर उकड़ूँ बैठ गयी और हाथकी मुट्ठी गालपर रखकर बोली, "अपने घरवालेका क्या करूँ मास्टर ?"

मैंने कहा, "क्यों, क्या हो गया है ?"

सच तो यह है कि मुझे पहले ही सब कुछ मालूम हो गया था, लेकिन यह उससे स्पष्ट करना नहीं चाहता था । मैंने सोचा उसे कमसे-कम इतना ही सन्तोष रहे कि यह बात लोगोंमे अभी नहीं फैली है ।

नीचे नज़र गड़ाये हुए वह बोली, "यदि कोई सम्मानकी बात हो तो लोगोंसे कही जाती है, और यदि कोई अपनी ही बदनामीकी बात हो तो उसे अपने मनमे ही रखना अच्छा होता है। लेकिन क्या करूँ ? उन्होंने तो बिलकुल धरम ही छोड़ दिया है। ऐसी करनी क्या उन्हें शोभा देती है ?"

मैंने कहा, "क्यों, क्या कुछ झगड़ा हो गया है तुम दोनोंका ?"

"झगड़ा क्यो नहीं होगा ? दूसरा ब्याह करनेको कह रहे है।"

मैं बनावटी आश्चर्य दिखाता हुआ बोला, "कौन, शेकू ? यह एका-एक उसे क्या सूझी ?"

"एकाएक क्यों ? पटेल मर गया। अच्छा था बेचारा। पर मरते-मरते मेरी गिरस्तीमें आग लगा गया।"

यह कहते-कहते शेकूकी औरतका गला भर गया। आँखें सजल हो गयीं। उन्हे आँचलसे पोंछकर उसने गला साफ़ किया और बिलकुल दबी ज़बानमे वह कहने लगी, "दिन-रात उस छोकरीके पीछे पड़े रहते है। वह छोकरी भी ऐसे नखरे और अदा दिखाती है जैसे जवान लड़कोंको दिखाये जाते हैं। यह देखकर मै भला कैसे चुप बैठूँ ? उसकी बात छोड़ दो वह तो अभी लड़की है। अभी उसमे अक़्ल नहीं है। और फिर अक़्ल न होनेको क्या हो गया ? अब पूरी जवान जो हो गयी है। हाँ, शर्म उसमे बिलकुल नहीं है। लेकिन ये तो समझदार है। ये उसपर क्यों इतना रीझ गये ? लोगोंकी नहीं, तो मनकी तो लाज होनी चाहिए। तुम-जैसे लोग क्या कहेंगे ? उस बूढ़ेने इनसे लड़कीको सँभालनेके लिए कहा था। कहीं अच्छा-सा वर देखकर उसका ब्याह कर देनेके लिए कहा था। सो यह भलापन लेना तो छोड़, खुद ही उसके लिए पागल हुए बैठे हैं। काम-काजकी है नहीं, और उसे धोती चाहिए, चोली चाहिए। तुम्हीं बताओ मास्टर, क्या यह अच्छी बात है ?"

मैंने फिर बनावटी आश्चर्य दिखाया। बनावटी क्रोध प्रकट किया। "जब तुम्हीं कह रही हो तो सच ही होगा। वैसे शेकू फूँक-फूँककर पैर रखनेवाला आदमी है। उससे ऐसी बात कभी न होनी चाहिए थी। लेकिन जब तुम्हीं कह रही हो तो झूठ कैसे मानूँ ?"

"मैं भला क्यों झूठ बोलूँगी, मास्टर ? फिर इसमे बदनामी क्या सिर्फ़ उन्हींकी होती है। उनके साथ क्या मेरी भी नहीं होती ? गले तक न आ

जाये तबतक क्या ये बातें कोई किसीसे कहता है ?"

"छिः ! यह तो शेकूने बड़ा गधापन कर डाला। उसकी इतने दिनकी सज्जनतापर पानी फिर गया।"

यह देखकर कि मेरी इस बातसे शेकूकी बदनामी हो रही है, उस औरतने जल्दी-जल्दी स्पष्टीकरण किया, "नहीं, वैसे उन्हें उस लड़कीको कुछ बिगाड़ना नहीं है ? वे उससे विवाह करना चाहते हैं।"

"लेकिन यह कोई विवाह करनेका तरीक़ा है ? और आज ही उसे दूसरा विवाह करनेकी ऐसी कौन-सी ज़रूरत पड़ गयी ?"

"मुझे सन्तान नहीं होती न ? सन्तानके लिए कर रहे हैं।"

इसपर ज़रूर मैं निरुत्तर हो गया। उसकी झलक मेरे चेहरेपर पड़ गयी। और जो मैं कहना चाहता था वह शेकूकी चतुर औरतने ही कह दिया, "हमें कोई सन्तान नहीं, यह सच है। लेकिन हमारे पास कौन ऐसी बड़ी जायदाद धरी है जो सन्तान न होनेके कारण व्यर्थ चली जायेगी ? और फिर अभी कौन उम्र बीत गयी है। अगर भगवान्‌की कृपा हुई तो सन्तान भी हो जायेगी। क्यों मास्टर, है न ?"

मैंने कहा, "तो फिर उसे किसी दूसरी लड़कीसे शादी कर लेनी चाहिए"

"क्यों कर लेनी चाहिए ? दोके पेट भरनेकी तो मुश्किल पड़ रही है। हमारी कैसी चल रही है सो तुम तो देख ही रहे हो। और जो कोई नयी आयेगी उसकी भी कोख खुली ही रहेगी, यह कौन कह सकता है ? यदि भगवान्‌के मनमें हो तो सूखे पेड़में भी फल लग सकते हैं।"

मैं चुपचाप सुने जा रहा था। कभी-कभी बोल भी देता था। माथेपर कुंकुमका एक बड़ा बुंदका लगायी हुई यह रूखी औरत बोल रही थी ! खेतमें पतिके साथ कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर काम करनेवाली, बैलके साथ जुतकर खेतमें हल चलानेवाली यह औरत पतिके इस बरतावके कारण बड़ी उलझनमें पड़ गयी थी। अंजीके बाल पकड़कर उसे घरसे निकाल देना क्या उसके लिए सम्भव न था ? लेकिन ऐसा कोई काम न कर यह औरत

एक मास्टरके सामने बैठी हुई अपना दुखड़ा कह रही थी।

उसकी आँखोंमे आँसू आ रहे थे। नथुने थरथरा रहे थे। होंठ काँप रहे थे। मेरे मनमे जो विचार आये सम्भव है वही उसके मनमें भी आये होगे। इसमे अंजीका दोष नही। वह उम्रमे आ गयी है। भले-बुरेका विचार उसके मनमे नहीं आ सकता। शेकूका उसकी ओर आकर्षित हो जाना स्वाभाविक था। यह सारा मामला इतना नाजुक था कि यहाँ कलाई-की ताक़त व्यर्थ थी। और यह औरत इस बातको पूरी तरह समझ गयी होगी। वरना इस नाजुक विषयपर वह किसी परायेके पास आकर इस तरहकी बातें हरगिज़ न करती।

मै बार-बार कहे जा रहा था, "शेकूका यह बरताव ठीक नहीं है। उसे समझदारीसे काम लेना चाहिए।"

अन्तमे शेकूकी औरत बोली, "मास्टर, तुम्हारे पास आयी हूँ इसलिए कि गाँवमे तुम्ही पढ़े-लिखे और समझदार हो। हमारे राजा तक तुम्हारी पहुँच है। तुम उन्हे जरा डाँट दो। गाँवमे वे अगर किसीकी सुनेंगे, तो तुम्हारी ही।"

"लेकिन बहन, यह घरेलू बात है। मैने उससे कुछ कहा और उलटा उसने ही मुझसे पूछा कि तुम्हे क्या पडी है हमारे बीचमे पड़नेकी, तुम पूछनेवाले कौन होते हो, तो मेरा क्या रह जायेगा?"

इसपर शेकूकी औरत हाथ नचाती हुई बोली, "उँह उनकी क्या हिम्मत है ऐसा कुछ पूछनेकी? हाथमे जहाँ हथकड़ी पड़ी कि एकदम···· इतना समझनेकी अक़्ल है उनमे!"

हम इस तरह बातें कर रहे थे तभी शालाकी घण्टी बजी। आयबू, सता आदि लड़के आ गये और शेकूकी घरवाली उठी। जाते-जाते वह बोली, "ठीक है जाती हूँ।"

और वह चली गयी। मूँगफलियोंका ढेर अभीतक यूँ ही पड़ा था। उसकी ओर देखकर आयबूने पूछा, "ये फलियाँ क्या नानी लायी है

मास्टर ?"

"हाँ, क्यों ?"

"नहीं, कोई खास बात नहीं। यूँ ही पूछा। कभी नहीं लायी, फिर आज ही कैसे लायी ?"

आयबूने सिर्फ़ इतना ही कहा। लेकिन वह क्या कहना चाहता था, मैं समझ गया। उसने फलियाँ भरकर रख दीं। दरवाज़ा बन्द किया। और जब मैं शाला जाने लगा तो मैंने यह भी सोचा कि आयबू इस विषयमे कुछ न जानता होगा। उसने सहज ही यह पूछ लिया होगा और मेरे मनने उसके अर्थ लगा लिये होंगे।

इसके बाद रास्तेमे आते-जाते मेरी शेकूसे दो-चार बार मुलाक़ात भी हुई। लेकिन नित्यकी भाँति वह मेरी तरफ़ देखकर न हँसा और न बातें ही की। दूरसे ही मुझे देखता, तो गरदन झुकाये मुझसे कन्नी काटकर जल्दी-जल्दी चल देता। उसके इस अजीब बरतावके कारण, निश्चय करके भी अंजीके बारेमे उससे कुछ पूछनेकी मुझे हिम्मत न पड़ी। अंजी और शेकूके विषयमे गाँवमे होनेवाली कानाफूसी अधिक बढ गयी थी। लोग कहा करते, "रोज़ दोनों साथ-साथ भेड़ें चराने जाते है। रास्तेमे चलते समय भी अंजी शेकूसे बिलकुल सटकर चलती है। आज उन दोनोंको दूर एक नालेके किनारे निर्गुण्डीके कुंजमे देखा। कल मावली माताके मन्दिरमे जाकर उन दोनोंने क़समे खायीं। अंजीने देवीकी सौगन्ध खाकर शपथ ली कि वह शेकूको कभी धोखा न देगी। परसों शेकूने भेड़ें बेचकर अंजीके लिए तोड़े बनवानेको दिये है।" इस प्रकारकी अनेक बातें सुनायी देतीं। शेकूकी यह घटनाएँ गाँवके जवानोंके लिए मज़ाक़का विषय बन गयी थी। सयानों और समझदारोंके लिए वह एक तिरस्कारकी बात हो गयी थी।

फिर एक दिन शेकू और उसकी घरवालीमे खूब झगड़ा हुआ। क्या कारण था, इसका पता न चला। क्योंकि वे दोनों आधी रातको अपने ही घरमें लड़े थे। और दूसरे दिन सुबहसे शेकूकी औरत गाँवमे ही अलग रहने

लगी। घुला गड़रियाके नज़दीकवाला कोठा खाली था। उसीमें अपना चक्की-चूल्हा रखकर वह रहने लगी। अपनी खेतीकी ओर वह कोई ध्यान नहीं देती थी। दूसरेके खेतोमे मजदूरी करके वह अपना पेट भरने लगी। अब वह कभी शेकूका नाम तक न लेती थी।

अंजी और शेकू एक साथ रहने लगे। शेकू अजीसे विवाह करना चाहता था, अतएव वह उस प्रबन्धमे लग गया। उसने कुछ भेड़ें बेचकर नक़द रक़म खड़ी की, अनाज इकट्ठा किया।

शेकूका खेत गाँवसे कुछ दूर ही था। उसके खेतके उस पारवाला खेत येडसी नामक गाँवके एक दूसरे खेतसे सटा हुआ था। दोनों खेत एक संयुक्त मेड़से अलग होते थे। येडसी गाँवके उस खेतमे खादके लिए भेड़ें बैठने लगीं। उस खेतके मालिकने किसी दूसरे गाँवसे भेड़ें बुलायी थी। उनके साथ दो-तीन जवान गडरिये थे। वे रात-भर गीत गाते और बाँस लिये खेतमे बैठे रहा करते। उनके सुरोले और तालपर गाये जानेवाले गीत अंजी अपने खेतमे बैठी सुना करती।

एक बार चिलचिलाती दोपहरको उनमे-का एक गड़रिया दोनों खेतोंकी सम्मिलित मेडपर लगे बबूलके पेड़पर चढ़ गया और उसकी टहनियाँ काट-काटकर नीचे गिराने लगा। उसकी भेड़ें उस पेड़के तले आकर इकट्ठा हो गयी और काँटे बचाकर बबूलकी पत्तियाँ खाने लगीं, कुछ हरी और सफ़ेद-सी बबूलकी फलियाँ चुनने लगीं।

तब जल्दी-जल्दी अंजो आगे बढ़ी और नीचे खड़ी होकर बबूलपर चढ़े उस जवान गड़रियेको देखकर बोली, "कौन है रे जो बबूल काट रहा है ?"

ऊपर बैठा हुआ गड़रिया नीचे देखकर बोला, "क्यो री, तेरे मनमे क्यों दुःख हो रहा है ?"

एकदम उसके 'क्यों री' कहते ही अंजो सिहर उठी। तभी बबूलके पीले फूल उसपर टप-टप बरस पड़े और वह गड़रिया पेड़से नीचे कूद पड़ा। साँवला और सुन्दर नाकवाला वह युवक अंजीके सामने अभि-

मानसे खड़ा हो गया। उसकी आँखोंकी ओर ताकनेकी अंजीको हिम्मत न पड़ी। उसका हृदय धड़कने लगा। आस-पास सन्नाटा था। बबूलकी छायामे भेड़ें पत्तियाँ खा रही थी और मन-ही-मन मुसकराता हुआ वह तगड़ा युवक निर्भीकतासे अंजीके सामने खडा था। फिर वह बोला, "दूसरे गाँवके आदमियोसे इस तरह डपटकर नहीं बोला जाता। यह क्या तेरा खेत है ?"

नीचे निगाह किये हुए ही अंजीने ठसकसे कहा, "यदि मेरा न होता तो क्या मैं कुछ कहती ?"

गडरिया बोला, "बबूलपर बहार देखी तो उसे तोड़नेके लिए तबीयत मचल उठी !" और उसने ढिठाईसे आगे बढ़कर एक दम अंजीका हाथ ही पकड़ लिया। अजी न चिल्लायी और न चीखी। उसने अपनेको छुड़ानेकी थोड़ी कोशिश की। लेकिन गड़रियेकी मज़बूत पकड़से उसका हाथ न छूटा।

फिर उसकी आँखोंमे आँखे डालती हुई अंजी गिड़गिड़ाकर बोली, "मेरी चूड़ी फूट गयी। छोड़ दे हाथ।"

"नहीं छोड़ता। क्या करेगी ?"

"अच्छा, बड़ी शान दिखा रहा है ? छोड़ दे हाथ।"

फिर भी गड़रिया मुसकराता ही रहा।

चार-पाँच दिन भेड़ोंको उस खेतमे बिठाकर और उसके बदलेमे खेतके मालिकसे ज्वार लेकर वह जवान गड़रिया भेड़ोंको हाँकता हुआ अपने गाँव चला गया। उस समय अंजीको भी वह अपने साथ ले गया। वह भी चली गयी। शेकूसे उसने न कुछ कहा और न कुछ पूछा। क़सम तोड़कर अंजीने शेकूको छोड़कर दूसरा पति कर लिया।

इसके दस-पन्द्रह दिन बाद थोड़ी-सी गाजरें लेकर शेकूकी औरत मेरे घर आयी। उसकी कली खिली दिख रही थी। गाजरोंको मेरे आगे ज़मीन-पर उँड़ेलती हुई वह बोली, "मास्टर, मेरा बावला लौटकर आ गया अपने घर !"

उन्नीस

फिर मावली माताका मेला लगा। बनगरवाड़ीमे हर साल यह मेला हुआ करता था। गाँवसे एक मीलकी दूरीपर एक टेकड़ी थी। उसपर एक मामूली-सी कुटिया बनी हुई थी जैसी कि बहुधा जंगलोंमे बना दिया करते है। और उस कुटियामे मावली देवी बैठी हुई थी। उस कुटियाके आस-पास चट्टानें है। फ़ुट-दो-फ़ुट ऊँचाईकी तरोतोंकी झाड़ियाँ हैं। कहीं-कहीं करीलके सूखे हुए कुंज है। इसके सिवा वहाँ और कुछ नहीं है। गड़रियोंकी मिन्नतें पूरी करनेवाली यह देवी थी। इतने दिनोंसे वह कुटियामे रह रही थी। उसके लिए गाँववालोंने एक छोटा-सा मन्दिर क्यों नहीं बनवा दिया? मन्दिर बनवा देनेका प्रयत्न हुआ था। पर देवीने पुजारीके सपनेमे आकर कहा, "मेरे लिए मन्दिर न बनाओ। मैं जहाँ हूँ, वहीं मजेमें हूँ।"

अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनकर सारा गाँव उस निर्जन स्थानमे इकट्ठा हुआ। आस-पासके गाँवोंसे भी कुछ भक्त लोग आये। क़रीब सौ-डेढ़ सौ लोग इकट्ठा हुए। पुजारीने पूजा की। लोगोंको गुलाल लगाया।

गाँवसे टक्कर लेनेवाला बाला बनगर भी मेलेमें आया, अपने स्त्री और बच्चोंको साथ लेकर पैदल ही। उसे देखते ही गाँवके लोगोंमे कानाफूसी होने लगी। लोग चिल्लाने लगे, उसे रोको, उसे देवीके पास न जाने दो। लेकिन किसीकी भी परवाह न कर बाला देवीके नज़दीक पहुँच गया। उसने देवीके चरण छुए और प्रसादका गुलाल लगानेके लिए उसने पुजारीके सामने अपना मस्तक बढ़ाया। तब पुजारी बोला, "तू गाँवको परवाह नहीं करता। जा, मैं तुझे गुलाल नहीं लगाता।"

इतना बलिष्ठ बाला, लेकिन पुजारीके मुँहसे यह सुनते ही एकदम ठण्डा पड़कर चुप रहा और लोगोंकी ओर मुँह फेरकर खड़ा हो गया। पिछले अनेक महीनोंमे उसने बड़े कष्ट उठाये थे। गाँवका एक भी आदमी उससे बात न करता था। गाँववालोंने बाला बनगरको किसी कोढ़ीको

तरह गाँवसे दूर रखा था। आज उसकी पराकाष्ठा हो गयी। देवीका प्रसाद भी उसे न मिला। जिसने लोगोंके विरोधकी तनिक भी परवाह न की, वह बाला इस उपेक्षासे पस्त हो गया। उसने अपनी धोतीका पल्ला जल्दी-जल्दी खींचा और उसे गाँववालोंके सामने फैला दिया। फिर ज़ोरसे चिल्लाकर वह बोला, "अपने गाँवके सामने मैं दामन फैलाता हूँ। मेरी ग़लती माफ़ कर दो। मुझे अपनेमें शामिल कर लो। तुम मेरा पेड़ ले लो, घर ले लो, मेरे प्राण भी ले लो। पर मुझे इस तरह अपनेसे दूर न रखो।" और उसका तेज़ स्वर काँपने लगा। आँखोंसे आँसुओंकी धाराएँ बहने लगीं। क्षण-भरके लिए लोगोंका इतना बड़ा जमाव बिलकुल शान्त रहा। और फिर रामाका वह बूढ़ा काकूबा गाँववालोंसे बोला, "अरे, बच्चा यदि जाँघपर पेशाब कर दे तो क्या हमें अपनी जाँघ काट डालना चाहिए? लगाओ उसे गुलाल।"

लोगोंमें कानाफूसी होने लगी। सब लोगोंने कहा, "लगा दो गुलाल।" फिर पुजारी उठा और सारे गाँवके सामने अपना दामन फैलाकर खड़े बालाके मस्तकमें गुलाल मलकर बोला, "मावली माताकी जय हो!"

फिर लोगोंने मावली माताकी जयका नारा बुलन्द किया, मुट्ठी भर-भरके गुलाल फेंका। सकरकन्द और गाजर आदि फल लुटाये। उस प्रसाद-को खोजनेके लिए झुण्डके-झुण्ड नीचे झुके, धक्कमधक्का हुई, कोलाहल मचा। डफवालेने डफ बजाया, सिंगीवालेने सिंगी फूँकी और हर सालकी तरह घुला बनगरकी देहमें देवी आयी। 'हाँ-हूँ' करके वह घूमने लगा। अजीब-सी अँगड़ाइयाँ लेने लगा। डफवाले जैसे-जैसे जल्दी-जल्दी डफ बजाते घुला भी अधिक फुर्तीसे नाचता। उसने अपने बदनका कम्बल दूर फेंक दिया। सिरका साफा भी उतारकर अलग कर दिया। नंगे बदन घुला खड़ा हो गया और घूमने लगा। पुजारीने उसके मस्तकपर गुलाल लगाया। इतना अधिक गुलाल उसके लग गया था कि वह नाक तक आ गया और उस स्वरूपमें वह घुला गड़रिया नाचने लगा।

"देवी आ गयी, देवी आ गयी" कहकर गड़रियोंने उसे घेर लिया।

फिर शेकूने पूछा, "माँ, इस साल अभी तक पानी नहीं बरसा। हमसे क्या कोई भूल हो गयी है!"

देवी घूमती हुई बोली, "पाप बहुत बढ गये। बेईमानीका बाज़ार गरम हो गया। इसलिए वर्षा चली गयी।"

"लेकिन अगर वर्षा न हुई तो भेड़ें क्या खायेंगी और हम कैसे जियेंगे?"

आँखें बन्द किये हुए ही देवी बोली, "मेरा मेला अच्छी तरहसे भराओ, मुझे ठीकसे भोग और नारियल चढाओ.....सब मंगल होगा।"

"क्या पानी बरसेगा?"

"हाँ बरसेगा।"

"पर माँ, कब बरसेगा? मृगा तो निकल गया है। सारी दुनियामें पानी बरसा और हमारे गाँवपर एक काला बादल भी नहीं उठा!"

"अरे, यह सब तुम्हें सीख देनेके लिए हुआ है। पर अब पानी बरसेगा आर्द्रामें बरसेगा।"

शेकूने अपने मुँहपर दो चाँटे मार लिये। "माँ! हमारी ग़लतियाँ माफ़ कर दो। हम तुम्हारा मेला ठीकसे भरायेंगे। भोग और नारियल भी ठीकसे चढ़ायेंगे। सब कुछ हमें मजूर है।"

इतना कहकर उसने घुलाके चरणोंपर अपना माथा टिका दया। और फिर शरीरकी देवी अन्तर्धान हो गयी। घुला चुप पड़ा रहा।

फिर लोगोंने मेलेकी रस्में अदा कीं। हर सालकी तरह देवीके आगे बकरे काटे गये। आयबूने छुरी चलायी। शेकूने देवीको खून चढ़ाया। देवीके आगे प्रसाद रखा और चीर-फाड़ हुई। आस-पास लोग आकर इकट्ठे हो गये। लड़कों-बच्चोंने भीड़ लगा दी। तब आयबूने डाँटकर सबसे कहा, 'अब सब लोग घर जाओ। 'पताका' लगाकर सब खानेको आओ।"

'पताका' लगाकर खानेको आनेका मतलब यह था कि अपने-अपने घरसे रोटियाँ लेकर आओ। सिर्फ़ सालन यहाँ मिलेगा। बनगरवाड़ी भेड़ें

देगी। लेकिन ज्वार कहाँसे आयेगी ?

धीरे-धीरे लोग चले गये। कुछ चुने हुए लोग बच रहे। उन्होंने ज़मीन खोदकर चूल्हे बनाये। उन्हे जलाया। उनपर बड़े-बड़े हण्डे रखे। दो-तीन बकरों-का माँस उन हण्डोंमे पकने लगा। उसको महकसे सारा वातावरण भर गया।

चाँदनी निकली। मशालें जलीं। अपनी-अपनी थालियाँ और रोटियाँ लेकर गड़रिये आये। पंगत बैठी। टेका लगाकर रखी थालियोंमे गरम और चरपरा सालन परोसा गया। माताकी जय-ध्वनि वातावरणमे गूँज उठी। लोग रोटी और सालनपर टूट पड़े। उस चरपरे सालनसे उनके मुँह जले और नाकमे पानी आ गया।

बीस

मावली माताने गाँवको अभय वरदान दे दिया था। लेकिन नक्षत्रके बाद नक्षत्र निकलते चले गये और बनगरवाड़ीमे एक बूँद भी न गिरा। तपती ज़मीनें ठण्डी नहीं हुईं। पेड़-पौधे सूखकर लकड़ी हो गये। भूखी भेड़ोंने जंगलका एक-एक तिनका चर डाला। गरम धूल सब-कहीं फैल गयी। बगूले चलने लगे। कुएँका पानी सूख गया। गाँवके झरनेका पानी कम हो गया। गाँवकी आवश्यकताभर पानी उसमे न बचा। कीचड़-भरा गँदला पानी करोटोंसे खुरच-खुरचकर निकालनेपर भी एक घड़ा नहीं भरता था। सुबह और दुपहर पानीके लिए झरनेपर लोगोंकी भीड़ जमने लगी। शाम-को चिड़ियोंको पीनेके लिए भी उसमे पानी न बचा करता। रात भर रिस-रिसकर सुबह उसमे थोड़ा पानी आ जाता था। स्त्रियाँ बड़े तड़के उठकर पानी भरनेके लिए झरनेपर जाने लगीं। कौवोंके बोलनेसे पहले ही मनुष्य पानीके लिए लड़ने लगते थे।

जानवर दुबले हो गये। भूखे रहनेके कारण उनके पेट सिमटे हुए

दिखने लगे। उनके बदनपर रीछ-जैसे बाल बढ गये और वे मैले दिखने लगे। ऊन काट डालनेके कारण पहले ही मुँड़ी हुई भेड़ें बिलकुल ही दुबली हो गयीं। उनकी चरबी बिलकुल सूख गयी। लोग छतोंसे पुरानी सडी-गली घास खीचकर जानवरोंके सामने डालने लगे। पानीके लिए भेड़ोंको काफ़ी दूर ले जाना पड़ता था। गाँवमे चिड़ियाँ, कौवे और हरियल आदि पक्षियोंका कहीं नामोनिशान भी नही दिखायी पड़ता था। भूखसे व्याकुल जंगलके चूहे गाँवमे आ गये और उन्होंने बड़ा ऊधम मचाना शुरू कर दिया। उन्होंने गड़रियोके कम्बल कुतर डाले, आटेको गन्ध आनेके कारण सूपोमे छेद कर दिये और टोकनियाँ काट डाली।

लोगोके चेहरोंकी रौनक खो-सी गयी। उनकी आँखोसे भूख झाँकने लगी। घरोंमे रखा अनाज भी समाप्त हो गया। तब अण्टीमे रुपया-दो रुपया खोंसकर लोग बाज़ार जाने लगे और बड़ी मुश्किलसे महँगे दामोंपर प्राप्त करके अनाज लाने लगे। जिनके हाथ खाली थे उनका दो-दो दिन उपवास होने लगा। रामोशियोंके बहुत बुरे दिन आये। दो-दो दिन उनके घर चूल्हा नही जलता था। व्यायामशालामे आनेवाले लडके अन्न प्राप्त करनेके लिए आस-पासके गाँवोंमे भटकने लगे। शालामे आनेवाले लड़के अन्नकी तलाशमे मीलों चक्कर काटने लगे। व्यायामशाला उजड़ गयी। शाला वीरान हो गयी। अन्न प्राप्त करनेके लिए सभी कड़ा परिश्रम करने लगे। समूचा ज़िला ही अकालके चक्करमे फँस गया। 'माण-देश' की तक़दीरमे लिखा अकाल पड़ा।

लोग हैरान हो गये। रामा बनगरका चेहरा काला पड गया। शालामे रोज़ लगनेवाला उसका चक्कर अब कम हो गया। दो-दो चार-चार दिन वह न आता। जब आता भी तो अकालकी बातोके सिवा दूसरी कोईबात न करता।

"इसकी एक कथा है, मास्टर ! एक बार राम और लछमन घूमते-घूमते हमारे इस माणदेशमे आये। जब रामघाट पहुँचे, तो दुपहर हो गयी। इसलिए छाँह देखकर दोनों भाई भोजन करने बैठे। उन्होंने भोजन

शुरू किया ही था तभी पानीका एक बड़े ज़ोरका छींटा आ गया। उनके भोजनमे पानी पड़ने लगा। इसपर रामको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने एक बाण मारकर, पानीको बालेघाटकी तरफ खदेड दिया। उस वक़्तसे ग़ायब हुआ हमारी पट्टीका पानी आज तक नहीं आया। तुम्हीं देख लो, रामघाटमे पानी गिरता है और अपने गाँवपरसे काले बादल सिर्फ निकलते है। निकलते हैं—जाते है हमारे गाँवपरसे लेकिन बरसते है बालेघाटमे !"

यह बात सच थी। बीचकी पट्टी वर्षाकी बूँदोसे अछूती ही रह जाया करती थी।

खानेके लाले पड़नेके कारण भेडें दुबली हो गयी और कमज़ोर हुए उनके शरीरोंको नाना प्रकारके रोग लग गये। माताकी बीमारी आयी और भेड़ोंके मुँहपर माताके बड़े-बड़े दाने उभर पड़े। ज्वर आ जानेसे उनका अपनी जगहसे उठना असम्भव हो गया। करुण आँखोसे इधर-उधर देखती वे यूँ ही बैठी रहने लगी। 'आडा' हो जानेसे कुछ भेडोके दिमाग़ भी बिगड गये। पागल हुई ये भेडें अपने आस-पास ही घूमने लगीं और इस तरह घूमते-घूमते ज़मीनपर गिरने लगीं, मरने लगी। किन्हीके पैर लँगड़े हो गये। वे अपने पैरोंको घसीटती हुई चलने लगी। लोग कहते कि भेड़ोंपर कोई अशुभ पक्षी बैठ गया है जिसके पंख लगनेसे वे घायल हो गयी है और कमर टूट जानेसे उनसे चलते नही बन रहा है। कुछ भेड़ोंको नाक बढनेकी बीमारी हो गयी। उनकी नाक बहने लगी। उनकी नाकपर कौवे चोंचें मारने लगे। तब गड़रियोंने गुलेलसे कौवे मारे और मृत कौवोंको ऊँचाईपर टाँग दिया। किसी भेड़को लार टपकनेका रोग हो गया। उनके पैर सड़ने लगे। वे किसी भी चीज़को मुँह न लगाती।

इन सब रोगोंके कारण अधिक भेड़ें न मरीं, लेकिन जब उनके बाड़ेमे संक्रामक रोग आया तो उससे वे धड़ाधड़ मरने लगीं।

सबसे पहले यह रोग बिरा गड़रियेके बाड़ेमे आया। एकाएक बैठे-बैठे ही भेड़ोंको पतले दस्त होने लगे। सारे बाड़ेमें कीचड़ मच गया। भेड़ें इस

कीचड़में सन गयीं। उनपर मक्खियाँ भिनभिनाने लगीं और वे धड़ाधड़ मरने लगीं। रोज़ सुबह दस-पाँच मरी हुई भेड़ें मिलतीं। बिराका बेटा सता उन लाशोंको घसीटकर गाँवके बाहर ले जाकर फेंकने लगा। चमड़ेका भाव एकदम उतर गया। दूसरे गाँवके लोग आकर एक भेड़के चमड़ेको सिर्फ़ चार-छह आनेमें खरीदकर ले जाया करते। पहले-पहल तो कुछ नीच जातिके लोग आकर मरी हुई भेड़ोंको उठाकर ले जाया करते थे। लेकिन बादमें उन्हें भी हिचक आ गयी। चमड़ा निकली हुई भेड़की लाशें जंगलमें ज्योंकी-त्यों पड़ी रहने लगी। न जाने कहाँसे गिद्ध आकर इकट्ठा होने लगे। गाँवके कुत्ते पहले-पहल तो उन पक्षियोंपर दौड़े। लेकिन थोड़ी देर बाद गिद्ध और कुत्ते दोनों एक ही जगह बैठकर मांस खाने लगे। गाँवके नज़दीक एक बरगदका पेड़ था। उसपर गिद्धोंने अपना डेरा डाल दिया। भारी भरकम देहवाले ये पक्षी दिन-भर मरी हुई भेड़ोंका मांस खाते। साँझ होते ही उस बरगदकी टहनियोंपर बैठ जाते और अपनी बीटसे उन्हें बदरंग करते थे।

सात-आठ दिनके भीतर बिरा गड़रियेका दो सौ भेड़ोंका दल पूरी तौरसे नष्ट हो गया। बिराने अपने भाग्यको कोसा। देवीकी मनौती मनायी। वह बेचैन हो उठा। अपनी प्यारी भेड़ोंको मरते देखकर सता भी रोया, चीखा। लेकिन जो होनी थी वह होकर ही रही। बिरा गड़रियाकी हिम्मत पस्त हो गयी। उसकी सारी भेड़ें मर गयीं।

लोगोंके उपवास होने लगे। जहाँतक सम्भव था, उन्होंने भूसा आदि खरीदकर अपने जानवरोंको खिलाया। खुद अधपेट रहकर अपने जानवरोंके प्राणोंकी रक्षा की। लेकिन कुछ दिनोंके बाद इस तरह भी गुज़र होना कठिन हो गया। भूखसे व्याकुल और अंग समेटकर खूँटोंके पास बैठे जानवरोंकी करुण आँखें उनसे देखी नहीं जाती थीं।

रामोशियोंने चोरीसे शराब बनानेका धन्धा, जो पहलेसे ही चल रहा था, फिरसे शुरू किया। पर शराबके लिए ग्राहक ही नहीं मिलते थे। वांगीकी औरत भगा लानेवाला वह जवान जगन्या रामोशी भूखके कारण

शराब पीने लगा और उसके अंगकी सारी चरबी सूख गयी। अन्तमें अकेला ही तीस-पैंतीस मील पैदल चलकर, वह महुद नामक गाँव गया। उस जैसे बहुत-से भूखे लोग कामकी तलाशमे वहाँ गये थे। गाँवके किसानोंने उन्हे अपने खेतोंकी निंदाई करनेका काम दिया था, यह सोचकर कि ये दूसरे गाँवके लोग जाने कब काम छोड़कर भाग जायें। गाँववालोंने तीन दिनके बाद काम समाप्त होते ही मज़दूरी देनेका वादा किया था और लोग निंदाई करने लगे। पेटको धोतीसे बाँधकर जगन्या रामोशीने तीन दिन निंदाई की। भूखसे छटपटाता वह रामोशी किसी तरह तीन दिन तक खुरपी चलाता रहा और तीसरे दिन हरियालीसे भरी हुई छोटी नहरमें वह एका-एक गिर पड़ा और फिर कभी उठा ही नहीं!

भूखके कारण बूढ़े हुए बैलको खींचते-खींचते गाँवके बाहर ले जाता हुआ शेकू मुझे मिला।

मैंने पूछा, "शेकूबा, किधर?"

शेकू खड़ा हो गया और बोला, "अब ये दिन नहीं कटते, मास्टर! बाज़ार जाकर बैल बेचे देता हूँ। जहाँ जायेगा, वहाँ कम-से-कम पेट-भर चारा तो खायेगा!"

वह चल दिया और शामको थका-माँदा लौटकर आया तो बैल उसके साथ ही था। बाट जोहनेवाली उसकी औरतने पूछा, "क्यों, नहीं बिका?"

तब खिन्नतासे गरदन हिलाकर शेकू बोला, "कोई ग्राहक ही नहीं मिला। एक कसाई सात रुपयेमें माँग रहा था। उसकी छुरीसे मरनेके बजाय यह अपनी ही डयोढ़ीपर मरे तो क्या बुरा है?"

लोग भेड़ें बेचकर उनके बदलेमे अनाज लानेके लिए दूर-दूरके बाज़ारों-के चक्कर लगाने लगे। चार-चार भेड़ें देकर उनके बदलेमे दो-चार सेर ज्वार लाने लगे। उस ज्वारकी रोटियाँ उनके गले नहीं उतरती थीं। जो पहले-पहले गये थे उनकी भेड़ें बिक जाती थीं। लेकिन जो बादमे गये उन्हें हाथ हिलाते ही लौटना पड़ा। किसी भी बाज़ारमे भेड़ोंके लिए ग्राहक ही

न मिलते थे। खरीदनेवाला उन्हें खरीदकर आखिर खिलाता भी क्या ?

एक दिन आनन्दा आया। वह सूखकर काँटा-सरीखा हो गया था। वह बोला, "जा रहा हूँ जीनेके लिए, मास्टर ?"

मास्टर क्या कहता ? "कहाँ जा रहा है ?"

"जाता हूँ जहाँ पैर ले जाये। जहाँ फसलें होगी, वहाँ मज़दूरी करूँगा-जियूँगा। अगर बचा तो वापस आऊँगा !"

थोडी देर आनन्दा चुप रहा और फिर धीरे-से बोला, "मास्टर, बाल-ट्याको मैंने और आयबूने मिलकर मारा था। तुम्हे वह बहुत तग करने लगा था, इसीलिए पीट दिया था उसे।" इस बातको स्वीकार करके आनन्दा चल दिया।

रामोशियोंके मुहल्लेके सब लोग अपनी-अपनी झोंपड़ियोके दरवाज़े बन्द कर गाँवके बाहर चल दिये। वे करीब पन्द्रह-बीस लोग पीठपर सामान लादे बार-बार पीछे देखते हुए, जीवित रहनेके लिए गाँवके बाहर निकल पड़े। उनकी बकरियाँ उनके पीछे-पीछे चल रही थी। बच्चे कन्धों-पर बैठे हुए थे। औरतें बूढे आदि सब उनके साथ थे। किसी बहेलियाके अटम्बरकी तरह ये रामोशी पैर घसीटते धूलसे भरी सड़क तय करते हुए, अन्नकी तलाशमे गाँव छोड़कर चल दिये। गाँवका रामोशी मुहल्ला खाली हो गया।

फिर धीरे-धीरे भेड़ोंके झुण्ड आगे लेकर गाँवके गड़रिये भी चल दिये। उनके शिकारी कुत्ते भी उनके साथ थे। जिनके प्राणोंपर गड़रियोका जीवन निर्भर था, वे भेड़ें भूखसे मरने लगीं, तब दिलोंको मज़बूत करके जवान गड़रियोंने गाँव छोड़ दिया। उनके साथ घरके सब लोग भी चले गये। अकालग्रस्त प्रदेशको पार करके दूसरे प्रदेशमे जाना, भले ही वह स्थान कितनी ही दूर क्यों न हो,कहीं भी क्यों न हो, यही उनका लक्ष्य था। गड़रिये वहाँ पहुँचनेवाले थे। जितना सम्भव था उतना सामान पीठपर लादे गड़रिये गाँवसे बाहर निकल पड़े। शोर मचाती भेड़ोंको हाँकते हुए,

अपने थके हुए बच्चोंको उठाकर सीनेसे लगाये हुए उनका सफ़र शुरू हुआ।

रामा बनगर जानेसे पहले मुझसे गले मिला और बोला, "घुलिया-मोर्चापुरकी तरफ़ जा रहा हूँ। वहाँ मेरे कुछ रिश्तेदार है। बूढ़ा चलनेके लिए तैयार नही है। उसे सँभालना !"

बूढ़ा काकुबा गडरिया नही गया। वह गाँवमे ही रहा। लड़केने उसे खूब समझाया-मनाया, लेकिन न गया। वह बोला, "मै किसलिए जाऊँ ? मेरा अब क्या होनेको बचा है ? अब मेरी वह उम्र नही कि जिन्दा रहनेके लिए कडा परिश्रम करूँ। तुम जाओ। मेरी चिता तो यहीं जलेगी !"

फिर रामाने उसके लिए घरमे अनाजका संग्रह किया। बूढ़ेको पकाकर खिलानेके लिए अपनी घरवालीको घर छोड़ दिया और जब भेड़ें लेकर वह जाने लगा तो बूढा बोला, "क्या सभी भेड़ें लिये जा रहा है ? फिर मैं अकेला यहाँ क्या करूँगा ? दो भेड़ें रख जा मेरे पास। अपनी रोटीमे-से कुछ टुकड़े उन्हे भी खिलाकर उनकी परवरिश करूँगा। यदि गुजर न होगी, तो हम सभी मर जायेंगे !"

बूढेके पास दो भेड़ें छोड़कर, रामा और उसका जवान लड़का दोनों चल दिये। गाँवके घरोमे कही कोई एकाध रह गया और कहीं सारा घर चला गया। जल्दी-जल्दी सब चल दिये। जाते समय किसीने दुःख प्रकट नहीं किया, कोई रोया नही।

जो किसान थे उनके पास कुछ अनाज था। उसके भरोसे वे एक महीने तक और हिम्मत बाँधकर बैठे रहे और फिर वे भी चल दिये। बाला बनगर गया। बैलको साथ लिये शेकू और उसकी औरत गयी। घुला गड़रिया गया। गाँवके किसान भी चले गये। उनके घर बन्द हो गये। दरवाज़ोंपर ताले पड़ गये। बाला बनगरकी पीठपर बैठकर बालट्या भी गया। जाते-जाते शालाके नज़दीक आते ही वह जोरसे बोला, "मास्टर, मैं जा रहा हूँ। लेकिन जिन्दा रहकर लौटूँगा और तुझे देख लूँगा। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तूने ही मेरे हाथ-पैर तोड़े हैं।"

सुबह-शाम हज़ारोंकी तादादमें गाँवसे बाहर जानेवाली और पुनः गाँवमें वापस आनेवाली भेड़ें और जवान गडरिये चल दिये। गाँव सूना हो गया। वापस आनेवाली बाल-बच्चोंवाली भेड़ोंकी आवाज़ें अब सुनायी नहीं पड़ती थी और गाँव गूँगा हो गया था। झोंपडियोसे धुआँ नहीं निकलता था, शालाके सामनेवाले मैदानमे सभा नहीं होती थी। लेंड़ियों और पेशाबकी उग्र गन्ध नहीं आती थी और गाँव निर्जीव हो गया। जो हिलता-बोलता था वह स्तब्ध और चुप हो गया। एक बार पानी नहीं बरसा, एक वर्ष बारिश न दिखी और गाँव सूना हो गया। वह रामा बनगर, वह शेकू, वह आनन्दा, बालट्या और बाला, सब चले गये। भले-बुरे सभी चल दिये। शाला जहाँकी तहाँ रही। व्यायामशाला वही रही। ये घर, ये पेड़ अपनी जगह खडे रहे और लोग चले गये।

साँय-साँय आँधी चलती रही। उस आँधीसे उडकर आनेवाली धूल घरोके दरवाज़ोंपर, दीवालोंपर दस्तकें देती रही, जम गयी। गड़रियोके स्वच्छ लिपे-पुते आँगन धूलसे भर गये। छप्परपर छायी हुई घास हवासे बिखर गयी, छूट गयी और सब-कही फैल गयी। मकानोके बडे-बड़े छेदोंमे घुसकर हवा अजीब-सी आवाज़ करने लगी। छप्परपर रख दिये गये औजारोके आँगनमे गिरनेकी आवाज़ सुनायी पडने लगी। घरके बन्द किवाड़ोंपर हवा धक्के देने लगी। किवाड़ खड़खड़ाने लगे। व्यायामशाला भी धूलसे भर गयी। हौदेकी लाल मिट्टीपर धूलकी तह जम गयी। मकड़ियोंने जगह-जगहपर अपने जाले बना लिये। अखाड़ेके ढोलका चमड़ा चूहोंने कुतर डाला। कई दिनोंसे न लीपनेके कारण शालाका फ़र्श जगह-जगहपर खुद गया और पपड़ियाँ पड़ गयी। अलमारी, मेज़ और सन्दूक़पर भी धूलकी तहें जमी। हनुमान्‌जीके मन्दिरमे धूल भरी। हनुमान्‌जीका सिन्दूरी-तन धूलकी बौछारोंसे मटमैला दिखने लगा।

गाँवमे कोई नज़र नहीं आता था। बहुत दिनोंतक रोज़ शामको आकर नीमकी चोटीपर बैठनेवाले बगुलोंने अब आना छोड़ दिया। शाला-

में रोज़ शोर मचानेवाली चिड़ियाँ अब कहीं भी दिखायी नहीं देती थीं। बिल्लियाँ इधर-उधर घूमने लगीं। रातको एक दूसरेपर गुरगुराकर वे आपसमें लड़ने लगीं और बन्द घरोंके भीतर चूहोंका शिकार करने लगीं।

रातको काकुबा गड़रियाकी भेड़ें अकेली होनेके कारण बें-बें करके चिल्लाने लगी और ढीठ हुआ भेड़िया सूँघता हुआ गाँवमें घूमने लगा। व्यायामशालाकी धूलपर, मन्दिरके भीतरकी धूलपर, गड़रियोंके आँगनकी धूलपर उसके पैरकी छाप दिखायी पड़ती।

सुबह सिर्फ़ उन्हीं दो भेड़ोंको ही लेकर, बूढ़ा काकुबा जंगलमें जाता। भूखी भेड़ें खेतमें इधर-उधर दौड़तीं। नाक ऊपर करके गर्म हवा सूँघती। जंगलमें उनसे खाने लायक़ अब कुछ नहीं बचा था। झुण्डसे अलग हो जानेके कारण वे बहुत ही हलके स्वरमें चिल्लाती थीं। फिर काकुबा उनसे बातें करता। जुते हुए खेतोंमें दूबकी जड़ें खुदकर ऊपर आ गयी थी। उन जड़ोंको बीनकर, काकुबा अपने साथ घर लाता और भेड़ोंको खिलाता। इस तरह जड़ें बीनता हुआ वह दिन-भर मारा-मारा फिरता। भेड़ें चिल्लाती हुई उसके पीछे-पीछे घूमा करतीं। शाम होते ही उन दो भेड़ोंको हाँकता हुआ बूढ़ा गाँवमें आता।

रामाकी घरवाली भी जो बूढ़ेको देखभालके लिए गाँवमें छोड़ दी गयी थी, तड़के उठ जाती। सिरपर एक ख़ाली टोकनी ले लेती। कमरमें एक खुरपी खोंसकर बाहर निकल जाती। दूसरे गाँवके खेतोंकी धूल फाँकती। सात-सात, आठ-आठ मीलकी पाँवपिटाई करके वह वापस आती। तब उसकी टोकनीमें दो-चार गाजरें नज़र आतीं। जलानेके लिए पतली-पतली लकड़ियोंका एक गट्ठा रहता। भेड़ोंको खानेके लिए थोड़ा भूसा रहता। माँग-मूँगकर इकट्ठी की हुई इस कमाईको लेकर, वह शामको वापस गाँवमें आती और फिर घड़ी-भरके लिए उसकी झोंपड़ीमें चूल्हा जलता। लाल ज्वाला नज़र आती और छतके ऊपर काला धुआँ उठता हुआ दिखायी देता। कभी-कभी उसकी बातें भी सुनायी पड़तीं।

मैं बीच-बीचमे अपने गाँव चल दिया करता था। बनगरवाडीमें जो हो रहा था उसकी खबरें सरकारको दे रहा था। मैं सप्ताहमें एक-दो दिन ही बनगरवाड़ीमे रहता था। दिन-भर मैं और आयबू गाँवमें रहा करते थे। घुटने खड़े करके उसके आस-पास हाथोंको लपेटे आयबू कहीं भी जाकर बैठा रहता। यदि कभी उसके दिलमे आ जाता तो झाड़ू लेकर शाला और व्यायामशाला साफ़ कर देता। मैं दिन-भर प्रायः सोता रहता। कभी-कभी लिखता या पढ़ता बैठा रहता। कभी-कभी आयबू मुझसे बिना पूछे ही जाने कहाँ ग़ायब हो जाता। धूल-भरे पैर लिये थका-मांदा शामको लौटकर आता। फिर यरदन झुकाये बैठा रहता। यदि मै पूछता कि कहाँ गया था तो सिर्फ़ इतना कहकर ही कि यूँ ही ज़रा टहलने गया था, वह चुप हो जाता।

दिन तो किसी तरह कट जाता। लेकिन रात खानेको दौड़ती। रातमें कभी-कभी काकुबा आ जाता और दीवालसे पीठ टिकाये बैठा रहता। कमरेमे बत्तीकी मद्धिम रोशनी फैली रहती। मैं अपने विचारोंमे खोया हुआ, आयबू अपनी चिन्तामे डूबा हुआ और काकुबा यूँ ही इधर-उधर देखता हुआ बैठा रहता। तीनों तीन तरफ़ अलग-अलग।

मै पूछता, "काकुबा, रामाकी कोई खबर आयी क्या?"

"नहीं जी, मास्टर!"

"जो लोग चले गये है, वे अब कब लौटेंगे?"

"पानी बरसेगा तब।"

यदि कभी कोई बातें होतीं भी तो इसी रूपकी हुआ करती थीं। नहीं तो बूढ़ा घण्टों चुपचाप बैठा रहता और उठकर चला जाता।

घरसे मै जो रोटियाँ लाया करता, उनमें-की दो-तीन दिनकी बासी रोटियाँ जब मै आयबूको देने लगता, तो कभी तो वह उन्हे ले लेता और कभी लेनेसे इनकार कर देता। अगर मैं बहुत आग्रह करता तो बाहर चल देता। मै अकेला ही बैठा हुआ उन रोटियोंको खाता और पानी पीकर सो जाता।

इस तरह कुछ दिन बीत गये और एक दिन मुझे सरकारी हुक्म मिला। लिखा था—बनगरवाड़ीको शाला बन्द करो और तहसीलके सदर मुक़ामको प्राथमिक शालामें फ़ौरन हाज़िर हो।

आयबूने मेरा सामान इकट्ठा करके ठीकसे बाँध दिया। जिस कमरेमें रहता था उसे मैंने खाली कर दिया। शालाको ताला लगा दिया। फिर खड़े-खड़े काकुबाके घर गया।

"बाबा, मैं जाता हूँ। सरकारने मुझे वापस बुलाया है।"

काकुबाने टकटकी लगाकर मेरी ओर देखा। गरदन हिलायी—दो-तीन बार हिलायी और वह बोला, "ठीक है!"

बूढ़ा अधिक न बोला। उसकी बहू कुछ भी न बोली। नये आदमीको देखकर भेड़ें दो-तीन बार चिल्लायीं और काकुबासे बिदा लेकर मैं बाहर निकला।

आदमी या जानवर कहीं कोई न दिख रहा था और गाँवकी ओर पीठ फेरकर हम गाड़ीके रास्तेसे वापस जा रहे थे। मेरा सामानसे भरा हुआ बोरा आयबूने अपने सिरपर रख लिया था और वह मेरे पीछे-पीछे आ रहा था। कुछ सामान मैं भी अपने हाथमें लिये हुए था।

बीच ही में आयबू रुका और सिरपर रखे बोरेको ठीक-ठाक करके मेरी ओर बिना देखे ही बोला, "यह सामान तुम्हारे घर पहुँचाकर फिर मैं वापस चला आऊँगा।"

कहाँ जायेगा, क्या करेगा, यह मैंने कुछ भी न पूछा। यह विचार भी मेरे मनमें न आया कि इस लड़केको अब कहाँ सहारा मिलेगा। मेरी परछाईं आगे-आगे सरक रही थी। धूल उड़ रही थी और सामने दूर तक फैले हुए केवल सपाट मैदान! परिन्दा भी पर मारता हुआ नहीं दिखायी दे रहा था। उदासीमें डूबी हुई वीरान बनगरवाड़ी पीछे छूट गयी थी और मैं वापस जा रहा था।

कहानियाँ

*

साइकिल

महीनेकी तनख़्वाहके एक सौ पचास रुपये लेकर भार्गव मास्टर स्कूलके आहातेसे बाहर निकले तो उन्होंने सोचा कि इस महीने राजके लिए साइकिल खरीद लें। लेकिन साइकिलके लिए तो कम-से-कम दो सौ रुपये गिनने पड़ेंगे। पुरानी साइकिल लेनेपर भी सौ-सवा सौसे कम क्या लगेगा, एक मुश्त इतनी रक़म खर्च करना, डेढ सौ रुपये पानेवाले और पाँच व्यक्तियोंके परिवारका खर्च चलानेवाले मास्टरके लिए आसान काम नही था। लेकिन करें भी तो क्या? अपने इकलौते लड़केकी इतने दिनोंकी एक चाह भी वह आज तक पूरी न कर सके। और यह सिर्फ़ उसकी चाह ही नही, एक बड़ी आवश्यकता भी है। सिर्फ़ शौक़के लिए इतना खर्च करनेके लिए व्यवहार-कुशल भार्गव मास्टर कदापि तैयार न होते। लेकिन अँगरेज़ी छठी कक्षामे पढ़नेवाले राजके लिए साइकिल एक नितान्त आवश्यकताकी वस्तु थी। बम्बई-पूना रोडसे डकन-जिमखाना, भावे स्कूल तक लगभग तीन मील उसे रोज़ पैदल आना-जाना पड़ता था। यह सच है कि बहुत दिनों तक भार्गव मास्टर भी उतनी दूर पैदल ही चलकर पढ़ाने जाते-आते थे। लेकिन जब उनकी उम्र बढ़ गयी और रक्त-चापके विकार-की आशंका होने लगी, तब वह मजबूर होकर बसके लिए पैसे खर्च करने लगे। इतनी दूर पैदल जाने-आनेकी राजने भी कभी कोई शिकायत नहीं की थी। लेकिन समयपर घरसे निकलना और ठीक समयपर इतनी दूर पैदल चलकर स्कूल पहुँचना बेचारे राजके लिए अकसर कठिन हो जाता था। खाना बनानेमें माँको कहीं देर हो गयी तो राज परेशान हो जाता। रसोईसे बाहरके कमरेमे लगी घड़ी तक वह चक्कर काटने लगता। उसकी माँ जल्दी-जल्दी खाना परसती और कभी-कभी तो सिर्फ़ चावल और

अचारसे ही सन्तोष करके राजको स्कूल चला जाना पड़ता था। तब भी उसके मुँहसे शिकायतका एक शब्द नहीं निकलता था। अपनी उम्रकी अपेक्षा वह कहीं अधिक समझदार लडका था। एक-दो बार बात-बातमे उसने चर्चा की थी कि उसके लिए एक साइकिल ले दी जाय। इसपर उसकी माँने कहा था, "बेटा, तुम्हारे पिता कोई रईस ज़मींदार तो है नहीं। ट्यूशन करके चार भले आदमियोंकी सहायतासे उन्होने अपनी पढायी पूरी की। फिर यह नौकरी मिली। कुछ रुपया-पैसा हाथमे आने लगा। लेकिन अब भी, आज तक अपने कपड़ोंमे इस्त्री करनेके लिए उन्होने दो आने कभी खर्च किये हों, मुझे याद नहीं। अब तुम नासमझ नहीं रहे। अपने घरकी हालतपर कुछ तो तुम्हे सोच-विचार करना चाहिए। पैदल चलनेसे तुम्हारे पैर तो नहीं घिस जायेंगे।"

और इसके बाद राजने दुबारा कभी भूलकर भी साइकिलका जिक्र तक नही किया। लेकिन मास्टर साहबको ही रह-रहकर लगता था कि किसी-न-किसी तरह दूसरे खर्चोंमे बचत कर, लड़केको साइकिल ले देनी चाहिए। बम्बई-पूना रोडपर एक बड़े बँगलेके आउट हाउसमे रहनेवाले भार्गव मास्टर शाम-सवेरे नौकरीपर खड़की जानेवाले और वहाँसे वापस आनेवाले कर्मचारियोंकी झुण्ड-की-झुण्ड साइकिलें देखते थे। उनके कलेजेमे इस खयालसे एक टीस-सी उठती कि अपने इकलौते लडकेके लिए, वह एक साइकिल भी नहीं खरीद सकते! रोज़ इस रास्तेसे हज़ारों साइकिलवाले गुज़रते है। अलग-अलग मॉडेलकी, अलग-अलग मेककी, नयी, पुरानी, कितनी ही साइकिलें रोज़ इस रास्ते हज़ारोंकी संख्यामे दौड़ती है, उनके घरके सामनेसे होकर गुज़रती हैं। दूध देनेवाला ग्वाला रोज़ साइकिलपर बैठकर आता है। फटे-पुराने कपड़े पहने रद्दी काग़ज़, शीशियाँ आदि खरीदनेवाले भी साइकिलपर ही बैठकर आते हैं। इस बँगलेके पाखाने साफ़ करनेवाले उस नाटे-से मेहतरके पास भी एक नयी, चमकीली रेसिंग साइकिल है।....लेकिन रोज़ तीन मील दूर स्कूल जानेवाले उनके लड़केके पास एक सेकेण्ड हैण्ड

भी साइकिल नहीं ! भार्गव मास्टरका कलेजा कटने लगता, मन चंचल हो उठता और वह यूं ही बात बनाते हुए लड़केसे कहते, "क्या पढ़ रहे हो, राज भैया ? संस्कृत ? गुड ! इस वर्ष संस्कृतमें अस्सी परसेण्ट मार्क लाओ, तो इनाममें तुम्हें एक नयी साइकिल ज़रूर ले देंगे।"

राज संस्कृतमें सच ही अस्सी प्रतिशत मार्क ले आया। लेकिन पिताके सामने भूलकर भी साइकिलकी चर्चा उसने न की। मास्टर साहब भी उस बातको ऐसे गोल कर गये जैसे कभी कोई बात ही न हुई हो। यह बात नहीं थी कि उन्हें अपनी बात याद नही थी। याद जरूर थी, पर वह भी क्या करते, और किस मुँहसे कहते ? मजबूर होकर वह चुप ही रहते। लेकिन यह चुप रहना भी उनके लिए कभी-कभी असह्य हो जाता। महीने-भर बाद वह फिर कहते, "राज भैया ! हमें अपना वादा याद है। लेकिन हमें एक सालकी और मोहलत चाहिए। मय सूदके हम तुम्हारा कर्ज़ अदा कर देंगे।"

राज जब अँगरेज़ीकी तीसरी कक्षामें पढ़ता था, तबसे मास्टर साहब यह वादा करते चले आ रहे थे। लेकिन अब तक तीन सालमें भी लड़केका क़र्ज वह अदा कर न पाये थे।

घर आते हुए मास्टर साहबके पैर साइकिलकी एक दूकानके सामने ठिठक गये। दोनों ओरसे तेज़ीसे आने-जानेवाली साइकिलोंसे अपनेको बचाते हुए, उनकी घण्टियोंकी टुनटुनाहटका शोर सुनते हुए वह साइकिलकी दूकान-के सामने आ पहुँचे और अपनी चाल कुछ धीमी कर उन्होंने अन्दर नज़र दौड़ाकर देखा।

चमचमाती साइकिलोंकी एक क़तार सामने ही दिखायी दे रही थी। उनकी फ्रेमें पीले काग़ज़ोंमें लिपटी हुई थीं। भीतर नये टायर दीवालोंपर लटकते दिखायी दे रहे थे। पीछेकी ओर लकड़ीकी आलमारियोंमें घण्टियाँ, पैडल, चेन आदि दिखायी दे रहे थे। साइकिलों और साइकिलोंके पुरज़ोंसे दूकान खचाखच भरी हुई थी। मेज़के पास बड़ी-बड़ी मूँछोंवाला दूकानदार

बैठा था और उसकी बगलमें, तख्तीपर चिपके हुए पोस्टरपर स्वेटर पहने एक लड़का तेजीसे साइकिल चला रहा था। उसके चेहरेपर मुसकराहट दमक रही थी और अपना दाहिना हाथ वह शानसे ऊपरकी ओर उठाये हुए था।

भार्गव मास्टर दूकानकी सीढ़ियाँ चढ़कर भीतर गये और चमकनेवाली उन नयी साइकिलोंकी ओर एक नजर देखकर मालिकसे उन्होंने पूछा, "क्या दाम है इनके ?"

मालिक तुरन्त अपने स्थानसे उठ खड़ा हुआ और कपड़ेसे साइकिलको साफ़ करते हुए बोला, "किस मेककी गाड़ी आपको चाहिए साहब ?"

कोटके भीतरवाली जिस जेबमें मनीबैग था, उस स्थानपर हाथ रखकर मास्टर साहबने कहा, "साधारणतः ज़रा अच्छी गाड़ीके कितने रुपये लगेंगे ?"

"यह 'रॉबिन हुड' लीजिए, साहब ! इसका दाम है दो सौ दस ! पम्प, बेल, चेन-कवर, सब मिलाकर कुल सवा दो सौमें आपको मिल जायेगी।"

सिर हिलाकर मास्टर साहबने कहा "ओह !"

"तो आप यह हिन्द लीजिए। सबसे सस्ती, मगर हिन्दुस्तानी है, साहब। रॉबिन हुड तो असली चीज है, हिन्दसे कहीं सुपीरिअर। आप-जैसोंको तो अच्छी ही चीज लेनी चाहिए। कौन रोज़-रोज़ खरीदनी है।"

फिर मैले कपड़े पहने एक लड़केसे उसने कहा, "लड़के, यह गाड़ी निकालकर दिखाओ तो साहबको।"

मास्टर साहबके चेहरेपर खिसियानेपनका भाव नज़र आने लगा। कुछ घबराहटके अन्दाजमें उन्होंने कहा, "नहीं, नहीं, अभी रहने दो। मुझे आज तो गाड़ी खरीदनी नहीं है। यहाँसे जा रहा था, सोचा, दाम ही पूछ लूँ।"

"कोई बात नहीं। आज मत लीजिए। लेकिन देख तो लीजिए।"

"निकाल बे, गाड़ी ! साहबको दिखा।"

मास्टर साहबका चेहरा किसी अपराधीकी भाँति दिखायी देने लगा, "नहीं, साहब, इस वक़्त रहने दीजिए। वैसे ही मुझे गाड़ी दिखायी दे रही है। बहुत बढ़िया है। फिर कभी मैं आऊँगा अपने लडकेको साथ लेकर! थैंक्स!"

और वह तेजीसे दूकानकी सीढ़ियाँ उतरने लगे, तो दूकानदार उनके निकट आया और बोला, "सेकण्ड हैण्ड गाडी भी है, साहब, हमारे यहाँ! बिलकुल कम दाममे आपको मिल जायेगी। आप फिर कभी जरूर आइए लड़केको लेकर! लेकिन इस वक़्त वह गाड़ी एक नजर देख तो लीजिए। देखनेके दाम नहीं लगते, साहब!" और वह जोरसे हँस पड़ा।

और तब भार्गव मास्टरको मजबूर होकर रुकना ही पड़ा।

बादमे लडकेने एक नाटी-सी साइकिल लाकर उन्हे दिखायी।

"ज़्यादा दिनकी इस्तेमाल की हुई नही है, साहब! बिलकुल नयी गाड़ी है। बेल है, चेन-कवर है, और कोई भी पुरजा बदलनेकी ज़रूरत नहीं है।" यह कहते हुए लड़केने ज़ोरसे साइकिलको घण्टी बजायी और पिछला चक्का ऊपर उठाकर पायडिल मारा, चक्का जोरसे नाचने लगा और उसकी तीलियाँ चमक उठीं।

मास्टरने कहा, "वाक़ई, गाडी तो बहुत बढिया है!"

मालिक कुछ आगे बढा और कपड़ेसे सीटको पोंछकर उसने कहा, "ले जाइए, साहब, सस्ते दामो दे दूंगा। सिर्फ साठ रुपये।"

"साठ!"

यह रक़म मास्टरके लिए वैसे कोई ज़्यादा न थी। कुछ आगे बढ़कर, हैण्डिलको छूकर उन्होंने कहा, "मेरे खयालसे भी ज़्यादा दिन इस्तेमाल नहीं की गयी है।"

"बिलकुल नहीं, साहब! एकदम नयी गाड़ी है। दस-पन्द्रह साल आप बेखटके इसपर चढ़िए। आप तमाम पूना छान मारिए, क़सम खाकर कहता हूँ, इतने कम दाममें ऐसी चीज़ आपको कहीं नहीं मिलेगी!"

मास्टरने सोचा, साठ रुपये दे दें और साइकिल ले चलें। दिलने तो फ़ैसला कर लिया, लेकिन ज़बानसे शब्द निकल नहीं रहा था। वह यों ही उस नाटी-सी साइकिलकी ओर देखते रहे। साइकिलकी गोल घण्टीमे उनकी सूरत बडी ही भद्दी दिखायी दी। मास्टर साहबने जैसे बिचककर मनमे ही कहा, साठ रुपयेमे तो बिलकुल सस्ती है।

मालिक भाँप गया। उसे विश्वास हो गया कि दो-चार चिकनी-चुपड़ी बातोके बाद यह ग्राहक खाली हाथो नही लौटेगा।

"साहब ! कल सवेरे ही तो यह गाड़ी मेरी दूकानमे आयी है। और ज्यादे-से-ज्यादा कल सवेरे तक कोई ग्राहक इसे ज़रूर खरीद लेगा, क्योकि इतनी बढिया चीज साठ रुपयेमे क्या, बिलकुल मुफ्त ही मिल रही है। आप ही सोचिए···"

आहिस्तेसे मास्टरने कहा, "खैर, भाई, दे ही दो।"

मालिकने रसीद बनायी। मास्टरने रुपये गिनकर दे दिये। रुपये रखते हुए मालिकने सलाम किया। लडकेने गाड़ी दूकानके बाहर निकाली। मास्टरने सडकपर आकर अपनी धोती ठीकसे खोंसी और टाँग उठाकर बस झटसे साइकिलपर सवार हो गये।

जोर-जोरसे घण्टी बजाते हुए भार्गव मास्टर महाराज रोडसे साइकिल दौड़ाये चले जा रहे थे। अपनी उम्र, पेशा, रक्तचाप आदि तमाम बातें जैसे वह भूल गये हों। वह दुबारा जैसे लड़के बन गये थे। सहसा उनमे नयी ताक़त, नयी उमंग-सी आ गयी थी। आगे-पीछेसे तेज़ीके साथ दौड़ने-वाली सैकडों साइकिलोंके बीच उनकी भी साइकिल दौड़ रही थी। अनगि-नत घण्टियोंकी टुनटुनाहटमे उनकी साइकिलकी घण्टी भी अपना स्वर मिलाये जा रही थी। संभाजी पार्क, मॉडर्न हाई-स्कूल, आब्जरवेटरीके सामनेवाला मोड़, एग्रिकल्चर कॉलेजका नुक्कड़, रेलवे फाटक और बम्बई-पूना रोड····

साइकिल घुमाकर मास्टरने बँगलेके आहातेमे प्रवेश किया। अपने आउट हाउसके निकट पहुँचते ही साइकिलसे नीचे उतरकर उन्होने ज़ोरसे घण्टी

बजायी। राज दौड़कर बाहर आया और पिताजीके हाथमें साइकिल देखकर वह हैरान रह गया।

जोर-जोरसे साँस छोड़ते हुए और धोतीके छोरसे माथेका पसीना पोंछते हुए मास्टरने कहा, "यह लो ! तुम्हारे लिए साइकिल !"

"क्या इसे आपने खरीद लिया ?"

मास्टरने मुसकराते चेहरेसे सिर्फ 'हाँ' में सिर हिलाया और सिरसे टोपी उतारकर, उसे हाथमें लिये ही वह भीतर गये। और बिना कोट उतारे ही आरामकुरसीपर लेट गये और टोपीसे हवा करने लगे।

उनकी श्रीमतीजी रसोई-घरसे बाहरके कमरेमें आयीं, तो बँगलेके फाटकपर-से साइकिलपर बैठा राज और सीट पकड़कर उसके पीछे दौड़ती सुधा और मनु उन्हें दिखायी दिये। हैरान-सी होकर वह मास्टर साहबकी ओर देखने लगी।

धोतीके छोरसे मास्टर साहब अपना मुँह पोंछ रहे थे। उनके चेहरेपर एक दीप्ति-सी झलक रही थी। लेकिन ज़ोरोंसे साँस चलनेके कारण कुछ देर तो उनसे कुछ कहते ही नहीं बना। अन्तमें कुरसीपर लेटे-लेटे ही उन्होंने कहा "राजके लिए साइकिल ले ही आया। सालोंसे लड़का आस लगाये बैठा था।"

प्रसन्न चित्त मास्टर साहबने पाँचवीं कक्षामें प्रवेश किया। लड़कोंका शोर-गुल सहसा बन्द हुआ। मेज़के नजदीक कुरसीपर बैठकर भार्गव मास्टर हाजिरी लेने लगे। जल्दी-जल्दी एक-एक लड़केका नाम वह ले रहे थे। कृष्ण वर्मा नामपर पहुँचे, तो मास्टर साहब एक क्षणके लिए रुक गये। कभी भी गैरहाज़िर न रहनेवाला यह सबसे तेज़ लड़का आज लगातार चार रोजसे स्कूल नहीं आ रहा है, इस बातका सहसा उन्हें स्मरण हो आया। उन्होंने सामने देखा, तो कृष्ण वर्माकी बग़लमें बैठनेवाला, फूले-फूले गालों-वाला मनोहर गुप्त गम्भीर मुद्रासे उनकी ही ओर देख रहा था। एक ही बेंचपर ये दोनों लड़के हमेशा बैठते है। शायद कृष्णको गैरहाज़िरीकी वजह

इसे मालूम हो, मास्टर साहबने कहा "मनोहर !"

माथेपर आयी लटोंको पीछे हटाते हुए, बड़ी-बड़ी आँखोंवाला मनोहर उठकर खड़ा हो गया "यस् सर।"

"क्या तुम्हारा दोस्त कहीं बाहर गया है ?"

मनोहरने कुछ नहीं कहा। बस नीचे सिर झुकाये चुप-चाप खड़ा रहा। भार्गव मास्टरने सोचा, गिलहरी-जैसे चपल और चंचल इस लड़केने, उनकी बात शायद ठीकसे सुनी भी नहो। उसका दिमाग़ तो कहीं और ही उलझा होगा। अपनी आवाज़को कुछ तेज़ करके उन्होंने दुबारा इसी प्रश्न-को दुहराया "क्या कृष्ण वर्मा कहीं बाहर गया है ? लगातार चार रोजसे वह स्कूलमे हाज़िर नहीं है।"

मनोहरने एक नजर उठाकर देखा और कहा "नहीं, सर। वह बाहर नहीं गया है।"

यह भाँपते मास्टर साहबको देर न लगी कि उसके मुँहसे अटक-अटक-कर निकले इस वाक्यका अर्थ कुछ और ही है। उनके प्रश्नका उत्तर इस लड़केने अपने हमेशाके स्वरमे नहीं दिया है। उसकी आवाजमे कुछ उदासी है, यह भी उन्होंने अनुभव किया। तब अपनी कुरसीसे उठकर वह मनोहरके बेंचके निकट गये। मनोहरका चेहरा फीका पड़ गया था।

"कृष्ण कहीं बाहर नही गया····तब वह चार रोज़से स्कूल क्यों नही आ रहा है ?"

कुछ व्यथित स्वरमे मनोहरने कहा, "सर, वह मर गया।"

एक क्षणके लिए मास्टर साहबका हृदय जैसे बन्द हो गया। दुबला-पतला, लम्बा-सा, हमेशा साफ़-सुथरे और सलीक़ेसे कपड़े पहननेवाला, कोमल, कक्षाका सबसे तेज़ वह लड़का कृष्ण क्या मर गया ? चार दिन पहले वह यहीं, इसी बेंचपर तो बैठा था। नयी कोंपल, नयी पौधकी तरह होनहार वह लड़का ! क्या वह सच ही मर गया ? कितना कुशाग्र बुद्धि, कैसा अभिमानी स्वभावका था वह लड़का ! आह !!

भर्राये स्वरसे मास्टर साहबने पूछा, "उसे हो क्या गया था ? बीमार तो नहीं था ?"

"नहीं, सर, मुझे भी आज ही पता चला। वह दुर्घटनामे मर गया।"

"अँ ? दुर्घटना ?"

"हाँ, सर। स्कूलसे अपने घर, खड़की जाते समय सामने रिक्शा देखकर उसने अचानक साइकिलके दोनों ब्रेक एक साथ ही दबा दिये और धड़ामसे गिर पड़ा। उसके सिरमे घातक चोट आयी थी। उसे अस्पताल ले गये, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ, सर।"

"साइकिलसे गिर पड़ा ?"

"हाँ, सर। वह बहुत तेज़ साइकिल चलाता था, बहुत तेज़, सर। वह तो दुर्घटना वग़ैरहसे डरता ही नहीं था, सर।"

सहसा मास्टर साहबकी आँखोंके सामने अपनी खरीदी हुई साइकिलके हैण्डिलपर लिखा नाम दिखायी देने लगा, कृष्ण वर्मा, सदाशिव पेठ, पूना। और उसी क्षण, उनका मन पहाड़-जैसे किसी बोझके नीचे दब गया। छुटकारा पानेके लिए बन्दी जानवरकी तरह बोझके नीचे उनके प्राण छटपटाने लगे।

लड़के एक दूसरेके कानमें फुसफुसाने लगे, पूरी कक्षामे एक हलचल-सी मच गयी। आतंक और भयके कारण कक्षाके बालकोंके चेहरे इस तरह कुम्हला गये, जैसे सहसा लूकी लपटोके कारण हरियाली मुरझा गयी हो। जैसे-तैसे घण्टा खत्म कर मास्टर साहब अध्यापकोंके कमरेमे आ गये और सहसा दरीपर बैठ गये। उन्होने आवाज देकर चपरासीको बुलाया और कहा, "सुनो, पीनेके लिए ज़रा पानी ले आओ और राजकी कक्षामे जाकर कहो कि मैं उसे बुला रहा हूँ।"

पानी देकर चपरासी चला गया। गीले होठोंपर जबान फेरते हुए मास्टर बार-बार याद करने लगे। साइकिलके चमकते हैण्डिलपर जो नाम उन्होंने दूकानमे पढ़ा था, क्या वह कृष्ण वर्माका ही था, या उन्हे केवल

इसका आभास हो रहा है ? वह इस तरह दुःखी और आतंकित क्यों हो गये है ? कृष्ण वर्माको मृत्युका समाचार सुनकर ही उनकी यह हालत हुई है, या किसी आनेवाले अमंगलकी आशंका भी इसमे सम्मिलित है ? इस मिट्टीके तनका क्या ठिकाना ? आज है कल नहीं ! जिसने जन्म लिया है, वह किसी-न-किसी दिन अवश्य चल बसेगा। लेकिन इस मासूम लड़केकी यह मौत बड़ी दर्दनाक है।

तभी खाकी हाफ़पैण्ट और सफ़ेद शर्ट पहने राज वहाँ आ पहुँचा। मुसकराकर उसने पूछा, "मुझे आपने बुलाया है, पिताजी ?"

अपनी घबराहट और चेहरेपरकी परेशानीको छिपानेकी चेष्टा करते हुए मास्टरने कहा, "कहो, कैसी है तुम्हारी साइकिल ?"

"बहुत बढिया है ? हवाई जहाजकी रफ्तारसे दौड़ती है।

"अच्छा !....लेकिन तुम ठीकसे चला लेते हो न ?"

"हाँ, मुझे बहुत अच्छी प्रैक्टिस है।"

"वह तो मै जानता हूँ, लेकिन इतनी भीड़मे हैण्डिलपर तुम क़ाबू रख लेते हो न ?"

"हाँ, हाँ, मै फर्राटेसे आज साइकिल निकाल लाया हूँ।"

"तब तो ठीक है।....और हाँ, साइकिलके हैण्डिलपर शायद किसीका नाम लिखा है। क्या तुम्हे वह नाम याद है ?"

"उसपर कृष्ण वर्माका नाम खुदा है। पहले मालिकका ही वह नाम है। लेकिन उसे मै रेतीसे घिसकर मिटा दूँगा।"

"अच्छा, तो तुम भागो अपने क्लासमे।"

पिताके दिलमे उठे बवण्डरको राज क्या जाने ? मास्टरके दिलपर-का बोझ तनिक भी कम न हुआ।

शाम हुई। स्कूलकी छुट्टी हुई। हलके क़दमोंसे मास्टर साइकिलकी दूकानपर पहुँचे। बड़ी-बड़ी मूँछोंवाला मालिक दूकानमे नहीं था। मैले कपड़े पहने वह लड़का पंचर देख रहा था। मास्टर साहबको आते देख

उसने कहा, "आइए।"

"कहो, भाई, मालिक कहाँ है ?"

"घर गये है। आते ही होंगे। बैठिए।"

मास्टरने सोचा कि वह साइकिल इस दूकानमे किसने बेची, उस साइकिलके पहले मालिकका नाम क्या है, इस लड़केसे पूछ लें। लेकिन उन्होने सोचा कि यह सब यह बेचारा लडका क्या जाने। बेंचपर वह बैठ गये। पाँच मिनिट हो गये। सात मिनिट बीत गये। मालिक नही आया।

"पाँच मिनिटसे ज़्यादा हो चुके, भाई।"

"आते ही होगे। कहिए, आपको क्या चाहिए।"

"कल मै जो साइकिल ले गया, वह किसकी थी, इतना ही उनसे पूछना था।"

"यह तो मै नही जानता, साहब। एक मिनिट बैठिए। वह आते ही होगे।"

दस-पन्द्रह मिनिट परेशान हुए मास्टर दूकानमे बैठे रहे। आखिर मालिकने आकर कहा, "कहिए, साहब, साइकिल पसन्द आयी आपके लड़केको ?"

"जी हाँ। लेकिन आपको ज़रा कष्ट देना चाहता हूँ। उस साइकिलके पहले मालिकका नाम आप बता सकते है ?"

क्षण-भरके लिए मालिक किसी सोचमे पड़ गया। फिर जल्दी-जल्दीमे उसने कहा, "मैने उससे रसीद ले ली है, साहब। सूरतसे भला आदमी ही जान पड़ता था वह। चोरीका माल बेचनेवालोंको भाँप लेते हमे देर नही लगती।"

"नही, नहीं, मेरा यह मतलब नहीं। मैंने कब कहा कि वह गाड़ी चोरीकी है। लेकिन अगर आपको एतराज़ न हो तो मै वह रसीद देखना चाहता हूँ।"

"नही, साहब, मुझे एतराज क्यों होने लगा ! आप शौक़से रसीद

देख सकते हैं।"

मालिकने रसीद दिखायी। 'आनन्द वर्मा, सदाशिव पेठ, पूना–२'।

मालिकने कहा, "जिसने यह साइकिल हमारे यहाँ बेची, वह बहुत भला आदमी लगता था, साहब। पहले तो मेरे भी दिलमे कुछ खटका पैदा हुआ कि इतनी बढ़िया और नयी गाड़ी इतने कम दाममे कौन बेचेगा? लेकिन उसने कहा कि यह गाड़ी उसके लड़केको फली नहीं। जो कुछ भी क़ीमत मैं देना चाहूँ उतनेमें वह बेच देगा। मैंने साइकिलकी असली रसीद देखी, फिर गाड़ी ख़रीदी। मेरे खयालसे तो इसमे झंझटकी कोई बात नहीं है, साहब।"

जानेके लिए उठते हुए मास्टर साहबने कहा, "झंझट तो कुछ नहीं है। मै यों ही पूछना चाहता था। अच्छा, साहब, नमस्ते।' और वह घरकी ओर चल पड़े।

लड़केको साइकिल देनेकी खुशीपर पानी फिर गया और एक बेचैनी-सी मास्टर साहबके मनपर छा गयी। वह चचल हो उठे। अब उनके दिल-परका बोझ कहीं अधिक बढ़ गया था। अनगिनत आशंकाओने उनके मस्तिष्कमे एक आँधी-सी उठा दी। ये अबोध लड़के कितनी लापरवाहीसे भीड़-भाड़वाली पूनाकी इन सड़कोंपर साइकिल चलाते है! उन्हे क्या मालूम कि कही उन्हे कुछ हो गया, तो उनके माँ-बाप''''उनका मन बार-बार उनसे कहने लगा कि राजको साइकिल दिलाकर उन्होंने बहुत बड़ी ग़लती की है। वैसी भीड़में मोटर आदि सवारियोसे बचकर क्या राज कुशलतापूर्वक घर पहुँच गया होगा? असम्भव। उसे नयी साइकिल मिली है और आज पहला ही दिन है। किताबें बस्ता आदि कैरियरमे दबाकर वह पूनाकी सड़कोंपर चक्कर काट रहा होगा। शाम हो चुकी है। सड़कोंपर नर-नारियों, सवारियोंका ताँता लगा हुआ है। भयानक भीड़में अपनेको बचानेकी कोशिश करता हुआ· राज साइकिल दौड़ा रहा होगा। अब क्या है, उसे साइकिल मिल गयी है! वह इस तरह अन्धाधुन्ध गाड़ी दौड़ा

रहा होगा, मानो उसे पर लग गये हों। वह ज़रूर अभी घर न पहुँचा होगा। उसे नयी-नयी साइकिल मिली है। साइकिलपर बैठकर जी भरकर घूमने और दोस्तोंको दिखाते फिरनेकी चाह वह आज ज़रूर पूरी करेगा और कौन जाने कृष्णकी तरह किसी दुर्घटना····। जीवनमें कई बार इस तरहके अजीब संयोग दिखायी देते है। जिस आशंकाके कारण वह आतंकित है, कही वह सच न हो जाये! राजकी साइकिलसे कोई मोटर न टकरा जाये, कही·····

मास्टरका दिल बुरी तरह छटपटाने लगा। अमंगलकी आशंकाने कई बदरंग चित्र उनकी आँखोंके सामने कर दिये।····उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि इकलौते, जवान बेटेकी मृत्यु हो जानेपर पिताके प्राण किस तरह छटपटाते होंगे, उसके दिलपर क्या बीतती होगी! उन्होंने सोचा राजके न रहनेपर मुश्किलसे एक हफ़्ता वह जीवित रह सकेंगे, बस एक हफ़्ता!

बँगलेके हातेसे होकर वह अपने मकानके निकट पहुँचे, तो उन्हें ऐसा आभास हुआ कि इस बँगलेमें अभी-अभी ज़रूर कोई अप्रिय घटना घटी है। हमेशा खुला रहनेवाला दरवाज़ा आज भीतरसे बन्द था। शरारत, खेल-कूदमें तमाम मोहल्ला सिरपर उठा लेनेवाली सुधा और मनु आज बँगलेके हातेमें दिखायी नहीं दे रही थीं। दरवाज़ेके निकट ही कुछ क्षण मास्टर ठिठके रह गये। उन्होंने महसूस किया कि उनके पैर जैसे काँप रहे है, वह अब गिर पड़ेंगे। मुश्किलसे अपनेको सँभालते हुए, दरवाज़ेसे कान लगाकर वह भीतरकी आहट लेने लगे।

सूरज डूब चुका था। चारो ओरसे आकर अँधेरा धरतीपर घिर रहा था। वायु निश्चल थी और कहींसे कौवोंका काँव-काँव सुनायी दे रहा था। भीतरसे कोई भी आवाज़ नही आ रही थी। तब आहिस्तेसे दरवाज़ा ठेलकर वह भीतर गये।

बिस्तरसे सटी सुधा और मनु बैठी थीं। पुस्तकमें छिपाये अपने मुँह एक बार उन्होंने कुछ ऊपर उठाया और पिताको देखते ही दुबारा पुस्तकोंपर

गिरा दिया। मास्टरने देखा कि उनका मुँह रुआँसा है। राजकी माँ दीवार-से पीठ लगाये बैठी थी। पतिको देखते ही वह उठकर भोतर चली गयी।

मास्टरने टोपी उतारी और आरामकुरसीपर लेट गये। अपने दिलकी धड़कन उन्हे साफ़ सुनायी दे रही थी। आखिर वहाँकी भीषण शान्ति उन्हे असह्य हो उठी, तो उन्होंने कहा, "अरे, भाई, अँधेरा हो चुका। बत्ती तो जलाओ।"

चुपचाप सुधा उठी और उसने बटन दबाया।

लड़कियाँ दुबारा चुपचाप बैठ गयीं। राजकी माँ रसोई-घरमें जाकर किसी काममें लग गयी।

दुबारा मास्टरने ही पूछा, "राज अब तक नहीं आया ?"

मनुने आहिस्तेसे कहा, "नही।"

"नहीं आया ? शाम हो चुकी। अब तक वह घर नही लौटा ? और तुम लोग सब इस तरह चुपचाप उदास बैठी हो ? हो क्या गया है तुम लोगों को ?"

मास्टरकी समझमें नहीं आ रहा था कि अब उन्हे कौन-सा भयानक समाचार सुनना पड़ेगा। समाचारकी भयानकताकी आशंका प्रतिपल बढ़ती ही जा रही थी। उनका दिल बुरी तरह धड़क रहा था। मन बैठा-सा जा रहा था।

बड़ी देरतक कोई जवाब न पा बड़ी मुश्किलसे काँपते स्वरमे उन्होंने ही फिर पूछा, "तुम सब इस तरह चुपचाप क्यों हो ? तुम्हारी ज़बानको क्या हो गया है ? अरे भाई, कुछ बताओ भी तो, आखिर बात क्या है ?"

सुधा और मनुने एक नज़र एक-दूसरेके मुँहकी ओर देखा और बादमे वे दोनों दरवाज़ेकी ओर देखने लगीं। दरवाज़ेकी ओटमे खड़ी होकर राजकी माँने आहिस्तेसे सहमे स्वरमें कहा, "राजने नयी साइकिल न जाने कहाँ खो दी।"

मास्टरके सीने-परका पहाड़-सा वह भयानक बोझ-जैसे सहसा किसीने

एक ओर उठाकर फेंक दिया। एक अजीब-सा हलकापन और प्रसन्नताका उन्होंने अनुभव किया। स्वप्नमें अपने-आपको मृत देखकर, घबराहटके मारे आँख खुलनेपर अपनेको जीवित पा मनुष्यको जो खुशी होती है, वैसी ही खुशीका इस क्षण वह अनुभव कर रहे थे। बेहद परेशानी, चिन्ता और घबराहटके कारण उनका मुरझाया हुआ चेहरा सहसा खिल उठा। टूटी कुरसीपर वह लेटे हुए थे, अब उठकर खड़े हो गये और प्रसन्न स्वरमें बोले, "साइकिल खो गयी ?....खैर, कोई बात नहीं ! क्या इतनी-सी बात-पर तुम-सब इस तरह मुँह लटकाये बैठे हो ?

राजकी माँने हैरान होकर पतिकी ओर देखा। पिताजी जरा भी नाराज़ नहीं हुए, इसपर दोनों लड़कियाँ विस्मित हुईं।

कई जगह तलाश करनेके बाद, पुलिसथानेमें रिपोर्ट देकर मुरझाया चेहरा लिये राज लौटा, तो सहमते हुए उसने घरमें क़दम रखा और चुप-चाप एक कोनेमें जाकर हत्यारेकी तरह खड़ा हो गया। ऊपर नज़र उठा-कर पिताजीकी ओर देखनेकी उसमें हिम्मत नहीं थी।

उसे देखते ही प्रसन्न स्वरमें मास्टरने कहा, "तुम्हारी साइकिल खो गयी, राज ?....खैर, कोई बात नहीं। उसके लिए तुम इस तरह दुःखी मत होओ। मैं तुम्हें दूसरी गाड़ी ले दूँगा।...."

पिताजीके इन शब्दोंको सुनकर राज सहसा सिसक पड़ा। उसके नन्हे दिलके लिए यह कोई साधारण अपराध और नुक़सान न था।

मास्टर उसके निकट आ, उसे अपने कलेजेसे लगाकर और उसकी पीठ सहलाते हुए स्नेह-सिक्त स्वरमें बोले, "अरे, रोनेकी कौन-सी बात है, पगले ! साठ रुपल्लीकी ही तो बात है अगली तनख्वाह मिलते ही हम तुम्हें फिर गाड़ी ले देंगे।"

लेकिन राज सब जानता था। वह बड़ी देर तक सिसकता रहा।

*

इन्तिहा

मै सर्विस-बससे नीचे उतरा और गाँवमे गया। चमारपुरा खोजनेमें देर न लगी। लेकिन ठीक रामाका घर मिल जाये इसलिए किसीसे पूछनेकी ज़रूरत थी। लड़कोंसे पूछनेमे कोई फ़ायदा न था। इसलिए गाँवके खण्डहरोंको पार करता हुआ मैं किसी ऐसे आदमीको देखने लगा जिससे रामाके घरका पता पूछूँ।

घास-फूससे छाये हुए एक खण्डहरके सामने, आस-पास फैले बहुत-से जूतोंके बीच, एक बूढ़ा बैठा हुआ दिखायी दिया। नींचे देखता हुआ वह, एक फटे जूतेमें टाँके लगा रहा था। मैं उसके नज़दीक जाकर खड़ा हो गया। लेकिन वह अपने काममे इतना खोया हुआ था कि उसे मेरे आनेका पता तक न चला।

"बाबा, रामा चमार कहाँ रहता है ?"

काम बन्दकर उसने ऊपर देखा। बायें हाथकी दो अँगुलियाँ होठोंपर रख मुँह एक ओर फेरकर उसने पीक थूकी और आँखें ढाँककर ठुड्डीको झटका देकर वह बोला, "किसका घर कहा तुमने ?"

"रामा चमारका !"

"हाँ, पर कौन-सा रामा ? खण्डूका रामा या धोड़ी बुढ़ियाका रामा ?"

हाँ, समूचे चमारपुरेमे अनेक रामा होनेकी सम्भावना थी। लेकिन मुझे तो रामाका 'रामा' ही नाम मालूम था। उससे कैसे पता चले ?

"बाबा, यह तो मैं नहीं जानता कि वह किसका रामा है। लेकिन वह सरकारी सड़कपर काम किया करता है !"

"हाँ, तो फिर ऐसा कहो न ? तुम कहाँसे—क्या शहरसे आये हो ?"

"हाँ !"

"सड़कका काम देखनेवाले अफसर हो क्या ?"

"हाँ !"

"हाँ ! तो देखो । इस रास्तेसे सीधे चले जाओ । वह सहजनका पेड़ दिख रहा है । उसीके सामने है उसका घर ।"

और सिर नीचा कर वह फिर अपना काम करने लगा । मैंने वह राह पकड़ी ।

जब सहजनका पेड़ आया, तो मैं उसके सामने खड़ा हो गया ! झोपडी-के बाहर पत्थरपर बैठी हुई एक काले रंगकी औरत आटेसे सनी थाली धो रही थी और उसके कन्धोंपर हाथ रखे पाँच-छह सालका एक लडका, जिसको नाकमे नेटा भरा हुआ था, लाल रोटीके टुकड़ेको तोड़-तोड़कर खा रहा था । मुझे आते देखते ही उसने मुँहका कौर एकदम गिटक लिया और माँका आँचल खीचकर बोला, "ओ माँ, देख तो कौन आया है ?"

माँने मुड़कर देखा । फटी धोतीका घूँघट उसने एकदम मुँहपर खींच लिया और स्पष्ट और कडी आवाजमे पूछा, "क्या है जी ?"

"रामा कुली यहीं रहता है न ?"

"हाँ, यही रहता है । अभी मोटर देखने गया है । कोई अफ़सर आनेवाला है ।"

"अरे वाह, मैं उसके घर आ गया और वह मोटर देखने गया है ।"

औरतने आँखें विस्फारित कीं । यह महसूस कर कि अफ़सर घरमें आया है वह असमंजसमें पड़ गयी । लड़केकी नंगी पीठपर एक हलका-सा धप जमाकर, वह धीमी आवाज़मे उससे बोली, "जा रे ! जहाँ मोटर खड़ी होती है । मामासे कहना अफ़सर आ गये है ।"

लड़का शरमा गया और माँके पीछे दुबकता हुआ बोला, "जा मैं नहीं जाता ।"

लेकिन इसी समय साफेका सिरा खोंसता हुआ बड़ी जल्दी-जल्दी रामा ही आ पहुँचा । माथेको हाथ लगाकर बोला, "महाराज !"

"राम-राम। तुम्हीं हो रामा ?"

"हाँ जी, मैं ही हूँ। मिस्तरीने कल ही बताया था कि आप आ रहे हैं। इसलिए आपको देखने मोटरपर गया था।"

"तो फिर चल रहा है न ? दिन काफ़ी बढ़ गया है।"

"जी हाँ, चलिए न ? रोटी बाँध दे री। थोड़ा बैठिए न ?"

रामाकी झोंपड़ी बहुत ही ठिगनी थी। मैं झुककर भीतर गया और बाहरसे छप्परके एक खम्भेसे टिककर बैठ गया। रामा जल्दी-जल्दी न जाने फिर कहाँ चल दिया।

भीतरके अँधेरेमे वह औरत कुछ करने लगी। लड़का बार-बार बाहर सिर निकालकर मेरी ओर देख रहा था।

नीचेकी ज़मीन खुरदरी थी। कहीं गढ़े पड़ गये थे तो कहीं मुरमके बड़े-बड़े कंकड़ निकल आये थे। बाहर नजदीक ही पानीका घडा गड़ा हुआ था। उसपर लकड़ीका एक ढक्कन था। थोड़ी दूरपर पेड़ोंकी सूखी टहनियाँ और गन्नेके सूखे छूछनोंका ढेर लगा था। जंगलसे बीनकर इकट्ठा किये हुए गोबरके उपले भी थे।

एक कोनेमे बकरी बँधी थी। उसकी एक-एक हड्डी दिख रही थी। उसके आगे बबूलकी एक टहनी पड़ी थी। जिसमे मुँह मारनेकी वह कोशिश कर रही थी और नाकसे आवाज़ कर रही थी।।

रामा जिस तरह जल्दी-जल्दी गया था उसी तरह जल्दी-जल्दी लौट भी आया। अपनी बहनसे बोला, "अरी राधा जल्दी कर। कबसे बैठे है साहबजी। हम ग़रीबोंके घर कौन आता है ?"

मेरी तरफ़ देखकर वह बोला, "बस, हो गया साहब ! अब रोटी लेकर चलता ही हूँ।"

राधाने बड़ी तत्परतासे रोटियोंकी गठरी अपने भाईके हाथमे दी। बोली, "मैं कबसे रोटी बना चुकी हूँ। तुम्हारी तैयारीमे ही देर लग जाती है। लौटते समय छेरीके लिए पत्तियाँ लेते आना।"

"हाँ, हाँ ! ले आऊँगा !"

भान्जेके पेटपर रामाने प्यारसे एक हलकी चपत जमायी। धूलसे भरे उसके मुँहको चूमा।

"हाँ, साहब ! चलिए अब चलें। मेकटवाड़ी तक पैदल ही चले चलेंगे !"

दोनों गाँवके बाहर निकलकर सड़कपर आये। मेरे हाथमें सामानका झोला था। रामाको यह ठीक न दिखा।

"उसमें कोई ऐसी चीज़ तो नहीं है जो मेरे छूने लायक़ न हो ?"

"क्यों ?"

"झोला मुझे दे दीजिए। मैं लिये चलता हूँ। आखिर मेरे हाथ खाली हो तो है।"

"रोटियाँ हैं और रंगके डिब्बे हैं !"

"हाँ, तो रोटियोंकी गठरी अलग निकाल लीजिए और बाक़ी सामान मुझे दे दीजिए।

"रोटियोंको निकालनकी क्या जरूरत है ? मेरे लिए सब ठीक है। ले पकड़।"

रामाको यह बात बड़ी अपूर्व मालूम हुई। उसके चेहरेपर कुछ लज्जा-के भाव भी अंकित हो गये।

"मैं रोटियोंको कैसे छू लूँ साहब ?"

"मुझे कोई हर्ज नहीं है। मैं छुआछूत नहीं मानता।"

रामा थोड़ी देर खामोश रहा। फिर बोला, "तो दीजिए झोला, मैं लिये चलता हूँ।"

दिखनेमें रामा मामूली आदमियोंकी तरह न था। रूप देनेमें भगवान्ने उसपर कृपा न की थी। शरीरसे हट्टा-कट्टा था। रंग था पक्का काला। नाक बायीं तरफ टेढ़ी हो गयी थी और एक आँख खराब थी। उसके

चेहरेकी चमक-दमकको ओर देखकर कोई भी यह सोचता कि दिलसे अच्छा यह मनुष्य रूपसे गया गुज़रा है। और उसे खाने-पीनेको भी ठीकसे नही मिल रहा है। उसने किसी रंगका एक गन्दा वस्त्र महज़ आदतसे लाचार होकर अपने सिरपर लपेट लिया था। कई जगह फटा हुआ एक कुरता वह पहने हुए था और उसकी धोती तो उसके लिए बिलकुल ही अधूरी थी। पिंडलियोंपर अँगुलीके बराबर मोटी नसें उभरी हुई दिख रही थो। एड़ियोंमे बडी-बड़ी दरारें पड़ गयी थी। उसकी उम्र भी कोई अधिक नहीं मालूम होती थी। मेरे मनमे प्रश्न उठ रहे थे—क्या इसका ब्याह हो गया होगा? यदि हो गया होता, तो उसकी झोंपड़ीमे उसको घरवाली दिखायी देती, दो-चार बच्चे नजर आते। राधा तो उसकी बहन जान पड़ती है। राधाके माथेपर सौभाग्यका कुंकुम भी नहीं दिख रहा था।

रामा नीचे निगाह किये हुए चल रहा था। कुछ समय बीता। और उसने कहा, "देखिए साहब, मीलका पत्थर आ गया।"

फर्लांग और मीलके पत्थरोंपर नम्बर लिखने थे। नाम लिखने थे। रंग और कूची लेकर मै पत्थरके सामने बैठा। रामा भी जमीनपर पड़े कंकड़-पत्थरोंको हटाकर नज़दीक ही बैठ गया। कामके साथ-साथ बातें भी शुरू हुईं।

"हाँ, क्यों रामा, कैसा चल रहा है तुम्हारा?"

"जी, ठीक ही कहना चाहिए।"

"बड़ी ठण्डी साँस लेकर कह रहे हो? क्या कुछ दुःख है?"

"सच पूछा जाये तो दुःख करनेसे क्या होता है? जो भगवान् दे उसी-पर रहना चाहिए।"

"सच कहते हो। लेकिन दुःख कभी छूटता नही। सच है न?"

दो-चार शब्दोंसे ही मै रामाके हृदय तक पहुँच गया। मेरी अफ़सरीसे डरनेवाले रामाका भी संकोच जाता रहा। वह मुझसे अपने सुख-दुःख कहने लगा।

"रामा, अपना पैतृक रोज़गार छोड़कर, तुमने सरकारी नौकरी क्यों कर ली ?"

"वह रोज़गार आजकल चलता कहाँ है ? चमड़ा भी बहुत मँहगा हो गया है और नक़द पैसे कौन देता है ? गाँवमें जो सालाना बँधा है, अगर उसपर ही रहूँ तो भूखों मरना पड़ेगा। उसी गाँवमे इतने चमार है कि हर-एकके हिस्सेमें मुश्किलसे दो-तीन घर पड़ते है। सिर्फ़ इतनेसे गुज़र कैसे होगी ? पेट कैसे भर सकता है ?"

"हाँ, यह तो सच है।"

"तब सोचा कि सरकारी नौकरी कर लूँ। सड़ककी देख-रेखका काम अच्छा है।"

"यहाँ तनख्वाह क्या मिलती है तुम्हे ?"

इस प्रश्नपर रामा हँस पड़ा।

"क्यों गरीबसे मज़ाक़ कर रहे है, मालिक ? क्या आपको मेरी तनख्वाहका पता नही ? आप उसी दफ़्तरमे अफ़सर है न ?"

"रामा, पागल हो तुम। अरे, मै काहेका अफ़सर ? मै भी तुम्हारे-जैसा ही हूँ। मील और फर्लांगके पत्थरोंपर नम्बर और नाम लिखनेका ठेका लिया है मैंने। पेट भरनेके लिए कोई रोज़गार तो चाहिए ?"

"कुछ भी हो, लेकिन हमारे लिए आप अफ़सर ही है। अगर आप नहीं जानते हैं, तो बताता हूँ। हर महीनेमे बारह रुपये मिलते हैं मुझे।"

"इतनेमे तुम्हारी ठीकसे गुज़र हो जाती है ?"

रामाने एक ओर मुँह फेरकर थोड़ी-सी सुरती अपनी दाढ़के नीचे दबायी और हाथ झटकाकर फिर कहने लगा, "गुज़र क्या चलेगी इतनेमें ? जैसे-तैसे पेट भर रहा हूँ। ढोरकी ज़िन्दगी जो रहा हूँ। न पहनेको ठीकसे कपड़े ले सकता हूँ और न कभी अच्छा खानेको मिलता है। हम ग़रीबोंका यही हाल है। फिर भी यह तो अच्छा है कि मेरी औरत नहीं है। अकेला ही हूँ।"

"क्यों, क्या तुमने ब्याह नहीं किया ?"

मेरे इस प्रश्नने रामाके ज़ख्मको हरा कर दिया। शायद वह बहने भी लगा। सिरसे साफा उतारकर उसने नीचे रखा और हाथमे एक ककड़ लेकर जमीनपर रेखाएँ खींचता हुआ बोला, "ब्याह तो किया था, दादा। लेकिन वह कुछ ठीक नही रहा।"

उसके स्वरसे मै उसके हृदयकी व्यथा महसूस कर रहा था। उसके चेहरेपर भी उदासी छा गयी थी। मुझे लगा, व्यर्थ ही मैने यह प्रश्न पूछा ? बात सँभालनेकी गरज़से मैने कहा, "वह तो बातोंमे बात निकल आयी इसलिए पूछ लिया रामा। वरना तुम कहोगे कि इन्हे क्या पड़ी है मेरी निजी बातोसे ?"

रामाने गरदन हिलायी और खेद व्यक्त करता हुआ वह बोला, "नहीं, नहीं ! आप ऐसी कोई बात न सोचें ? मै खामोश इसलिए रहा कि अपना दुखड़ा क्या रोऊँ ? बड़ी विचित्र कहानी है मेरी, दादा !"

"क्यों भला ? कहो क्या बात है ?"

"मेरा ब्याह हुए पाँच साल हो गये। लेकिन ब्याहके बाद पूरे छह महीने भी औरत मेरे पास न रही। जाने कहाँ भाग गयी और आज तक लापता है !"

"इसका मतलब ?"

"मेरा करम ही खोटा है। और क्या कहूँ ? वह सांगलीके तरफ़की थी। इतनी खूबसूरत थी कि दस औरतोंमें भी अलग दीख पड़ती थी। मेरी झोंपड़ीमे वह कैसे रहती ? मैं ठहरा ऐसा बेढब और कुरूप आदमी। गृहस्थी भी ग़रीबीकी थी। रोज़ाना यह हाल था कि तेल है तो नमक नहीं और मिरच है तो दाल नहीं। न घरमे पहननेको अच्छे कपड़े और न खानेको अच्छी चीजें। यह सब उसे नहीं भाता था। वह सीधी तरहसे बात भी नहीं करती थी। जब देखो तब रूठी रहती थी। दादा, क्या मैं इन बातोंको नहीं समझता था ? लेकिन करता क्या ? ढोरकी तरह मर-मरकर

भी मजदूरी करता, तो आखिर कितना कमा लेता ?"

रामा कलेजा पकड़कर कह रहा था। उसके हृदयके किवाड़ खुल चुके थे। मैं भी द्रवीभूत होकर सुन रहा था।

"यदि उसे समझाने जाता तो कहती, 'चलो बम्बई चलें। वहाँ मिल-मे मज़दूरी करके खूब कमायी करो और मेरे शौक़ पूरे करो'। लेकिन अपना गाँव छोड़कर कहीं बाहर जानेकी मेरी इच्छा ही नही होती थी।"

एक पत्थरपर नाम और नम्बर लिखनेका काम पूरा हो चुका था। मैं उठा। रंगके डिब्बे आदि सामान लेकर रामा भी उठा और फिर चलते-चलते उसने अपना हाल कहा, "आप ही बताइए सच है न, कि अपना गाँव, अपना घर और अपने रिश्तेदारोंको छोड़कर हम बाहर क्यों जायें ? इस तरह करते-करते एक दिन मेरी गैरहाज़िरीमे वह घरसे भाग गयी। उसके बाद आज तक उसका कोई पता नहीं है।"

"तुमने क्या उसकी कोई खोज-खबर नहीं की ? गाँवके चार सयानोंसे मनवाकर उसे वापस नही ले आये ?"

"मैंने कुछ नहीं किया। जब वह मेरे पास रहना ही नही चाहती थी तो मैं क्यों जबरदस्ती करता ? मैंने सोचा चली गयी है तो चली जाने दो। कहीं भी रहे सुखसे रहे। इसीमे मुझे सन्तोष है।"

इस पुरानी स्मृतिसे रामा काफ़ी दुःखी हो गया। मैं भी फिर अधिक न बोला। सूरज काफ़ी ऊपर चढ़ गया था। भूख और प्यास दोनों सताने लगी थीं। बातचीतमें रास्ता तो कट गया था पर पैरोंमें थकावट भर गयी थी।

"रामा देखो सामने बावली दिख रही है। चलो छायामें बैठकर खा लें। थोड़ी देर सुस्तायें और फिर काममें लगें।"

"हाँ जी आपको भूख लग आयी होगी, चलिए।"

नज़दीकके खेतमें एक बावली थी। हम लोग वहाँ गये। रामाने, ढोरों-

को पानीके लिए जो हौदी थी उसमे अपने हाथ-पैर धोये। मैं बावलीके भीतर उतरकर अपना मुँह धो आया। खेतमे पानी देनेकी नालीके किनारे-वाले एक बरगदके सायेमे हम-दोनोने अपने-अपने पाथेय खोले।

रामाकी बहनने उसके लिए हथेली बराबर लाल-रंगकी दो मोटी-मोटी रोटियाँ बनाकर दे दी थी। रोटियोंके साथ लाल-लाल-सी थोड़ी चटनी भी रख दी थी।

मेरी माँने घीसे खूब चुपड़कर चार-छह पतली-पतली चपातियाँ दे दी थीं। उनके साथ साग था, नीबूका अचार था और लहसुनकी चटनी भी थी। जब मैने डिब्बा खोला तो उनकी सोधी महक वातावरणमे छा गयी।

मै अपने पाथेयसे थोड़ा-सा निकालकर रामाको देने लगा, तो वह 'नही नही' कहने लगा।

मैने कहा, "रामा, अन्नको लेनेसे इनकार नही करना चाहिए। ले लो।"

"यह बात नहीं है दादा। आप सिर्फ़ अपने अकेलेके लिए लाये है; चलकर थक जानेसे आप भूखे हो गये होंगे। मेरे पास मेरी रोटियाँ है ही। तो फिर मुझे क्या जरूरत है?"

मैंने जबरन उसे थोड़ा-सा परोस ही दिया।

हम दोनों खाने लगे।

रामाने बातकी-बातमे दोनों रोटियाँ चटनीके साथ खा डालीं और मेरे-द्वारा दी गयी चपातियोंको कपड़ेमे लपेटकर रख लिया। मैने कहा, "रामा, यह क्या किया? तुमने खाया नही? यह किसलिए रख लिया है?"

"थोड़ा खा तो लिया है दादा। यह थोड़ा बच्चेके लिए रख लिया है। हम लोगोंको ऐसा कब नसीब होता है? बच्चा खा लेगा। अब तो मेरी सारी आशा राधाके लड़केपर ही है दादा। जब वह जवान होगा तब कही अच्छे दिन आयेंगे। तबतक यही हालत रहेगी हमारी। वह कुछ पढ़-लिख भी ले, इसलिए उसे शालामे भरती करनेका भी विचार है। जब बहनका घरवाला मरा तो वह मेरे गले पड़कर रोने लगी और बोली

कि अब मेरा क्या होगा। तब मैंने कहा, "बाई, मेरे पास ही रहो। आखिर मेरा भी और कौन है अब—?"

रामाने नालीसे चुल्लू भरकर पानी पिया। डकार लेकर वह सुरती खाने बैठा। मैं अभीतक खा ही रहा था। हथेलीपर रखी सुरतीको अँगुलियोंसे मलता हुआ रामा बोला, "दादा, मनमें एक बात आयी है इसलिए पूछता हूँ। आपकी उम्र क्या होगी ?"

"मैं बीस सालका हो गया हूँ, रामा !"

"मैं भी बीस और ऊपर आठ सालका हो गया हूँ। लेकिन आप तो बन गये अफ़सर और हम मज़दूर ही रहे। ज़िन्दगी-भर मज़दूर रहकर ही हम मर जायेंगे। भगवान् कैसे चण्डाल हो तुम? ऐसा क्यों करते हो ?"

रामाको देनेके लिए भगवान्के पास कोई जवाब न था। मेरे पास भी न था। मैं केवल सुन रहा था।

"आप कहेंगे कि रामा तू पढ़ा-लिखा नहीं है। कभी स्कूल नहीं गया। लेकिन दादा ! यदि स्कूलमें पढ़ने जायें तो पेट कैसे भरें ? चार-पाँच सालके होते ही हमें ढोर चराना पडता है तब कहीं खानेको मिलता है। फिर हम स्कूल कैसे जायें ?"

मैं खाना खा चुका। थोड़ी देर आराम करके फिर काम शुरू कर देना था। शाम तक जितना हो जाये, उतना करना था। सुबह शहरसे निकली हुई सर्विस शामको जब लौटेगी तो उसे हाथ दिखाकर रोकूँगा और अपने घर शहर वापस चल दूँगा। यही मेरा कार्यक्रम था।

"थोड़ी देर लेट जाइए दादा ! धूप उतरते ही फिर आगे बढ़ेंगे।" कहकर रामा कुरता और साफा अपने सिरहाने रख नालीके किनारेकी हरियालीपर सो गया, खर्राटें भी भरने लगा।

पेड़के तनेसे पीठ टेककर मैं बैठा रहा। सोचने लगा कि रामाका सवाल हल कर सकता हूँ क्या ?

*

धरती माता

अपने खेतके पास, बरगदके नीचे बूढ़े आप्पा बैठे हुए थे। घुटनोंके गिर्द उन्होंने बाँहें बाँध रखी थीं। उनकी गरदन झुकी थी और आँखें बन्द।

आस-पास कहीं कोई आदमी न था। मवेशी भी न थे। जुते हुए खेत कड़ी धूप खा-खाकर बिलकुल काले पड़े हुए वर्षाकी प्रतीक्षा कर रहे थे? ऐसे समय खेतोंमें कौन आता। अभी वहाँ काम ही क्या था। पानी बरसेगा, पीकर ज़मीन फूलेगी और नरम होगी, तब बुवाई शुरू होगी। तबतक खेतोंमें क्या काम। चरनेके लिए मवेशी भी यहाँ क्यों आते। गड़रियोंकी भेड़ें बारीकसे-बारीक घास भी चट कर गयी थीं। फिर खेतोंकी ओर कोई मवेशी क्यों मुँह करता। ऊपरसे ऐसी जलती हुई दुपहरिया थी। पखेरू भी धूप और गरमीसे घबड़ाकर झाड़ियोंमें चुपचाप छिपे हुए बैठे थे।

ऐसे समय बूढ़े आप्पा बरगदकी छायामें गरदन लटकाये बैठे हुए थे! कमरमें गाढ़ेकी मोटी धोती थी, बदनपर सलूका और सिरपर सफ़ेद पगिया। उम्र सत्तरके पार।

यह बूढ़े आप्पा खेतमें इस समय क्यों आये थे? इस तरहकी चिल-चिलाती धूपमें अगर वह यहाँ न आते, तो उनका कौन-सा काम बिगड़ जाता? थके हुए शरीरको घरके भीतर विश्राम देनेके बदले वह पागलकी तरह अपने अंग समेटकर इस तरह मिट्टीमें क्यों बैठे थे? क्या उनके कोई जवान लड़का नहीं, जो उनसे कहता कि क्या ज़रूरत है ऐसे वक़्त खेत जानेकी, बैठो आराम करो। बुढ़ापेमें इतनी तकलीफ़ खामखाहके लिए क्यों उठाते हो? क्या उनकी कोई सुघर बहू नहीं, जो ससुरजीके लिए दीवालसे सटाकर काली कमलीपर धोती बिछाकर, सिर झुकाकर यह कहती कि दादाजी, बाहर तो बड़ी तेज़ धूप पड़ रही है····आप····

क्या इस बुढ़ापेमे इनके बहू-बेटोको इनकी कोई चिन्ता नहीं ? क्या वे इन्हे वक़्तपर खाना नहीं देते ? पान-सुरतीके लिए इन्हे पैसे नहीं देते ? तीरथ जानेकी इनकी इच्छाकी उपेक्षा करते है ? पुराने टूटे हुए औज़ारोंकी तरह क्या अपने बूढ़े बापको लड़कोंने कूड़ेके ढेरमें डाल दिया है ?

ऊपर बरगदपर कहीं छिपी बैठी एक चिड़िया मीठी बोली बोलकर चुप हो गयी, तो चुप बैठे आप्पाने गरदन ऊपर उठायी। माथेपर गहरी रेखाओका जाल फैला हुआ था। ठोढ़ीपर दाढ़ीकी सफ़ेद खूँटियाँ बढ़ी हुई थीं। धँसी हुई आँखें खुलीं और बन्द हुई और उनसे पानी निकलकर किनारोंपर आ गया। यह बात तो थी नही कि पक्षियोंका कलरव उन्होने आज पहली बार सुना हो। परन्तु आज यह नन्हीं-सी बात ही उन्हें लग गयी। मेरे खेतके इस विशाल वटवृक्षपर किन्नरोकी तरह गानेवाली एक चिड़िया है, यह बात ही उनकी आँखें भिगो गयी।

उतरती अवस्थामे मनुष्यका मन कोमल हो जाता है। बात-बातपर दुःखित हो जाना, भर आना उसका स्वभाव हो जाता है। आप्पाका भी तो अब चौथापन आ गया था। उनका शरीर और मन अब बहुत थक चुका था। वह चाहते थे कि अब अपने घरमें बैठूँ, दोनों जून ताज़ा भोजन करूँ और अपने जीवनके अन्तिम दिन शान्तिसे बिता दूँ। अब उनसे अपने खेतकी, अपनी धरती माताकी सेवा नहीं हो सकती थी। इसलिए नही कि वह इस सेवासे ऊब गये थे, बल्कि इसलिए कि अब वह लाचार हो गये थे, मजबूर हो गये थे। सिर्फ़ मजबूरीकी वजहसे ही वह अपनी इस माँको अपनेसे हमेशाके लिए जुदा कर रहे थे। यही कारण था कि उनका बूढ़ा मन अशान्त हो रहा था, उनका कलेजा टूक-टूक हो रहा था।

आँखोंका पानी बाँहसे पोंछकर आप्पाने सामने देखा। उनके खेत सीधे जाकर गाँवके नालेको छू रहे थे। देखकर उनका मन कसक उठा। अपनी ज़मीनके चप्पे-चप्पेसे वह परिचित थे। उन्हें मालूम था कि उनके खेतोंमें किस जगह गले तक गहरी काली मिट्टी है, किस जगह चार हाथ खोदने-

पर ही कंकड़ निकल आता है, किस जगह बोनेसे बाजरेके भुट्टे दो-दो बीते लम्बे बढते हैं और किस जगह चनेकी डाँठ बढ़कर घुटने तक पहुँचती है। अपनी इस उर्वरा भूमिसे वह वैसे ही परिचित थे, जैसे अपनी माँसे और वह उतनी ही उन्हे प्रिय भी थी। इस भूमिने उनके लिए सोना उगला था, उनकी परवरिश की थी और उन्होंने भी उसकी सेवा करनेमे हमेशा खून-पसीना एक किया था। दोनोंने एक-दूसरेको कभी नहीं भुलाया था। आज तक दोनों एक-दूसरेसे कभी जुदा न हुए थे। पर अब आप्पा ज़रूर अपनी इस प्यारी धरती मातासे जुदा हो रहे थे। सिर्फ़ विवशता, बुढ़ापेकी लाचारीके कारण ही वह अपनी इस माँको दूसरेके हवाले कर रहे थे।

देखते-देखते आप्पाकी आँखें फिर सजल हो गयी। उस पार खेतोंके छोरपर नीला और सफ़ेद आसमान फैला हुआ था। वहींसे जैसे यमके दूत उन्हें ले जानेके लिए आनेवाले हों।

"आओ, भाई, अब जल्दी आ जाओ। मै तैयार हो गया हूँ।" आप्पा मन-ही-मन पुटपुटाये और फिर उन्हे लगा कि अच्छा ही हुआ, जो मैंने इस भूमिको दूसरेके हवाले करनेका प्रबन्ध कर दिया। यह भूमि अब सुदामादाजी खरीद रहा था। आप्पाने खुद उससे कहा था कि वह यह भूमि खरीद ले। उसके पास रुपया था। उसका बड़ा परिवार था। पाँच लड़के थे। इतना बड़ा परिवार चलानेके लिए उसके पास पर्याप्त ज़मीन न थी। अब इस भूमिका स्वामित्व आप्पाके हाथसे निकलकर सुदामादाजीके हाथ जानेवाला था।—ठीक है, भाई। उसके पास रुपया है। इसलिए वह इसे खरीद लेगा। पर क्या वह इसकी ठीक तरहसे फ़िक्र भी रखेगा? उसे यह ज्ञान कहाँ है कि कितनी सेवा करनेपर यह माँ सोना उगलती है, हमे पालती-पोसती है और बढ़ाती है, सिर्फ़ अकेले हमे ही नहीं, हमारे मवेशियों-को भी। हाँ, इसी धरती माताने आज तक हमारी परवरिश की है। और आज मैं उसीको दूसरेके हवाले कर रहा हूँ! खैर, मेरी बात छोड़ो। पर इसके बाद मेरे सोना और राजा बैलोंको कौन सम्भालेगा? वे भी तो अब

मेरी ही तरह बूढ़े हो गये हैं, थक चले हैं। अब उन्हें बैठे-बैठे ही खिलाने-का वक़्त आ गया है। परन्तु यह कौन करेगा ? और मेरी धौरी गाय और उसके बछड़ेका क्या होगा ? उनकी देख-रेख कौन करेगा ? दाजी कहता तो है कि भूमिके साथ वह इन जानवरोंको भी खरीद लेगा। पर उसे क्या ममता होगी इनसे ? वह मारेगा मेरे गूँगे जानवरोंको। कामके लिए वह उनकी जान ले लेगा....''

दोपहरकी सनसनाती हुई लूमें खेतोंके पेड़ बिलकुल चुप थे, मानो अपने बूढ़े स्वामीके साथ उन्हें भी दुःख हो रहा था, मानो जिस प्रकार आप्पा उनसे जुदा होना नहीं चाहते थे, उसी प्रकार वे भी नहीं चाहते थे कि उनका स्वामी उन्हे छोड़कर चला जाये।

लेकिन अब आप्पाको जाना ही होगा। उनकी उम्र अब ढल गयी थी। यह भूमि अब वह किसके लिए रख छोड़ें ? अब किसके लिए वह परिश्रम करें ? सच पूछा जाये, तो यह सवाल बहुत पहले ही उनके दिमाग़-मे उठा था। आप्पाके दो जवान बेटे थे, जिनपर उनकी सारी आशाएँ केन्द्रित थीं। आप्पाकी पत्नी थी, जो बडी कुशलतासे गृहस्थीकी गाड़ी चलाती थी। पर एक साल गाँवमें छूतकी बीमारी आयी और आनन-फानन-में ही उस बीमारीके कारण आप्पाका घर बैठ गया। उनके दोनों जवान लड़के और सुघर पत्नी इस दुनियामे आप्पाको अकेला छोड़ ऐसे पथके पथिक हो गये, जहाँसे लौटकर फिर कोई नहीं आता। तभी आप्पाको अपने जीवनकी विफलताका ज्ञान हुआ था। उन्हें तभी ज्ञात हो गया था कि अब ऐसा कोई भी न रहा, जिसके लिए कुछ किया जाये। फिर भी वह मेहनत करते आ रहे थे, अपनी धरती माँकी सेवासे कभी न चूके। जोताई, बुवाई, कटाई और मिसाई बड़े उत्साहसे करते आ रहे थे। यह न करते, तो उनकी परवरिश कैसे होती ? अपनी ज़िन्दगी बनाये रखनेके लिए हवा, अन्न और पानीकी ज़रूरत तो थी ही। उनका यह परिश्रम देखकर लोग कहा करते, ''बूढ़ा बड़ा लालची है। इतनी मेहनत करनेकी

अब उसे क्या ज़रूरत है ? कौन बेटा-बेटी बैठे हैं उसके पीछे ? यह तो सामने ही है कि उसके बाद सब खतम हो जायेगा। फिर भी बूढा लालच नहीं छोड़ता।"

परन्तु आप्पाको क्या लालच थी, वह किसकी ममतामें फँसे थे, इसका उन लोगोंको क्या पता ?

आप्पाके रिश्तेदार इधर उनकी बड़ी फ़िक्र, बड़ी खुशामद करने लगे थे। अपना स्वार्थ साधनेके लिए वे उन्हें मदद पहुँचानेको हमेशा बेचैन रहते थे। उनके पड़ोसमे ही उनका एक कलुवा नामका रिश्तेदार रहता था। वह जवान था। वह आप्पाकी बेहद खुशामद करता था। तीज-त्यौहारके दिन अपने घरसे आप्पाके लिए पकवान भेजता था। आप्पा भोजन करने किसीके घर नहीं जाते थे। आप्पाके कपड़े मैले हो जाते, तो कलुवा कहता, "आप्पा, लाओ, वह कुरता मुझे दे दो। तुम्हारी बहू धो-सुखाकर दे जायेगी।"

परन्तु आप्पा अच्छी तरह जानते थे कि यह कलूटा उनसे इस तरहका घनिष्ठ सम्बन्ध क्यों जोड़ रहा है, यह धूर्त इतनी सज्जनता और भाई-चारगीसे क्यों पेश आ रहा है। बुड्ढा उसे गोद ले ले, अपनी सारी जायदाद उसके नाम लिख दे, यही उसका मतलब था। यही जानकर आप्पा उसका कोई एहसान न लेते थे। वह उससे कह देते, "भैया, जबतक मेरे हाथ-पाँव चल रहे है, मेरी धरती माता मुझे मेरे पेट लायक़ काफ़ी दे देती है। तुमपर फिर मैं क्यों बोझ डालूँ ?"

इस तरह कहकर वह उसकी बातको उड़ा देते थे। इसपर वह कलूटा ग़ुस्सेसे तिलमिलाकर मन-ही-मन कहता, "बुड्ढा एक पैर क़ब्रमें घुसेड़े बैठा है, फिर भी इसकी हविस नहीं जाती। ऐसे लालचीको मौत भी सुखकी नहीं मिलती। घुल-घुलकर मरेगा साला !"

उनके हम-उम्र साथी कभी-कभी फुसफुसाहटकी आवाज़में उन्हें उपदेश देते, "आप्पा, तू थक चुका है। क्यों इतनी मेहनत करता है ? किसीको

गोद ले ले या जमीन लगानपर उठा दे या किसीको बटाईपर दे दे और शान्तिसे बैठकर खा।"

परन्तु आप्पाको यह सलाह पसन्द न थी। क्या गोद लिया हुआ लडका मेरी भूमि और मेरे मवेशियोंकी इतनी फ़िक्र रखेगा, लगान या बटाईपर ज़मीन लेनेवाला मेरी भूमिमें भला क्यों पर्याप्त खाद और पानी डालेगा ? नहीं, यह मुझसे न होगा। जबतक मेरे पैरोमे ताक़त है, कमसे-कम तबतक तो मै अपनी इस माँकी उपेक्षा न होने दूँगा, उसे अपनेसे हरगिज़ जुदा न करूँगा। मेरे बाद जो होना हो, हो।

लोग कहते, "आप्पाके बाद उसकी ज़मीनके लिए उसके रिश्तेदारोमे झगडे खड़े होगे। देख लेना, खून तक होगा।"

"होता रहे, खून होगा तो ! मेरे बाद क्या होगा, इसकी चिन्ता मै क्यो करूँ ? नही, यह मै नहीं करूँगा। कोई कितना भी कहे, मै अपनी भूमि किसी दूसरेके हवाले हरगिज़ न करूँगा !"

यह जिद आज तक तो चली। पर आगे कैसे चलेगी ? अब आप्पाके हाथ-पैरमे ताक़त न थी। उनसे अब पहलेकी तरह मेहनत नही हो सकती थी। इसीलिए आप्पा अब अपनी भूमि दूसरेको देनेवाले थे। उन्होने बहुत सोच-समझकर यह निर्णय किया था।

सुदामादाजी कल सुबह आनेवाला है। अपनी गाड़ीमे बैठाकर वह आप्पा-को तहसीली ले जायेगा। वही रजिस्ट्रारके सामने बैनामेपर हस्ताक्षर होंगे।

आप्पा अपनी जमीन बेचनेवाले थे और उसके बदले कागज़के टुकड़े लेनेवाले थे। यह सब कल ही हो जायेगा। माँकी तरह आज तक अन्न देती चली आ रही कामधेनु आप्पासे अब सदाके लिए विलग हो जायेगी ! घुटनोंमे गरदन डाले आप्पा बहुत देर तक यही सब सोचते बैठे रहे।

धीरे-धीरे धूपकी प्रखरता कम हो गयी। हवा चलने लगी। बरगद-पर बैठे पक्षी मीठी बोलियाँ बोलने लगे। खेतोंके पेड़ोंकी शाखाओंमे छिप-कर बैठे हुए पखेरू चूँ-चूँ करते हुए बाहर निकल पड़े और भोजनकी तलाश-

में गरदन हिलाते हुए उड़ने लगे। आसमानमे कौवे ऊँची उड़ान भरने लगे। छायाएँ लम्बी होती जा रही थीं।

धीरेसे आप्पा उठे। लाठी टेक-टेककर वह चलने लगे। मेड़-मेड़से जाऊँ और एक बार अपनी ममता-मयी माँको भर-आँख देख लूँ। वह धीरे-धीरे चलने लगे।

तपी हुई भूमिकी सुगन्ध उन्होंने सूँघी। मेड़पर खड़े नीमके पेड़की फैली हुई शाखाओंको पकड़कर सहलाया। झाड़ियोंमें जंगली चिड़ियोंने घासके नीड़ गूँथ दिये थे, हवाके साथ झूलनेवाले उन झूमरोंमे-से एक चिड़िया-ने गरदन टेढ़ीकर, झाँककर देखा। उसका शरीर तरोताके फूलकी तरह पीला और मटमैला था। आप्पाको देखते ही, वह चूँ-चूँ करती हुई फ़ुर्रसे उड़ गयी। और जाने कहाँसे पक्षियोंका एक झुण्ड कोलाहल करता हुआ आकर बबूलके पेड़पर बैठ गया।

इन नीम और बबूलके पेड़ोंको आप्पाने कितनी मेहनतसे पालकर बड़ा किया था! जानवरोंसे उन्हे नुकसान न पहुँचे, वे उनकी शाखाओंको तोड न डालें, इसलिए उन्होंने हर पेडके गिर्द काँटोका घेरा बनाया था। बार-बार उनकी जड़ोंके थालोकी मिट्टी वह गोड़ते रहते थे और घेराईकी मरम्मत करते रहते थे। नालेसे गगरी-गगरी भरकर पानी डालते थे। वही पेड़ अब कितने बड़े हो गये थे। उनके पुष्ट शरीरवाले जवान लड़के सदाशिवने एक बार उनसे कहा था, "इन पेड़ोंकी क्यों इतनी सेवा करते हो, आप्पा? बारिशके पानीसे ये आप-ही-आप बढ जायेंगे और अगर न भी बढ़ें, तो हमारा ऐसा कौन-सा बड़ा नुक़सान हो जायेगा? कोई फलदार पेड़ होते, तो भी एक बात थी, फल तो मिलते।"

"अरे पगले, कभी कुल्हाड़ीकी बेंट टूट जाये, गाड़ीकी जुआँड़ी टूट जाये तो तू किसके दरवाज़े जायेगा? फलदार पेड़ोंकी अपेक्षा यही पेड हमारे अधिक कामके है। यह नीमका पेड़ कल जब बढ जायेगा, तो इससे इतनी लकड़ी निकलेगी कि तू आरामसे सतमंजिला मकान खड़ा कर लेगा।

तेरे पिताने जो मकान बनाया है, वह कितने दिन टिकेगा ? और टिका भी, तो कल तेरे बाल-बच्चे होंगे, तब ? सभीके लिए मकान तो चाहिए न। उस समय तू ही कहेगा कि हमारे पिताने कोई पेड़ न लगाया, जो हमारे काम आता।"

ये पेड़ तो बड़े हो गये, पर सदाशिव चला गया, कहाँके बाल-बच्चे और कैसा वंश-विस्तार ? खैर, भगवान्‌की इच्छा।

सूरज पर्वतके पीछे डूब गया। आप्पा चल रहे थे। पश्चिम दिशा लाल हो गयी। तितलियाँ मुड़-मुड़कर नाचने लगी। फिर भी आप्पासे अपनी भूमि नहीं छोड़ी जाती थी। अब फिर कौन उन्हें यहाँ पैर रखने देगा ! इस भूमिके पेड़-पौधे, मिट्टी, कंकड़-पत्थर, सब कुछ अब सुदामादाजीका हो जायेगा, हमेशा-हमेशाके लिए आप्पासे इनका सम्बन्ध टूट जायेगा।

"कभी यहाँ फ़सल अच्छी आयी और हाथसे मिसकर गादा खानेकी तबीयत हुई, खा सकूँगा क्या ? चनेके बूट या होला खानेकी कभी इच्छा हुई, तो कहाँसे मिलेगा ? खैर, यह छोड़ो। कुछ नही तो कभी साँझको यहाँ आकर सिर्फ़ थोड़ा विश्राम करने ही बैठूँ, तो क्या यह कहा जा सकता है कि मुझे सुदामादाजी या कोई टोकेगा नहीं ?"

आप्पा सोच रहे थे। वहाँसे हिलनेकी उनकी इच्छा न हो रही थी। ऐसा लगता था, जैसे धरती माताने उनके पैर पकड़ रखे हों। आप्पाके मनमें आया, अब गाँवमें न जाऊँ, यहीं एक झोंपड़ी बनाकर रहूँ, जो हो सके करूँ और एक दिन इसी माँकी गोदमें पड़े-पड़े यह एकाकी जीवन समाप्त कर दूँ, इसी मिट्टीमें मिल जाऊँ,....हे भगवान् ! हे करुणानिधान ! वह दिन अब जल्द दिखा दो, जल्द दिखा दो !

दिशाएँ काली हो गयीं। अँधेरा तेजीसे फैलने लगा। मील-भरका फ़ासला तय कर गाँव कब आ गया, इसका आप्पाको पता तक न चला। गाँवकी हदमें पहुँचते ही उन्हें हरिबाबा मिल गये। ठहरकर उन्होंने कहा, "कौन, आप्पा है क्या ?"

"हाँ।"

"अंधेरेमे सूझा नहीं। खेतसे लौट रहे हो ?"

"हाँ।"

"अब शायद मन्दिर जा रहे होंगे, चलो, मै भी आ ही रहा हूँ।"

हरिबाबा आप्पाके हम-उम्र थे। भगवान्‌की उनपर सब कृपा थी। उनका वंश फला-फूला था। बेटा-बेटी, नाती-पोते आदिसे घर भरा हुआ था। उनके घरमे आनन्द-ही-आनन्द था। उनकी सब इच्छाएँ पूरी हो चुकी थीं। अब तृप्त होकर वह भगवान्‌के निमन्त्रणकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

दोनोके विवाह क़रीब-क़रीब एक ही समय हुए थे। दो-चार महीनोका ही फ़र्क रहा होगा। आप्पाको पहले लड़का हुआ था। हरिबाबाको पहले लड़की हुई थी। हरिबाबा दुःखी हुए थे, तो आप्पाने कहा था, "बुरा न मानो, हरी। लड़की हुई, तो क्या बिगड़ गया ? अबे, पहली बेटी, घी-रोटी !"

"नही रे आप्पा, यह तो शुरूमे ही रोजगारमे घाटा होने-जैसी बात हो गयी। लड़कीका क्या उपयोग ? तेरा बेटा जिस समय तुझे पालकीमे लेकर घूमने लायक़ होगा, मेरी बेटी मुझसे मुँह मोड़कर किसी परायेके घर चलती बनेगी....."

परन्तु हुआ सब उलटा ही।...खैर, भगवान्‌की मरजी।

मन्दिरमे आकर आप्पाने भगवान्‌के दर्शन किये। उन्हींकी उम्रके और भी कुछ लोग अपनी-अपनी पगड़ीका तकिया-सा लगाकर खम्भोंसे टिके बैठे थे। इधर-उधरकी बातें हो रही थीं। उन्होने आप्पासे पूछा कुछ, और आप्पाने जवाब दिया कुछ। हमेशाकी तरह आज भगवान्‌के पास वह कुछ देर बैठे नहीं, तुरन्त ही अपने घर आ गये।

उनके घर आते ही द्वारपर बँधे मवेशी हड़बड़ाकर खड़े हो गये और प्रेमसे रँभाने लगे।

"आ गया, आ गया, रे मेरे बच्चो !"

पास जाकर आप्पाने अपने गूँगे साथियोंको सहलाया, प्यार किया। उन्हे खानेके लिए भरपूर घास उनके सामने रख दी और उन्हे फिर सहलाया। सोना और राजाकी तरह होशियार बैल विरले ही मिलेंगे। ढलानपर भी लदी हुई गाड़ी लेकर ये सावधानीसे चलते है। गाड़ीपर दस आदमी भी बैठे हों, तो उन्हे ऐसा लगे, जैसे पालकीमे बैठे चले जा रहे हों। और यह गाय ! छह सालका बच्चा भी इसे दुह ले। कभी सींग न हिलायेगी। यह बछड़ा अभी छोटा है जरूर, पर सच मानो, बड़ा गुणी निकलेगा। आप्पाके घरकी घास व्यर्थ नही जायेगी। सभी जानवरोको आप्पाने बार-बार सहलाया। यह जानकर कि मालिकका हाथ आज कुछ जुदासा लग रहा है, वे जानवर भी आप्पाका हाथ अपनी खुरदरी जीभोसे बार-बार चाटने लगे। उन्हे सूँघने लगे। इन बैलोने आप्पाके लिए अपार परिश्रम किया था। इस गायने घूँचा भर-भरकर दूध दिया था। और आप्पा आज उन्हे दूसरोके हाथ बेच देनेवाले थे ! जिस नादमे आज तक उन्होंने अनाज और भूसा खाया, उस नादसे नाता तोड़कर उन्हे दूसरी जगह भेज रहे थे ! और वह भी उनकी ढलती उम्रमे !

किवाड़ खोलकर आप्पा घरमे घुसे। अँधेरा-ही-अँधेरा ! उनके जीमे आया कि इसी तरह अग समेटकर धरतीपर पड़ जाऊँ, रोशनीकी क्या जरूरत, बिछावनकी क्या आवश्यकता ?

परन्तु नहीं। रोजकी आदत कैसे छूटे ? सलाई जलाकर आप्पाने दिया जलाया। मद्धिम रोशनी फैली और उस उदास उजेलेमे नोना खायी दीवालें, ऊबड़-खाबड़ फ़र्श और बेबुहारी कोठरी, सब कुछ दिखायी दिया। यह सब स्वाभाविक ही था। आज कई वर्षोंसे किसी स्त्रीका हाथ यहाँ नहीं फिरा था। आप्पाकी पत्नी इस घरको लीप-पोतकर आईनेकी तरह सदा साफ़ रखती थी। ये कालिख खाये हुए बरतन उस समय अपनी गृहस्वामिनीके चेहरेकी ही तरह चमकदार रहते थे। अब कौन उनकी ओर

ध्यान देता ? मेहनत और शौकसे जमायी हुई और पुरखोंसे मिली यह सारी गृहस्थी गृहस्वामिनीके अभावमे अनाथ हो गयी थी।

रसोई-घरमे जाकर आप्पाने गगरीसे ढालकर लोटे-भर पानी पिया। खम्भेके नजदीक कम्बल बिछाया। दरवाजेको भीतरसे कुण्डी लगायी। और बिछावनपर पड़ रहे।

"बस, कलसे कोई झंझट नहीं रहेगी। सुबह उठकर खेत जानेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। मेरी भूमिका और मेरा नाता टूट जायेगा। जीवनमे अनेक कठिनाइयाँ आयीं, कई विकट प्रसंग आये, फिर भी मैंने अपनी धरती माताको कभी साहूकारके यहाँ गिरवी न रखा। उसपर कभी क़र्ज़-का बोझ न चढ़ने दिया। बेचना तो दूरकी बात। पुरखोंके समयसे अन्न देती आ रही इस भूमिकी मैंने भरसक सेवा की, बड़े जतनसे रखी और आज हाथ-पैर थक जानेके कारण उसे मै बेच रहा हूँ। अब मुझमे काम करनेकी ताक़त नही रही। उसे बेचकर जो रुपये मिलेंगे, अपने पास रखूँगा और जबतक आकाशसे बुलावा नही आ जाता, उसीसे अपनी जीविका चलाऊँगा। जीवनके अन्तिम दिन किसी तीरथमे जाकर बिता-ऊँगा। मेरी प्यारी धरती माता ! तुझे बेचकर मै अपना बूढा पेट चलाना चाहता हूँ, इसके लिए मुझे क्षमा करना ! कुछ भी हो, मैं कितने भी कारण पेश क्यों न करूँ, फिर भी मैं अपने मनमे खुद यह महसूस करता हूँ कि मैं कृतघ्न हो गया हूँ। ढलती उम्रमे तुझे दूसरेके हवाले कर देनेका पाप मैं अपने हाथसे कर रहा हूँ। माँ ! मैं कृतघ्न हूँ ! तेरे साथ धोखा कर रहा हूँ !"

सवेरा हुआ। कमरमे रुपयोंकी बसनी बाँध सुदामादाजी और उसका सुन्दर नौजवान लड़का गाड़ी दौडाते हुए आप्पाके घरके सामने आ रुके। बूढ़े कुरमी सुदामादाजीका चेहरा आज आनन्दसे खिल उठा था। आज उसने अपने प्यारे बैलोंको रंग-बिरंगी झूलोंसे सजाया था और खुद अपने सिरपर एक क़ीमती ज़रीदार पगड़ी बाँध रखी थी। अपने पूर्वजोंसे प्राप्त

हुई भूमिको उसने रक्षा ही न की थी, आज वह उसमे नयी ज़मीन खरीद-कर जोड़ रहा था। अपने बाल-बच्चे खुश रहे, इसका इन्तज़ाम कर रहा था वह।

दरवाजेपर आते ही उसने पगही खीची और गाड़ीसे नीचे कूदकर ज़ोरसे पुकारा, चलिए, "आप्पाजी !"

आप्पाका द्वार अभीतक बन्द था। रातके सोये आप्पा अभीतक जागे ही न थे।

पड़ोसका कलुआ अपने आँगनमे खड़ा दातौन कर रहा था। यह कुरमी उसके मुँहका कौर छीने ले जा रहा है, यह देखकर उसे बड़ा गुस्सा आया। घरके भीतर जाकर वह मन-ही-मन बड़बड़ाया, "सालेने ज़मीन बेची भी तो आन गाँवके कुरमीके हाथ, जैसे कि हम सब रिश्तेदार मर गये थे ! इस बूढे खूसटको शान्तिकी मौत न मिलेगी ! जानवरकी तरह चिल्ला-चिल्लाकर ही इसके प्राण निकलेंगे ! अरे बुड्ढे, मरनेपर तेरे मुँहको हमीं आग देंगे, यह सुदामादाजी न आयेगा !"

द्वारको बन्द देखकर सुदामादाजी आगे बढ़ा और दस्तक देकर बोला, "अरे, अभीतक सोये है क्या ? पन्तजी, उठिए। मै गाड़ी लेकर आ गया हूँ।"

परन्तु भीतर जरा भी हलचल न हुई। मुँहमे भरी पानकी लुगदी हाथपर लेकर सुदामादाजीने फेकी और साफ़ मुँहसे वह पुकारने लगा। फिर भी दरवाजा न खुला तो बैलोकी पगही पकड़कर खड़ा हो गया और उसने अपने लड़केसे कहा, "अरे, इस बूढ़ेको क्या हो गया है !"

वह तजुरबेकार कुरमी शकाकुल हुआ, तो उसका जवान लड़का कड़ी आवाज़मे बोला, "देखूँ क्या ? कहिए तो किवाड़ तोड़ दूँ ?"

"नहीं, नहीं ! यह कैसे होगा, बेटा ? ज़बरदस्ती किसीका दरवाज़ा तोड़नेका हमे क्या हक़ है ? उसके किसी रिश्तेदारको बुलाना चाहिए।"

और व्यग्रतासे दौड़कर उसका लड़का कलुआके दरवाजेपर गया और

चिल्लाया, "अरे भैया ! ज़रा बाहर तो आओ। देखो तो, तुम्हारे आप्पा-को क्या हो गया है ! बड़ी देरसे हम लोग पुकार रहे हैं। दरवाज़ा भीतरसे बन्द है। भीतरसे कोई आवाज़ ही नहीं आ रही है। आओ, ज़रा देखो तो !"

कलुआ लपककर बाहर आया। उसे शक हुआ कि आप्पा शायद ख़तम हो गया। इस विचारमे वह मन-ही-मन हर्षविभोर हो उठा। बुड्ढे-की लावारिस जमीन अब उसे ही मिलेगी, यह सोचकर उसके मनमे गुद-गुदी होने लगी। परन्तु उसने इस प्रसन्नताको दबा दिया और चेहरेपर चिन्ता, आशंका और दुःखका भाव दिखाता हुआ वह बाहर आया और बढ़कर दरवाज़ा तोड़नेकी कोशिश करने लगा।

तभी अचानक भीतरसे कुण्डी खटसे बजी और दरवाजा पूरा खुल गया। वृढे आप्पा दरवाज़ेपर अकडे हुए खडे थे। आनेवालोंको देखकर वह गरजे, "मै अपनी जमीन नही बेचूँगा, सुदामादाजो ! तुम लौट जाओ।"

इस अप्रत्याशित निर्णयसे सुदामादाजी बौखला गया। बोला, "आँऽ? इसका क्या मतलब ? आपने ही तो कहा था कि आज बैनामा करने चलेंगे ?"

"हाँ, कहा था। मैंने ही कहा था।" क्रोधसे काँपते हुए आप्पा फिर गरजे, "पर अब जो कह रहा हूँ वह भी तो मै ही कह रहा हूँ !"

"पर मैंने तो पूरी तैयारी कर ली है। साहूकारसे ब्याजपर रक़म लाया हूँ और आप अपनी बातसे मुकर रहे है ! आदमीकी बात एक होती है !"

"तुम बड़े हरिचन्द हो, मैं जानता हूँ मुझे तुम्हारे उपदेशकी ज़रूरत नही है। ज़मीन मेरी है और मैं उसे नहीं बेचता। तुम्हारा क्या जाता है?"

इसपर सुदामाका लड़का तैशमे आकर बोला, "अरे बुढ़ऊ ! अब किसके लिए रख रहे हो ज़मीन ? कौन लड़के-बाले है तुम्हारे पीछे खाने-वाले ? अब तो रामनाम लेनेका वक़्त आया। लोककी चिन्ता छोड़ अब परलोककी चिन्ता करो। लोभ-लालच छोड़ो।"

"अरे, हाँ-हाँ जा ! परलोककी चिन्तामे क्या मैं इतना कृतघ्न हो जाऊँ ? जब तू मरने लगेगा तो क्या अपनी माँको दूसरेके हाथ बेंच जायेगा ? मै कसाई नहीं हूँ । मै अपनी ज़मीन नही बेचूँगा, मवेशी नहीं बेचूँगा ! जमीन पड़ी रहे या मेरे जानवर भूखे रहे, तुझे इससे क्या वास्ता ? तू जा ! यहाँसे चलता बन !" और आप्पाने खड़ाकसे दरवाज़ा बन्द कर लिया ।

आकाशमे बादल उमड़ पड़े । जलसे भरी तेज़ हवा बहने लगी और रास्तेकी धूल और कूड़ा-कचरा चारों ओर फैलाने लगी । पेडोंकी फुनगियाँ ज़ोरसे हिलने लगी । यह सब पहला पानी आनेकी सूचना थी ।

बड़ी-बड़ी बूँदें धरतीपर तिरछी होकर कूद पड़ी । धूलपर उनकी पट-पटकी आवाज हुई । काली-काली, बडी-बड़ी बूँदें ! मिट्टीकी सोधी-सोधी सुगन्ध वातावरणमे भर गयी । किसानोंका रोम-रोम पुलक उठा ।

अंग सिकोड़े अपनी माँके पास खड़ा आप्पाका बछडा कान खड़ेकर इधर-उधर देखने लगा, और आप्पाके दिखायी देते ही धनुषकी तरह टेढे हुए पैरोसे दौड़कर पानीमे भींगता हुआ ओसारेमे चढकर आप्पाके पास जा खड़ा हुआ ।

कम्बल लपेटे बैठे हुए आप्पा वरुणदेवकी इस कृपाको सजल नेत्रोसे देख रहे थे । उन्होने बछड़ेको प्यारसे अपनी ओर खीचकर कहा, "पानी आ गया, बेटा ! अब आलसीकी तरह बैठे रहनेसे काम न चलेगा । चलो, जल्दी काममे लगें !

*

मोटर सर्विस

गाँवके दूसरे किनारेसे लगा हुआ इजा कुम्हारका घर था। घरके पीछे गाँवका नाला था। सामनेवाली पगडण्डी ढलानसे उतरती हुई नालेके पानी तक पहुँचती थी। घर बिलकुल साधारण था, यही बाँसकी दीवारें और ऊपर फूसकी छत। सामने उठने-बैठनेकी जगह। पीछे सहन, जिसमे छोटी-सी कुइयाँ और नीम तथा इमलीके पेड। घरके सामने गधे बाँधनेकी जगह और सड़कके किनारे नीमका एक छोटा-सा पेड़। इस पेड़के नीचे एक चबूतरा था, जो लीप-पोतकर सदा साफ़ रखा जाता था। इस चबूतरेके नज़दीक इजाप्पा बरतन बनाया करता था। दिन-भर काममे व्यस्त। पुष्ट शरीर, ऊँचाईमे थोड़ा नाटा और होठोंपर घनी मूँछें। उसे देखते ही लगता था कि यह मनुष्य खून और मांसका नही बना है, इसके शरीरमे आधारके लिए हड्डियोंके बदले लोहेकी छड़ें डाल दी गयी है; ठीक उसी तरह, जिस तरह कि सीमेण्टका भवन बनाते समय डाल दी जाती है; और ऊपर भी जैसे पक्का सीमेण्ट यों ही पोत दिया गया था और यह इमारत किसी अनाड़ी कारीगरने खड़ी कर दी थी, क्योकि उसमे सुन्दरता और सुडौलपन नामकी कोई चीज़ कही थी ही नहीं। सब तरफ़से कुघड़। इस प्रकारका यह इजाप्पा सिरमें कुछ भी लपेटकर नंगे बदन कभी घडे ठोकता हुआ, कभी मिट्टी सानता हुआ और कभी चाक घुमाता हुआ हमेशा अपने घरके सामने दिखायी देता था।

इजाप्पाके साथ उसके घरमे केवल दो प्राणी और थे। एक था उसका बेटा भोजा और दूसरी थी उसकी बहू। भोजा अपने बापपर किसी तरह भी न पड़ा था। अपने बापके हिसाबसे वह ऐसा लगता था, जैसे अच्छे, मज़बूत और मोटे ज्वारके पौधेमे एक छोटा-सा बारीक भुट्टा लगे या खूब

बढे और फैले हुए पेड़मे छोटा-सा रोग-ग्रस्त फल लगे। उसकी काया बिलकुल ही दुबली-पतली थी। भरी जवानीमें भी यह लड़का अबढ़के कारण लकड़ीकी तरह सूखा हुआ था। उसका चेहरा बिलकुल निस्तेज था। और तो और, मरदानगी और पौरुषके चिह्न, दाढी और मूँछें भी उसे अभीतक न फूटी थीं। बेढंगा, लम्बा-सा चेहरा, चपटी और गालोंपर फैली हुई नाक, बडा-सा मुँह, ऐसा चमत्कारपूर्ण रूप था उसका! बापकी तरह वह भी गाँवमें सदा नंगे बदन घूमा करता। पर यह उसे शोभा न देता था। लम्बी गर्दन, उभरी हुई कनपटियोंकी हड्डियाँ, बेमांसकी पसलियोंका ढाँचा और सिहुलेके दाग़। उसे देखते, तो लोग ताज्जुब करते। कहते, "यह क्या इजाप्पाका लड़का हो सकता है?"

भोजाकी औरत दोहरी देह और लम्बी बेलकी औरत थी। ऐसी कि भोजाको बग़लमे दबाये घूमती रहे। गेहुँआ रंग, भरा हुआ शरीर, नाक और आँखें सुन्दर और सुडौल। किन्तु सोकिया जवान पति पानेके कारण उसकी गोद अबतक सूनी थी। गोद नहीं भरी थी तो न सही, अभी कोई उम्र तो नहीं बीत गयी थी उसकी। किसी-किसीके बारह-बारह बरस बाद भी बच्चे होते है। और यह औरत सच्चरित्र और शीलवती थी। गाँवमे वह अधिक घूमती न थी। व्यर्थ ही मुँह उठाकर किसीसे बाते न करती थी। आप भली और अपनी गृहस्थी भली। घरका काम-काज करके वह ससुरके कामोंमे भी हाथ बटाती थी। घोड़ेकी लीद इकट्ठा करना, उसे मलना, खरहरा देना, आवाँके लिए इन्धन जमा करना, इस तरहके छोटे-मोटे काम वह करती रहती, पर जो भी करती खूब मन लगाकर करती थी। भोजा गधोंपर बाहरसे मिट्टी ले आता था। माल लेकर बाज़ार जाता था। अपनी दृष्टिसे वह भी पिताके काममे सहयोग दिया करता था। किन्तु उसका मन उन कामोंमे न लगता था। उनमे उसे कोई दिलचस्पी न रहती थी। मुँहमें सुरती भरकर चार यार-दोस्तोंमें बैठना, इधर-उधरकी फालतू गप्पें लड़ाना, गाँवके निठल्लों और लफंगोंके साथ बैठकर लोगोंको यह भास

कराना कि हम भी उनमें-से एक है, जो न करना चाहिए, ऐसा ही काम यह निकम्मा छोकरा किया करता था।

परन्तु इजाप्पा उसके इस बेढंगेपनकी ओर ध्यान न देता था। लड़का बराबरीका हो गया था। उससे वह क्या कहे? उसे क्यों दबाये? वह बिलकुल कोई काम ही न करता हो, सो बात भी न थी। छोटे-मोटे काम करता ही रहता था। ठीक है। बापके जीते-जी मौज कर ले। बापके बाद गृहस्थीका भार जब सिरपर पड़ेगा, तो आप ही सीधी राहपर आ जायेगा। जायेगा कहाँ? गाँवमें कुम्हार तो एक ही है न। और काम बहुत रहता है। दम मारनेकी भी फ़ुरसत नही मिलती। जिनके अन्नपर जीना है, उन किसानोंको घडे, नादें, तीज-त्यौहारके समय मिट्टीके बरतन देना, दीवालीपर दीयोंकी माँग पूरी करना, पोलाके दिन मिट्टीके बैल बनाना, यह सारा काम एक ही आदमीको करना पड़ता है, यह कोई हँसी-खेल तो है नही। जबतक मुझसे हो रहा है, मैं कर ही रहा हूँ। आगे यह सब उसे ही तो करना पड़ेगा। कबतक बचता रहेगा?

कुछ भी क्यों न हो, गाँवके छोरपर स्वच्छ घरवाले इस कुम्हारका परिवार अच्छा था। उसकी गृहस्थी ठीक तरह चल रही थी। यह नहीं, वह नहीं, यह चिन्ता उस घरमे न थी। और होती भी क्यो? सारे गाँवकी तरह उनकी आवश्यकताएँ भी कम थीं। गाँवमे जो अनाज पैदा होता था, वह उन्हे मिलता ही था। तिलहनसे तेल निकलवा लेता। मिरचें थीं ही। नालेके किनारेकी मिट्टी ऐसी थी कि उसे लाकर घर-खर्चके लिए काफ़ी नमक बनाया जा सकता था। गाँवमे किरानेकी कोई दूकान न थी। फिर पैसेकी ज़रूरत ही क्या थी? जो कुछ पैसा लगता, कपड़ोंके लिए लगता। गाँवका जुलाहा मोटे वस्त्र बुनकर तैयार कर देता था और पैसेके बदले यदि उसे अनाज दे दिया जाता, तो भी काम चल सकता था। इतनी सादगीका जीवन होनेपर चिन्ताएँ ही क्यों? बीसवी सदीकी प्रगतिसे बिलकुल अनभिज्ञ, एक किनारे बसा हुआ और अपनी दृष्टिसे समृद्ध वह छोटा-सा

गाँव खुशहाल था, और उस गाँवका एक अवयव, इजाप्पा कुम्हार भी गाँवकी दृष्टिसे सन्तुष्ट और सुखी था।

इसका मतलब यह नहीं कि उस गाँवमे असन्तोष था ही नहीं, मार-पीट कभी होती ही न थी, कोई किसीसे ईर्ष्या न करता, गरीबीका वहाँ राज न था, या सारा गाँव निष्पाप, सुखी और सन्तोषी था।

फलाँकी ज़मीनमे आठ मन ज्वार हुई और मेरी ज़मीनमे केवल छह मन ही हुई, इस प्रकारका असन्तोष वहाँ था। कठिन परिश्रम कर भूखसे व्याकुल मरद घर लौटता और उसे यदि तुरत गरम-गरम रोटियाँ खानेको न परोसी जाती, तो अपनी घरवालीको वह मार बैठता, इस तरहकी मार-पीट वहाँ थी। अमुक स्त्रीके एकके-बाद-एक बच्चे हुए जाते है और मेरे पेटसे अभीतक कुछ नहीं हुआ, इस तरहकी ईर्ष्या भी थी वहाँ। गाँवमे पाप था, सत्यका अभाव था, चोरियाँ भी होती थी। पर यह सब इतना बढा हुआ न था कि उसे भयंकर कहा जा सके। जहाँ खेत है, वहाँ घास होती ही है, परन्तु वह मूल फ़सलसे अधिक न थी। अभीतक वहाँ भलापन था, बड़ोंका आदर था, उनकी सलाह ली जाती थी, यदि किसीपर आपत्ति आती, तो पड़ोसी-धर्मके नाते दूसरे लोग खुशी और उत्साहसे उसकी मदद करते थे, फ़ुरसतके समय भगवान्का भजन होता था, जिसपर उपकार किया जाता था, वह उसे भूलता न था, सदा अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करता था और परायी स्त्रीको कुदृष्टिसे देखना पाप माना जाता था। लोग इन सब बातोंको अच्छी तरह समझते थे और उनका पालन भी करते थे।

और इसीलिए दूकान, शाला, सरकारी कचहरियाँ, साफ़-सुथरे रास्ते, ईंटोके मकान, लैम्प आदि न होते हुए भी वह छोटा-सा गाँव सुखी था। वहाँके कुटुम्ब अच्छे थे। इजा कुम्हारका सब ठीक-ठीक चल रहा था।

दूर बसे तहसीलके सदर मुकामसे एक कच्चो सड़क गाँव तक आती थी। एक बार अचानक कहीसे एक हुक्म निकला कि यह सड़क दुरुस्त की जाये। और काम शुरू हो गया। दोनों ओरकी मिट्टी निकालकर सीधी

रेखामें चौड़ी सड़कपर बिछायी जाने लगी। गढ़े और खन्दकें भरी जाने लगीं। यह मरम्मत इजाप्पाके घर तक पहुँची, तो लोग कहने लगे कि इससे भी आगे दूर रेलके स्टेशनवाले शहर तक सड़क दुरुस्त होगी। यह ऐसा एकाएक कैसे हो गया? कभी भी दुरुस्त न होनेवाली सड़कपर यह काम इतनी सरगरमीसे क्यों शुरू हो गया?

यह खबर इजाप्पाके कानमें थोड़ी देरसे पहुँची। अपने कामको छोड़, दूसरी किसी भी बातमें दिलचस्पी न रखनेवाला वह बूढ़ा कुम्हार सतर्क हो गया। सिरपर छोटी-छोटी टोपियाँ पहने हुए सरकारी कर्मचारी रस्सी और जंजीर लिये इस रास्तेमें क्यों घूमने लगे हैं? आज सैकड़ों वर्षोंसे घिसती-पिटती चली आयी इस सड़कको दुरुस्त करनेकी बात एकाएक किसे सूझ गयी? यह मामला आखिर है क्या?

साँझके समय तमाकू पीते हुए इस विषयमें उसने अपने बेटेसे पूछा। वह जानता था कि अपने कामोंकी अपेक्षा अन्य बातोंकी ओर अधिक ध्यान देनेवाला, निकम्मे लोगोंके संग बैठकर नाना प्रकारकी गप्पें हाँकनेवाला उसका यह जवान बेटा इस सम्बन्धमें उसे पूरी जानकारी देगा। और इसीलिए दीवालसे टिककर धुएँके बादल उड़ाता हुआ वह बोला, "क्यों, बेटा सुनता हूँ अपने गाँवसे जानेवाली सड़क दुरुस्त हो रही है?"

मुँहमें सुरती-भरे बैठा हुआ लड़का बैठे-बैठे ही द्वारके पास खिसका और पीक थूककर मुँह खाली करनेके बाद बोला, "हाँ, दादा, हो तो रही है सड़ककी मरम्मत।"

"कौन करा रहा है? किसके हुक्मसे?"

"और कौन करेगा? सरकारी हुक्म आया होगा।"

"अभीतक तो यह बात किसीको न सूझी थी। फिर अब क्यों?"

"यह तो मैं भी नहीं जानता। पर, दादा, दूसरे गाँवोंमें खबर है कि मोटर चलेगी।"

मोटर चलेगी, या ठीक क्या होनेवाला है, इजाप्पाको यह नहीं मालूम

था। वह रेल या मोटरमे कभी बैठा ही न था। परन्तु मेले या बाज़ारोमें घूमते समय उसने तेलसे चलनेवाली इन गाड़ियोको देखा था। एक गाँवसे दूसरे गाँव जानेके लिए घोडे-गाड़ी और पैरकी तरह यह वाहन भी काममे आता है। दाम देनेपर मोटरवाला मोटरमे बिठाकर जहाँ हम जाना चाहे, ले जाता है, इतना ही ज्ञान उसे था।

बुझी हुई चिलमकी जली राखको ज़मीनपर उलटते हुए वह बोला, "तो तेरा मतलब यही है न कि शहरसे वह लोगोंको लायेगी और हमारे गाँवमे छोड देगी ? यही न ?"

"नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है। तहसीलके सदर मुक़ामसे जिन लोगोंको रेलसे बम्बई-इजापूर जाना होगा, उन्हे लेकर वह सीधी मानखेड चली जायेगी।"

"और फिर ?"

"फिर वहाँसे रेलसे उतरे हुए मुसाफिरोको लेकर लौटेगी और उन्हें तहसीलके सदर मुक़ामपर छोड़ेगी।"

बूढ़े कुम्हारको थोड़ा-बहुत बोध हो गया। जो कभी नहीं दुरुस्त हुई, वह सड़क इसलिए दुरुस्त हो रही है कि उसपर मोटर-सर्विस शुरू होगी।

सरकारने मोटर-सर्विसका व्यवसाय अपने हाथमे ले लिया। अच्छी पक्की सड़कोंपर सरकारी मोटरें दौड़ने लगीं, तब प्राइवेट मोटर-मालिकोंका ध्यान छोटी-मोटी सड़कोंकी ओर आकृष्ट हुआ। वसीले भिड़ाकर, पैसा खर्च कर उन्होंने इन सड़कोको इतना सुधार लिया कि उनपर मोटरें चल सकें। लोगोंको सुविधा होगी, इसी बहाने इस राक्षसीको गाँवमे घुसा दिया। ये सब बातें यद्यपि समझमे न आयी थीं, फिर भी उस अनुभवी कुम्हार-को जो बात समझनी थी, उसे वह अच्छी तरह समझ गया। बोला, "ग़रीबोंसे पैसे ऐंठनेका रोज़गार है यह। और तो मुझे कुछ नहीं दिखता।"

भोजाको यह बात नही जँची। मोटरकी उपयोगिता उसे थोड़ी-बहुत

समझा दी गयी थी। उसने अपने पिताको समझाया, "लोगोंके पैसे खर्च होंगे, इसमें शक नहीं। पर सुभीता तो हो जायेगा। लोग एक गाँवसे दूसरे गाँव इस तरह आरामसे चले जायेंगे, जैसे पालकीमें बैठे चले जा रहे हों। ऊपरसे सामान भी रखकर ले जाओ।"

इसपर इजाप्पा हँसा। अपने पुत्रकी बुद्धिपर उसे हँसी आ गयी। बोला, "अरे गधे! आज तक एक गाँवसे दूसरे गाँव जानेके लिए क्या मोटरें ही थीं? चार-चार मन ज्वार हम तेरे चाचाजीके यहाँ पहुँचाते रहे, तो क्या उसे मोटरमें ले जाते थे? व्यर्थके चोचले हैं ये, और कुछ नहीं है। बेटा, मैं कहता हूँ, इसे ध्यानमें रख ले! मोटरका मालिक अपनी मोटर इस गाँवमें लाता है, सो इसलिए नहीं कि वह गाँवके आदमियोंको एक गाँवसे दूसरे गाँव पहुँचाये....."

"तो फिर किसलिए?"

"उसे रुपयोंसे भरकर अपने घर ले जानेके लिए।"

हाँ, इजाप्पाकी यही पक्की धारणा थी। चैत-कार्तिकमें गाँवमें कहींसे बन्दरवाले आते हैं, खेल दिखाते हैं और मनों अनाज ऐंठकर दूसरे गाँव चले जाते हैं। लंगोट कसकर नट आते हैं, चार उलटी-सीधी कुलाँचें लगाते हैं और अनाजसे झोली भरकर चले जाते हैं। दूर-दूरसे तमाशेवाले आते हैं, खेल-तमाशे दिखाते हैं और अनाज तथा पुराने वस्त्र ठगकर ले जाते हैं। जिस तरह ये कलाबाज़ अपने हाथका हुनर और सफ़ाई दिखाकर लोगोंका शरीरका पसीना बहाकर पैदा किया हुआ अनाज लूटकर ले जाते हैं उसी तरह यह मोटरवाला भी कोई नया खेल खेलकर लोगोंको नंगा कर देगा। नाँदिया बैलवाला अपना बैल नचाता है और यह अपनी मोटर दौड़ायेगा। सब मिलाकर सारा धन्धा लफंगेबाज़ीका, खुद अपना पेट भरनेका है, और कुछ नहीं है।

बूढ़ेकी यह बात भोजाको न जँची। वह बोला, "तुम्हारी अक़्लपर तो पत्थर पड़ गया है, दादा। तुम तो कुछ भी नहीं समझते। मोटर

आयेगी हमारी भलाईके लिए, हमारी सुविधाके लिए, हमें आराम पहुँचानेके लिए।"

ये बातें हो रही थीं। इसी समय बहू रोटी तैयार कर आ गयी। बाप-बेटेकी बातचीतमें बाधा देकर वह बोली, "चलो, उठो। रोटी खा लो। फिर बातें करना। रोटी ठण्डी हो जायेगी।"

और फिर बातचीत बन्द कर दोनों उठ गये।

गाँवमें मोटर आनेसे किसीको सुभीता मालूम हुआ, किसीको असुविधा मालूम हुई। इजाप्पाको मोटरवाला बन्दर नचानेवाले मदारीकी तरह लगा। परन्तु मोटर आनी थी, सो रुकी नहीं। आयी ही। सड़ककी मरम्मतका काम पूरा हो गया और फों-फों करती हुई वह गाँवमें आकर इजाप्पाके घरके सामने लगे नीमके पेड़के नीचे खड़ी हो गयी।

सुबहका समय था। खेत जानेवाले लोग उसकी आवाज़ सुनकर वहाँ इकट्ठे हो गये। मदारीका खेल देखनेके लिए लोगोंकी जिस तरह भीड़ हो जाती है, उसी तरहकी भीड़ इजाप्पाके घरके सामने लग गयी। किसीने डरते-डरते उसे हाथसे छूकर देखा। किसीने खड़े-खड़े ही भीतर झाँककर देखा। यह बैलगाड़ीसे तेज़ दौड़ेगी क्या? कमर-भर पानीके भीतर चल सकती है क्या? गाड़ीकी तरह इसके पहियोंमें हाल क्यों नहीं है? इस तरहकी बातें होने लगीं। तब कुम्हारका बेटा भीजा आगे बढ़ा और उसने लोगोंको धमकाया, "ए! दूर हो जाओ! अबे ओ! हाथ क्यों लगा रहा है? बिगड़ जायेगी, तो सारे घर-बारको बेचकर भी इसे ठीक न कर सकोगे, बेटा! इंजनका काम है, कोई दिल्लगी नहीं है।"

उसके घरके सामने मोटर खड़ी हुई है, इसलिए उसपर उसका विशेष अधिकार है, इस भावनासे वह सीकिया पहलवान गाँववालोंपर रोब दिखाने लगा। कुछ लोगोंको उसकी ये बातें अपमानजनक मालूम हुईं। अतएव उनमें-से किसी एकने कहा, "अबे ओ कुम्हारके बच्चे! तू क्यों फिजूल चिल्ला-चिल्लाकर अपना गला फाड़ रहा है। जा अपना काम देख!"

इसी समय मोटरसे नीचे उतरकर बीड़ीके कश खींचता हुआ ड्राइवर क्रोधसे बलबलाकर बोला, "ठीक तो कह रहा है वह ! अपना-अपना काम छोड़कर तुम लोगोंने यहाँ क्यों भीड़ लगा रखी है ? यहाँ कोई तमाशा हो रहा है क्या ? चलो, हटो यहाँ से !"

क्लीनरीके काममें कुशल, गन्दे कपड़े पहने एक चौदह सालका लड़का मोटरकी छतपर ताल दे रहा था। वह तावमें आकर नीचे उतरा और कुत्तेकी तरह लोगोंकी तरह झपटकर बोला, "दूर होओ ! एक तरफ़ हटो ! क्या चक्केके नीचे दबकर मरना है ?"

आठ-दस मुसाफ़िर भीतर बैठे थे। कपड़ोंसे वे भले आदमी लगते थे। जब उन्होंने देखा कि बाहर इस तरहकी बातें हो रही हैं, तो उन्होंने सभ्यता-पूर्वक ड्राइवरसे कहा, "ड्राइवर साहब, यहाँ कोई सवारी-ववारी तो है नहीं, फिर रुकनेसे फ़ायदा ? चलिए न जल्दी। हमें तीन बजेकी गाड़ी पकड़ना है।"

फिर क्लीनरने हैण्डिल मारा। ड्राइवरने स्टीयरिङ् व्हील घुमाया और चारों ओर धूलके बादल उड़ाती हुई मोटर चली गयी। कुछ उत्साही लड़के उसके पीछे-पीछे नालेके उस पार तक दौड़ते हुए गये।

इजाप्पा यह सब देखता हुआ खड़ा था। जब मोटर दृष्टिसे ओझल हो गयी, तो भोजा लौटा। देखा कि बूढ़ा हाथ पीछे बाँधे जाती हुई मोटरकी तरफ़ क्रोधसे देख रहा था। उसकी ठुड्डी गलेसे भिड़ गयी थी। आँखोंके नीचेका भाग हिल रहा था। भर्रायी हुई आवाज़में उसने बेटेको सावधान किया, "बेटा, उस मोटरवालेने उस चुड़ैलको हमारे घरके सामने क्यों खड़ा किया था ? उससे कह देना कि यहाँ कभी खड़ा न करे।"

भोजा एकदम चिल्ला उठा, "अरे, तो इसमें क्या हो गया ? क्या मोटर अपने साथ तुम्हारी जगह उठाकर ले जायेगी ? तुम्हारा क्या नुक़सान होता है ? बेकार क्यों चिल्ला रहे हो ?"

"भोजा, तू मुझे अक़्ल न सिखा। चुपचाप जैसा मैं कहता हूँ, वैसा

उससे कह देना।"

"अरे! तुम्हारा क्या नुकसान हो रहा है उसमे? कल कोई गाँव-वाला अपनी गाड़ीके बैल यहाँ बाँध देगा, तो क्या तुम मना कर दोगे उसे?"

"गाँववालोके बैलोंको मै अपने घरके भीतर भी बाँधूँगा। उन्हींका दिया अनाज तो खाता हूँ। और न भी खाता, तो भी बाँधता। क्यों? इसलिए कि जानवर भले बात न कर सकते हों, उनमे प्राण होते है। तेरी इस बेजान मोटरको खडे होनेके लिए आखिर क्यों छाँह चाहिए?"

जब बाप 'मै-मैं-तू-तू' पर आ गया और कुछ सुनता ही न था, तब भोजाने अपना अन्तिम अस्त्र निकाला। बोला, "क्या मेरा इतना भी हक़ नही है इस घरपर? तो फिर मै इस घरमे ही क्यों रहूँ? क्यों न बैरागी बनकर कही चला जाऊँ?"

जब बूढेने अपने इकलौते पुत्रकी यह घामड़पनकी बातें सुनीं, तो उसे बहुत दुःख हुआ। यह सारा परिश्रम वह किसके लिए कर रहा है? दिन-रात गिरस्तीमे किसके लिए खप रहा है? अपने बेटेके लिए ही न! यह सब-कुछ वह भोजाके लिए ही तो छोड़ जानेवाला है। और भोजा इस तरहकी बातें करे?

उसका नही, तो फिर किसका हक है? यह जो कुछ है, सब उसीका तो है। मेरा क्या धरा है यहाँ? मै तो अब चन्द रोजका मेहमान हूँ। यह सारा राज उसीको तो भोगना है। फिर क्या मैं उसे कभी कह सकता हूँ कि इस घरमे उसका कोई हक नही है? छिः, ऐसा मै कभी न कहूँगा। "भोजा, मेरे बेटे! अरे, यह सब तेरा ही तो है। तेरे ही लिए तो मैने यह सब कमाया है। यह घर, यह जमीन, ये जानवर, इस घरकी हर छोटी-बड़ी चीज़ सब कुछ तेरा ही है। सच पूछा जाये, तो अब इस घरकी किसी चीज़पर मेरा कोई हक़ ही नही रहा। पर मैंने तुझे डाँटा, तो तेरे भलेके लिए ही, तेरे कल्याणके लिए ही। मेरा अपना यही ख़याल है और मुझे यही लग रहा है कि हमारे गाँवमे जो यह नया खेल आया है, सो हमे

लूटनेके लिए ही आया है। यह मोटर गाँवमें बीमारियाँ लायेगी। बुरे मनुष्योंके गन्दे बीज लायेगी, इसे तो हमे दूरसे ही प्रणाम करना चाहिए। अपने घरके सामने इसे खडे होनेके लिए स्थान देना घरमे चोर घुसाने-की तरह ही है। बेटा, तुम इस झंझटमे न पड़ो, तो अच्छा। इस बूढेकी मान लो। न मानो तो तुम्हारी मरज़ी। तुम घरके मालिक हो। भला-बुरा सोच-समझ सकनेकी तुम्हारी उम्र है। तुम अपने मालिक खुद हो। जो कुछ कहना है, मै एक बार कहूँगा, फिर दोबारा कभी न कहूँगा। तुम जानते ही हो कि मै वैसे भी कम ही बात करता हूँ। इतनेपर भी यदि तुम अपनी ज़िद न छोड़ोगे, तो फिर तुम हो और तुम्हारी क़िस्मत है।"

इसके बाद वह स्वाभिमानी बूढा लड़केसे अधिक न बोला। उसने मोटरके बारेमे अपने लड़केसे फिर कभी कोई बात न की।

मोटरका आना-जाना नियमित रूपसे शुरू हो गया। वह रोज़ इधरकी सवारियाँ उधर और उधरकी इधर छोडने लगी और आते-जाते कुम्हारके घरके सामने नीमके पेड़के नीचे खड़ी रहने लगी।

शुरू-शुरूमे गाँवके मुसाफ़िर उसे न मिले। परन्तु जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, बैलगाड़ी और घोड़ा-गाड़ी आदि सवारियोंकी तरह ही मोटर भी गाँववालोंके लिए परिचित हो गयी। फिर कोई बाज़ार जानेके बहाने मोटरका मज़ा चखने लगा। काम-काजके लिए शहर पैदल जानेके बजाय चार आने फेंककर मोटरसे जाना उन्हे अच्छा लगने लगा। इस तरह होते-होते औरतें भी सकोच छोड़कर मोटरमे बैठने लगीं। दूधके घडे, मक्खनके बरतन और सब्ज़ी लेकर शहरमे बेचनेकी उन्हें चाट लग गयी। आवागमन सुलभ हो जानेके कारण गाँवकी हर एक चीज़, अनाज, प्याज़, बैंगन, नीबू, अमरूद आदि गाँवमे नही ठहर पाते थे। लोगोंको रुपये कमानेकी धुन सवार हो गयी। अपने बच्चोके मुँहका छुड़ाकर औरतें शहरके होटलोंको दूध बेचने लगीं। इससे गाँवके बच्चे दुबले और कमज़ोर हो गये। उनका शरीर पहले-जैसी तेज़ीसे न बढ़ता था। घरमें चटनी-रोटी

खाकर बगीचेवाले अपना सारा माल शहरोंके बाज़ारोंमें भेजने लगे। इससे गाँवमें चार हरी मिर्च पाना भी दुश्वार हो गया। थोड़ी-सी ज्वार शहर ले गये कि रुपये मिलने लगे। इसलिए बड़े-बड़े काश्तकार भी सूम हो गये। किसीकी जरूरतपर दो-चार सेर भी अनाज देना अब भार-स्वरूप होने लगा। मुरव्वत बनाये रखनेके लिए वे झूठ बोलने लगे। घरमें अनाजकी कोठी भरी हो फिर भी गरदन हिलाकर इनकार करते। यह ध्यानमें आते ही गरज-बावला चिढ़ पड़ना और कहता, "ठीक है भैया, अगर नहीं है तो न सही। कभी हमारा भी मौका आयेगा।"

गाँवकी सेवा करके पेट भरनेवाले नाई, धोबी, बढ़ई, लुहार आदि लोगोंको उनके जायज हक देनेसे भी काश्तकारोंने अपने हाथ खींच लिये। इसलिए ये लोग रुष्ट रहने लगे, काममें ढिलाई करने लगे। यह देख, और अपनी ऊँचाईका खयाल कर काश्तकार इन लोगोंको धमकाने-डराने लगे। इसके फलस्वरूप गाँवमें गलतफहमियाँ, झगड़े और अस्वस्थता फैलने लगी। चाँदीके टुकड़े इकट्ठा करनेकी एक बाजारू प्रवृत्तिने सब ओर जोर पकड़ लिया। और फिर क्षुद्रता, स्वार्थ आदि धीरे-धीरे आने लगे, ठीक उसी तरह, जिस तरह एक रोगसे अनेक रोग उत्पन्न होते रहते हैं। मैं बड़ा, वह छोटा; वह बड़ा, मैं छोटा; वह मेरी क्या बराबरी कर सकता है, हाँ, वह चाहे तो मेरी बराबरी कर सकता है, इस प्रकारकी बातें जो नहीं होनी चाहिए थीं, अब आप-ही-आप बढ़ने लगीं।

वह चुंडैल बाहरसे क़िस्म-क़िस्मके लोग लाकर गाँवमें छोड़ने लगी। यह कौन? साड़ियाँ बेचनेवाला। पीठपर भारी गट्ठर लादे घर-घर फेरी लगाने लगा। कपड़ोंके नये-नये नमूने दिखाकर उसने ग्रामीण बालाओंको नज़रें बाँध दीं और एक-दो मन गल्ला समेटकर शामकी मोटर पकड़ी। यह कौन? मद्रासी मोती बेचनेवाला। नक़ली मोती उसने बेचे, पति-पत्नीमें लड़ाई करा दी और अपनी जेब गरम कर कानकी बाली हिलाता हुआ शामकी मोटरसे दूसरे गाँवको रवाना हो गया। और एक फल बेचने-

वाला आ गया, एक ज्योतिषी आया, नाटकवाले आये, रासलीला और नौटंकीवाले भी आये। अजी साहब, जिन्हें न आना चाहिए था, वे भी आये। जो कभी न आये थे, उनके लिए यह कठिन मार्ग मोटरने सुगम कर दिया और दूधके पात्रमें नमककी डली गिर पड़े, इस तरह गाँवकी हालत हो गयी। सारा गाँव बिगड गया और इस तरह कि इस कानकी खबर उस कानको न हुई। बडे बूढे लोग कभी बिगड़कर कह उठते, "सारा गाँव बिगड गया। पहलेकी कोई बात ही नहीं रह गयी है।"

परन्तु यह क्यों हुआ, किस कारणसे हुआ, यह उन्होंने नहीं सोचा। इसका कोई विचार उन्हें न था। उनकी रायमें तो कलजुग आ गया था। लोग आप ही बिगड गये थे, उसी तरह, जिस तरह कि पेडपर फल आप-ही-आप सड जाता है। पर बूढा इजाप्पा अपने मन-ही-मन समझ चुका था कि यह सारी उस चुड़ैल मोटरकी ही करतूत है, इस सारी विषकी गाँठ वही है। परन्तु इसे मानेगा कौन? मोटर आनेसे गाँव बिगड़ गया, यह बात कौन सुनेगा? कोई न सुने, परन्तु एक दिन वे सब महसूस करेंगे कि जो इजाप्पा कुम्हार कहता था, वही सच है।

जब मोटर खूब चलने लगी और शहराती आने-जाने लगे, तब सखाराम ड्राइवरने भोजा कुम्हारको एक सुन्दर बात सुझायी। सिरपर तिरछी काली टोपी लगानेवाला, सफेद धोतीपर काले बूट पहननेवाला, गलेके आस-पास हमेशा बुदकीदार गुलूबन्द लपेटे रहनेवाला वह घाघ ड्राइवर भोजरामसे बोला, "मालिक, आपके गाँवमें हम लोगोंको बड़ी तकलीफ़ होती है।"

मालिक कहकर सम्बोधित करनेके कारण खुशीसे फूलकर कुप्पा हुआ भोजा बोला, "तकलीफ़? क्या तकलीफ़ है, बताओ। हम उसे दूर करेंगे।"

"वही तो कहता हूँ। अजी, मोटरमें जिस तरह पेट्रोल भरना पड़ता है न, उसी तरह हम लोगोंको बार-बार अपने पेटमें चाय भरनी पड़ती है।"

"फिर इसमें क्या बड़ी बात है? जरूरत हो, तो हमारे घरमें आ

जाया करो और माँग लिया करो। तुम इसे भी अपना ही घर समझो।"

"नहीं, नहीं यह बात कैसे होगी ? भाई, हम है रोजके आने-जाने-वाले। हर बार तुम्हे तकलीफ देना ठीक नही।"

"इसमे तकलीफ काहेकी है, जी ? तुम बेतकल्लुफीके साथ माँग लिया करो।"

"इससे तो यह अच्छा होगा कि तुम एक होटल खोल दो। इससे तुम्हे आमदनीका एक ज़रिया हो जायेगा और साथ-साथ मुसाफ़िरोको भी आराम मिलेगा।"

ड्राइवरने एक चिनगारी छोड दी और भोजा सुलग उठा। होटल खोलनेके लिए पूँजीकी ज़रूरत थी। उसने इधर-उधरसे भिड़ाकर बड़ी कठिनाईसे कुछ रुपये जमा किये। फिर चार सेर चीनी, चायका पैकेट और चार-पाँच कप प्लेटें आदि सामान जुटाकर उसने अपना होटल शुरू कर दिया।

अपना काम धन्धा छोड़कर वह गप्पी छोकरा चूल्हा फूँकने, पानी उबालने और लोगोके जूठे बरतन साफ़ करने लगा। इतने दिनों जो लोग कुम्हारके घरके सामने नीमके तले खडे रहा करते थे, वे अब उसके घरके भीतर आकर बैठने लगे। इजाप्पाका स्वच्छ घर रात-दिन जलनेवाले चूल्हेके धुएँसे काला पड़ चला। चायकी काली पत्ती और राख फर-फर चलनेवाली हवाके साथ उडकर घर-भरमे फैलने लगी। बिखरी हुई चायके दाग़ोंपर मक्खियाँ भिनभिनाने लगी। चाय पीनेके बाद ग्राहक घड़ी-भर बैठते, बीड़ियोके कश खीचते और पान खाकर थूकते। थूककी इन पिच-कारियो और जली हुई बीड़ियोके टुकडोके कारण इजाप्पाके घरकी सुन्द-रता और रौनक़ चली गयी। इजाप्पाकी बहू जितना दो हाथोसे हो सकता था, करके इस गन्दगीको साफ करती थी, लेकिन इस परिस्थितिमे घरको पहले-जैसा बनाये रखना उसकी ताकतके बाहर था। घरमे हमेशा पराये लोगोंका आना-जाना बना रहनेके कारण उसे घरके भीतर ही घुस-

कर बैठे रहना पड़ता था। बाहर निकलनेमे संकोच होता।

इजाप्पा यह सब खुली आँखोंसे देख रहा था। मन-ही-मन कुड़मुड़ा रहा था, जल रहा था। उसका घर इस प्रकार बाज़ार बन जाये, उसका बेटा आबाई धन्धा छोड़कर यह ओछा रोज़गार करे, यह उस बूढेको बिलकुल पसन्द न था। वह इसमे अपनी मान-हानि समझता था। पर वह कुछ कहता न था। अब फिर कभी न बोलूँगा, यह उसने निश्चय कर लिया था। शब्दका जहाँ मूल्य हो, वहीं उसका उपयोग करना चाहिए। अपनी इज्जत अपने ही हाथमे रखनी चाहिए। इस तरहके विचारोंवाला वह बूढा कुम्हार मुँहमे कील ठोंककर मौन बैठा हुआ था। और बापकी तुलनामे एक कौडीकी भी अक़्ल न रखनेवाला भोजा बड़े उत्साहसे होटल चला रहा था। इस नये रोज़गारमे उसे अच्छा फ़ायदा हो रहा है, मोटर उसके घरके सामने खड़ी होती है, ड्राइवर होटलमे आकर बैठता है, इन सब कारणोंसे गाँवमे उसका सामाजिक स्थान ऊँचा उठ गया है, इस तरह-की धारणा भोजाकी हो गयी थी।

ड्राइवर, क्लीनर और मुसाफिरोंके साथ गाँवके कुछ निठल्ले लोग भी भोजा कुम्हारके होटलमे चाय पीनेके लिए इकट्ठा होने लगे। ये लोग वहाँ घण्टों फालतू बातें करते रहते थे।

भोजाने अपने होटलमे चायके साथ ही खारे सेव, भजिया आदि चटपटे खाद्य-पदार्थ भी बिक्रीके लिए रखे। बीड़ी और माचिस भी वह बेचने लगा। उनकी बिक्री धड़ल्लेसे होने लगी। सुबहसे शामतक उसका होटल कभी ग्राहकोंसे ख़ाली न रहता था। फिर तो बेचारी गृहलक्ष्मीको, इजाप्पाकी बहूको, लोगोंकी नजरें बचाकर घरमें भी घूमना-फिरना मुश्किल हो गया। घरमे इस तरह हमेशा बाज़ार लगा रहनेके कारण उसका संकोच कम हो गया। कभी पति बाहर जाता और उसकी गैरहाज़िरीमे ग्राहक आते, तो उन्हे चाय तैयार कर वह देने लगी। इस तरह होते-होते ग्राहकके साथ बातें करना भी उसे ज़रूरी हो गया। अन्य धन्धोंकी तरह

इस धन्धेमे भी पत्नीको पतिकी सहायता करनी चाहिए, इस बातको महसूस कर वह देवी भी धीरे-धीरे हर काम करने लगी। इस तरह कुम्हारकी बहूका पराये पुरुषोंसे परदा करना हट गया। बिलकुल अनजाने वह धीरे-धीरे बदलने लगी। इस धन्धेके लिए आवश्यक बेमुरव्वती, निर्भयता, आज़ादी और फिर थोड़ा छिछोरापन, ये सब बातें उसमे भी आने लगीं। और जैसे-जैसे ये बातें आने लगीं, वैसे-वैसे होटलकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। अब यह घर सिर्फ़ चाय पीनेका होटल न रह गया। वह कुम्हारका घर अब निकम्मे और फालतू लोगोंके बैठनेका एक अड्डा बन गया। फिर भी बूढ़े इजाप्पाने अपने बेटेसे कुछ भी न कहा। सन्तापके कारण पैदा हुआ उसका मौन दिन-दिन अधिक दृढ बनता गया।

होटल शुरू हो गया। परन्तु सेवा-वृत्तिसे अपनी जीविका चलानेवाले परिवारमे जन्म ग्रहण करनेवाले भोजाको बनियेके धन्धेका ज्ञान कहाँसे हो सकता था? लोग आते, चाय पीते, नाश्ता करते, बीड़ोंके कश खींचते और फिर कहते, "भोजरामजी, यार, आज पैसे नही लाये। बाज़ारके दिन दे देंगे।" और 'आज नकद कल उधार'के तत्त्वसे पूर्णरूपेण अनभिज्ञ भोजा नाँदिया बैलकी तरह गरदन हिला देता। किसीपर दस आने, किसी पर रुपया, किसीपर पाँच रुपये, इस तरह उधार रहने लगा। उधार बढ़ता गया। अब माल लानेके लिए पूँजी कहाँसे आये यह कठिनाई भोजाके सामने उपस्थित होने लगी। और फिर वह भी चीनी, चाय, दूध आदि आवश्यक चीजें उधार लाने लगा। परन्तु यह कितने दिनो तक चल सकता था? लोग अपना उधार वसूल करनेके लिए भोजाकी धोती पकडने लगे, और उनसे सताया हुआ भोजा गाँवके उन लोगोंको धमकाने लगा, जो उसके क़र्ज़दार थे। घर-घर जाकर वह तकरार करने लगा, भले-बुरे शब्द कहने लगा। इससे गाँवके लोग चिढने लगे, पैसा देना तो दरकिनार, उलटे कुम्हारको ही खरी-खोटी सुनाने लगे। किसीके न लेनेमे और न देनेमे रहनेवाला कुम्हारका घर गाँवमें अप्रिय होने लगा। अप्रिय ही नहीं,

गाँववाले कुम्हारके घरके प्रति वैर-भाव रखने लगे। और फिर भी इजाप्पा कुम्हार खामोश रहा, अपने गधेकी तरह ही, जो मिल जाता था, खा लेता और चुपचाप अपना काम करता रहता। जो होना था, उसने वह होने दिया। उसे होते देख उसे दुःख हुआ। बहुत कड़ा निश्चय करना पडा। बहुत बरदाश्त करना पड़ा। उस जानकार बूढ़ेने अपने बेटेको समयपर ही क्यों न रोका ? उसकी आँखोंने यह सब देखते हुए पलकें कैसे बन्द कर लीं ? ढलानपर चलनेवाली और तेज़ीसे गर्तकी ओर बढ़ रही यह गाडी उसने अपने मज़बूत हाथोंसे क्यों नहीं रोक ली !

इतना सब होते हुए भी इजाप्पा चुप रहा। उसने बहूसे भी कुछ न कहा, न पुत्रको ही डाँटा। गाँवके लोगोसे प्रार्थना नहीं की। अपने बाद घरका मालिक बननेवाले अपने बेटेको उसने मनमाना करने दिया।

और दिन बीतते गये। मोटर अपना काम करती रही। गाँव बिगड़ता रहा। इजाप्पाका घर सुखकी ओरसे दुःखकी ओर बड़े वेगसे बढता गया। कुम्हारकी बहू ढीठ हो गयी। ग्राहकोंको चायकी प्याली देते समय किसीके हाथसे उसका हाथ छू भी जाता, तो चिन्ता न होती। कोई ग्राहक यदि उससे छिछोरपनकी बातें करता, तो वह भी उसी तरहका जवाब देती। साधारणतः जो शब्द औरतोंके मुँहसे न निकलने चाहिए और यदि निकलें भी तो लज्जित-भावसे एकान्तमे सिर्फ अपने पतिके ही सामने, ऐसे शब्दोंको भी वह औरत चार आदमियोंके बीच बेधड़क अपने मुँहसे निकालने लगी। सिरपर तिरछी टोपी लगानेवाला, जुल्फ़ोंवाला, कलाईपर बड़ी घड़ी बाँधनेवाला और गलेमें सोनेकी जंजीर पहननेवाला सखाराम ड्राइवर इजा कुम्हारकी बहूसे बातें करते-करते अब आँख भी मारने लगा। फिर भी यह उसे बरदाश्त हो जाता था। कभी सखाराम ड्राइवर उसे चोलीके लिए सुन्दर कपड़ा या एकाध फैशनेबिल साड़ी उपहारमे देना चाहता, तो उन्हें स्वीकार करनेमें उसे कोई संकोच न मालूम होता। उसे यह अच्छा ही लगने लगा। और सखाराम उसकी पत्नीको

'भाभी' कहता है, बिलकुल अपने घरके ही एक व्यक्ति-जैसा व्यवहार करता है, उसके कोई भाई नहीं है, यह अभाव अपने व्यवहारसे दूर करता है, ऐसा कह-कहकर इजा कुम्हारका बेवकूफ लड़का अपने पिताका खून पीता रहता और खुद कीचडमे फँसता जाता।

इजा ! अरे भले आदमी ! अब भी उसे रोक ले ! गुस्सेमें आकर तूने जो मौन धारण किया है, कम-से-कम उसे अब तो तोड ! अपने ही कर्मोंसे यह छोकरा नाशकी ओर जा रहा है ! इसे अब भी सँभाल !

शाम हो गयी थी। दिये जल गये थे। खेतोंसे लोग घर लौट आये थे। नजदीकके गाँवमे इजा कुम्हारका लड़का उधार वसूल करने गया हुआ था। वह अभी तक नही लौटा था। ईंधन एकत्रित करने गये हुए बूढे इजाप्पाने अभी तक गाँवकी सरहदमें प्रवेश न किया था। और सुबह गाँव-से गयी मोटरके लौटनेका वक़्त हो गया था।

कुम्हारके घरमे लालटेन जल रही थी। कुम्हारकी बहू घरमे अकेली थी। वह भीतर-बाहर आ-जा रही थी। चूल्हेपर उसने चायका पानी उबलनेके लिए रख दिया था, क्योंकि अब मोटर आनेवाली थी। ससुर बाहर था। पति अभी तक न लौटा था। कुम्हारकी बहूको ही होटल सँभालना था। उसका रूप निखरा हुआ था, रूपवतियोंमे भी जो खिलकर दिखे, ऐसी वह सुन्दरी भीतरके अँधेरे कमरेसे बाहर लालटेन टँगे बरामदे-मे आती थी और बरामदेसे उतरकर सड़कपर नीम तले जाती थी और पूर्व दिशाकी ओर ताकती हुई थोड़ी देर वही खड़ी रहती थी। फिर भीतर जाकर चूल्हेके पास बैठती थी। चूल्हेकी लकड़ियाँ बाहर खीचकर आँच कम करती थी, और थोड़ी देरमे फिर तेज़ कर देती थी। पानी उबल रहा था और अभी तक मोटर नहीं आ रही थी। आग व्यर्थ जा रही थी। पानी उबल-उबलकर अब भाप बनकर उड़ना चाहता था। चीनी और चायके बर्तन भरे हुए थे। कप और प्लेट सजाकर तैयार रखे थे। और मोटर अभी तक नहीं आ रही थी। अस्थिर-सी कुम्हारकी बहू रह-रहकर

भीतर-बाहर हो रही थी।

और फिर ऐसा लगने लगा कि घर्र-घर्र-सी एक धीमी आवाज़ आ रही है। कान लगाकर ध्यानसे सुननेपर विश्वास होने लगा कि वह मोटरकी ही आवाज़ है। यह आवाज़ हो ही रही थी कि दूर सिरेपर प्रकाश दिखने लगा। काले आकाशकी पार्श्व-भूमिमें सफ़ेद, स्वच्छ प्रकाश स्पष्ट पहचाना जाने लगा। घर-घराहट अधिक स्पष्ट हो गयी। प्रकाशके सिरेपर जगमगानेवाले दो लैम्प दिखने लगे। अभी तक सिर्फ़ घर्र-घर्रकी आवाज़ आ रही थी, परन्तु अब बीच-बीचमें हॉर्न भी चिल्लाने लगा। आ गया, उजेला नजदीक आ गया। पेड़-पौधोंपर प्रकाश नाचने लगा। उलटी दिशामें जानेवाली मवेशियोंकी आँखें हीरेकी तरह चमकीं और उनके अङ्ग भी चमककर तुरन्त अदृश्य हो गये। घुमाव लेकर मोटर नालेमे उतरी। आवाज़ बढी। प्रकाशकी चमक कुम्हारके घरपर पड़ी। लालटेनकी आँखें चौंधिया गयीं। आ गयी। मोटर कुम्हारके घरके सामने लगे नीमके तले आकर खडी हो गयी, इस तरह खड़ी हो गयी जैसे उसकी आखिरी मंजिल आ गयी हो। सब मुसाफ़िर सीधे तहसीलके सदर मुक़ाम तक जानेवाले थे। इसलिए कोई सवारी न उतरी। जल्दी-जल्दी सिर्फ़ सखाराम ड्राइवर उतरा। पैरोंके फैन्सी बूट बजाता हुआ वह कुम्हार-के होटलमे आया।

"क्यों, मालिक? लाओ, लाओ चाय ले आओ जल्दी। रुकनेका बिलकुल वक्त नहीं है।....आँ? कोई नहीं है क्या?"

और अँधेरे कमरेके द्वारसे कुम्हारकी बहू मीठे स्वमे बोली, "है क्यों नहीं? आइए न!"

"कहाँ गये है भोजरामजी? और, दादा भी नहीं दिख रहे है?"

"दोनों बाहर गये है। आइए न!"

धीमी, चोरकी तरह आवाज़में कुम्हारकी बहूने कहा और सखाराम ड्राइवर बिल्लीकी तरह अँधेरे कमरेमें घुस गया। दीवारसे लगकर खड़ी

हुई उस औरतको उसने एकदम बाहोंमे जकड़ लिया और उसका मुँह ऊँचा उठाकर उसने जी-भर चूमा फिर मुँह हटाकर होंठोंपर जीभ फेरी और फिर·····

और दूसरे ही क्षण इजा कुम्हारके मजबूत हाथोने सखारामकी गरदन पकड़ ली। उन लोहेके हाथोंकी ऐसी ज़बरदस्त पकड़ थी कि सखाराम चीं भी न कर सका। फिर खींचता हुआ वह उसे बिलकुल बाहर ले आया और एक शब्द भी न बोलकर मिट्टी खोदनेके फावड़ेसे ड्राइवरको पीटना शुरू कर दिया। उस मारकी पीड़ासे सखाराम बैलकी तरह चिल्लाने लगा। मोटरमे बैठे हुए मुसाफ़िर डरसे अपने स्थानपर बैठे-बैठे ही सिहरने लगे। गरदनपर छुरीका प्रहार होते समय बकरा जिस तरह चिल्लाता है, उसी तरहकी एक चिल्लाहट सारे गाँवमे सुनायी पड़ी। नज़दीक-पासवाले लोगोंके कलेजे टूक-टूक हो गये। परन्तु इजाने अपना हाथ न रोका। वह उसे मारता ही रहा। सखारामकी हड्डियाँ टूट गयीं। अब वह न चिल्लाता था, न हिलता था, मरा-सा पड़ा हुआ था। फिर भी क्रोधसे पागल हुआ इजाप्पा उसे अपने दोनों पैरोसे इस तरह रौद रहा था, जैसे मिट्टी रौद रहा हो। फावड़ेसे जिस नरह मिट्टी तोड़ते है, उसी तरह वह सखारामको तोड़ रहा था।

लोग समझ नहीं पा रहे थे कि यह भयंकर मामला आखिर क्या है। सब-कहीं अँधेरा होनेके कारण कुछ भी ठीक तरह दिखायी नहीं दे रहा था। फिर भी मोटरमे बैठे हुए मुसाफ़िर भयसे चिल्ला पड़े। और फिर सखारामको वहीं छोड़कर, इजा मोटरकी तरफ़ झपटा। हाथका फावड़ा ऊपर उठाकर वह उसपर टूट पड़ा। और अपने गाँवका, अपने घरबारका, अपने बहू-बेटेका सर्वनाश कर देनेवाली उस डायनपर वह ताबड़तोड़ फावड़े बरसाने लगा। खन्नसे सामनेका शीशा टूट पड़ा। उसके टुकड़े इधर-उधर बिखर गये। लैम्प फूट गये।····मुसाफ़िर भयसे चीखते नीचे उतरे और सिरपर पैर रखकर भागे। इजाके हाथका फावड़ा टूटकर टुकड़े-टुकड़े

हो गया, तो उसने बड़े-बड़े पत्थर उठाये और उन्हे वह मोटरपर जोर-जोर-से फेंककर मारने लगा। अन्तमे पसीनेसे लथपथ, गुस्सेसे थर-थर काँपता, ज़ोर-ज़ोरसे हाँफता वह बलिष्ठ बूढा अपने घरमे आया और ज़मीनपर चुपचाप पड़ रहा।

अब गाँवकी रंगत बिलकुल बदल गयी है। मोटर सर्विस नियमित रूपसे जारी है। भोजा कुम्हारका होटल बन्द हो गया है। वह जीविका-के लिए गाँव छोड़कर शहर जानेकी तैयारी कर रहा है। और नीमके तले बैठकर बरतन बनानेवाला, रात-दिन अपने काममे व्यस्त रहनेवाला इजाप्पा कुम्हार सखाराम ड्राइवरकी हत्या करनेके कारण फाँसीपर लटका दिया गया।

इजाप्पा ! पगले ! प्रचण्ड वेगसे आनेवाले यन्त्रको रोकनेके लिए तूने क्यों व्यर्थ ही अपने प्राणोंकी बाजी लगायी ?

*

*

धार

अधबुना नीला स्वेटर एक तरफ़ रखी तिपाईपर पड़ा था। पैरोके पास 'टाइम्स' रखा था। सामनेकी मेज़पर घडी टिकटिका रही थी और अलमायो हुई शालिनी आराम-कुरसीपर बैठी थी। उसे बिलकुल अच्छा नही लग रहा था। बुनने और पढ़नेमे मन नहीं लगता था। नींद नहीं आ रही थी और स्वस्थ बैठा भी नही जाता था।

फूलदानके बासी फूलोंकी तरह वह दिख रही थी। आराम-कुरसीके नये कपडेका रंग लाल था और उसपर गहरे नीले रगकी धारियाँ थी। गोरी शालिनी सफ़ेद वायलकी साडी और ब्लाउज़ पहने हुई थी। स्वच्छ पैरोंको एकपर-एक रखे और हाथ सीनेपर रखकर खुले हुए दरवाजेसे वह सामने देख रही थी। अप्रैलकी गरम हवाके झोके भीतर आ रहे थे। शालिनीका चेहरा सूख गया था, लाल-लाल हो गया था और उसकी सरल नासिकापर पसीनेकी बारीक बूंदें जम गयी थीं। दोपहरके ढाई-तीन बजे थे। सामनेका खुला बागीचा और उस पारकी नंगी टेकड़ी धूपमे चिलचिला रही थी। दरवाज़ेके सामनेसे जो रास्ता जा रहा था, उसपर बहुत देरसे सन्नाटा था। आस-पास किसी भी प्रकारकी आवाज़ न होती थी। पड़ोसी भी चुप थे। हाल ही मे श्री भिडे पूना बदलकर आये थे और बहुत कोशिशोंके बाद यह घर उन्हे मिला था। डेक्कन जिमखानाके बिलकुल एक तरफ़का यह ब्लॉक भी शालिनीको बड़ा लगता था, क्योंकि घरमे कोई तीसरा न था। पड़ोसियोंसे परिचय न हुआ था और श्री भिडे सुबह साढ़े-नौ बजे साइकिलपर जाते तो शामको छह बजेके बाद ही लौटते थे। ऐसी हालतमे नवयौवना शालिनी घरमे क्या करे? कितना बुने, कहाँतक पढ़े और कबतक सोये?

विवाह हुए दो वर्ष हो चुके थे। वैसे श्री भिडे स्वभावसे बहुत अच्छे थे, परन्तु शालिनी जैसा चाहती थी, वैसे न थे। वह बडी बोलनेवाली और खिलाड़ी स्वभावकी थी। हँसना-खेलना, इधर-उधर जाना वह चाहती थी और भिडे जन्मसे ही शान्त स्वभावके सभ्य और बुजुर्गोंकी तरह बरताव करनेवाले थे। वे बहुत कम बोलते और थोड़ा ही हँसा करते। यह स्वभाव था उनका। शालिनीका चपल स्वभाव उन्हे खटका करता। शालिनीका जब देखो तब झकाझक कपड़े पहनकर घूमने जाना, नाटक-सिनेमा देखना, नरगिस-राजकपूरके विषयमे बातें करना, होटलमे खाना खाना आदि बातें उन्हे पसन्द न थी और शालिनीको यही बातें बहुत अच्छी लगती थी। वह चाहती थी कि आफ़िससे आते ही उसका पति उसकी पसन्दका सूट पहने और उल्लाससे उसे अपने साथ घुमाने ले जाया करे। रास्तेसे चलते हुए एक-दूसरेके शरीर एक-दूसरेको स्पर्श करें। कही एकान्तमे हरियालीपर बैठकर दोनों मीठी-मीठी बातें करें। कॉफ़ी हाउसमे जाकर कुछ नमकीन खायें। कभी-कभी 'जीवन' अथवा 'लकी' मे जाकर भोजन करें। और बेचारे भिडे दिन-भरके थके-माँदे घर लौटते तो उनकी यह इच्छा होती कि जूतों और मोज़ोंके भीतर गरम हो गये पैरोंको खोल टाई उतारें। पाजामा और ढीला कुरता पहनकर आराम-कुरसीपर शान्तिके साथ पड़े रहे। बातें करनेकी उनकी इच्छा न रहती, यहाँतक कि अपनी तरुण पत्नीसे भी अधिक बातें करनेकी उनकी इच्छा न होती थी। इधर घर आते ही शालिनीकी बक-बक शुरू होती, "चाय बनाऊँ या कॉफ़ी ?"

भिडेको लगता रोज़-रोज़ यह पूछनेकी क्या ज़रूरत है, जब कि मालूम है कि मैं चाय लिया करता हूँ। चुपचाप चाय बना देनी चाहिए। मुँहसे सिर्फ़ 'हूँ' कहकर वे चुपचाप बैठे रहते। फिर रसोईसे नाचती हुई आकर शालिनी पूछती, "यदि कॉफ़ी बनाऊँ तो क्या हर्ज़ है ? मैं चाय पीते-पीते उकता गयी हूँ। कोई हर्ज़ है क्या ?"

चेहरेको शान्त रखनेका प्रयत्न करते हुए भिडे कहते, "कॉफ़ी ही बना

लो। क्या हर्ज़ है ?"

फिर वह चट उन्हे चूम लेती और शरारत-भरी हँसी हँसती हुई भीतर चली जाती, कोई फ़िल्मी गीत गुनगुनाती हुई स्टोवमे हवा भरती।

चाय-कॉफ़ी खत्म हुई कि तुरन्त वह घूमनेके लिए तैयार हो जाती।

तब फिर, "क्यो जी, आज साड़ी कौन-सी पहनूँ ? नीली चलेगी क्या ?"

"पहन लो न !"

"और ब्लाउज़ ?"

"पहन लो कोई भी।"

"मै जो पहनती हूँ वह आपको पसन्द नही आता। फिर रास्ते-भर कुड़कुडाते रहते हो।"

"मैं कुछ नही कहता। कोई भी पहन लो।"

"अच्छा, अब आप कपड़े पहनिए मै तैयार हूँ।"

बेचारे भिडे, उन्हे तो जगहसे हिलना भी अच्छा न लगता था। फिर भी वह उठते। शान्तिपूर्वक कपड़े पहनते। यह सब करनेमे उनमे कोई उल्लास न रहता, बिलकुल न रहता। शालिनीकी दृष्टिसे यह बात छिपी न रहती।

तुरत वह कह देती, "आपकी इच्छा घूमने चलनेकी नहीं है क्या ? हाँ, मैं ज़ोर-ज़बरदस्ती नही करना चाहती।"

"पर कौन कहता है ऐसा ?"

"कहनेकी क्या ज़रूरत है ? चेहरेसे ही दिख रहा है।"

"क्या ?"

"मुहर्रमी सूरत बनाकर चलनेकी ज़रूरत नहीं। आप न चलें, मै अकेली जाकर बाज़ारसे सब्ज़ी खरीद लाती हूँ।"

इतना हो जाता। फिर भी शान्त स्वभाववाले भिडे नाराज़ न होते थे। धीमी आवाज़मे पत्नीको समझा-बुझाकर वे घूमनेके लिए निकल पड़ते। जिन बातोंको उन्हें खुद करनेकी इच्छा न होती, पर जो बातें शालिनीको

पसन्द रहती वे बातें वह किया करते। उनकी इच्छाके विरुद्ध भी यदि कुछ हो जाता, फिर भी क्रोध न कर दूसरे व्यक्तिके उस प्रकारके व्यवहारका सीधा अर्थ लगानेका प्रयत्न करनेकी आदत उन्होंने अपने-आपमें डाल ली थी। शालिनी ज़रा चंचल है, अधिक बातूनी है। पतिके सिवाय बातें करनेके लिए घरमें दूसरा कोई नहीं है। दिन-भर उसे अकेला ही रहना पड़ता है। इसलिए जब मैं घर आता हूँ तो उसका हर्षविभोर हो जाना स्वाभाविक ही है। इसमें उसकी कोई गलती नहीं है। एक-दो बच्चोंकी माँ बननेपर यह आप-ही-आप कम हो जायेगा। यह सब सोचकर वह बहुत नाराज़ न होते थे। फिर भी उनके चेहरेपर अप्रसन्नताके भाव झलक उठते थे। कुछ दिनोंसे तो ऑफ़िससे लौटते तो कपड़े न उतारकर ही बैठे रहते और शालिनी तैयार हुई कि घूमनेके लिए चल पड़ते। कभी-कभी आते ही पूछते, "जूते उतारूँ या घूमने चलना है?"

और उनका इस तरह पूछना शालिनीके हृदयमें चुभ जाता था। वह बहुत नाराज़ होती। उसे लगता कि श्री भिडेको उसके साथ घूमना अच्छा नहीं लगता। उसका सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन एक दुःखभरी कहानी है। अपने पतिके साथ उसकी नहीं पटती है। उन्हें उसके प्रति प्रेम नहीं है। वह बड़ी अभागिनी है कि उसे शौक़ीन, मज़ा उड़ानेवाला, रंगीन, होशियार, खिलाड़ी और उत्साही पति नहीं मिला। ओस अब जन्म-भर यह बेड़ी नहीं तोड़ी जा सकेगी। इस तरहके विचार उसके मनमें उठते और उसे स्वयं अपने ही ऊपर करुणा आ जाती। फिर उदास मनसे वह आराम-कुरसीपर बैठी रहती और ऐसे समय उसकी बड़ी-बड़ी आँखोंमें आँसू आ जाते।

बहुत-कुछ सोचकर अब शालिनीने रोज़ घूमने जानेका आग्रह छोड़ दिया था। पिछले चार दिनोंसे उसने श्री भिडेको, जैसी वह चाहते थे, उसी तरहकी स्वस्थता दे दी थी। और वह भी नाराज़ न होकर, चेहरेपर नाराज़ीके थोड़े भी भाव न दिखाकर। उन्हें अच्छा लगता है इसीलिए वह

ऐसा सभ्यतापूर्ण बरताव करती थी। वह जानती थी कि इस तरहके बरताव-से श्री भिडेको सन्तोष प्राप्त होता है।

उस दिन दोपहरको शालिनी इसी तरह बैठी हुई थी। अप्रैलकी धूप-से सारा वातावरण थका-सा हो गया था। चारो ओर शान्ति फैली हुई थी और उसे भंग करनेवाली एक आवाज एकाएक उठी, "धाऽऽर – चाकू-कैंचीको धार धरा लो – धाऽऽऽर – "

यह आवाज शान्तिको चीरती गयी। यूँ ही बैठी शालिनीका शरीर सिहर उठा। चिल्लानेवालेकी आवाज अच्छी कमायी हुई थी – साफ़, ज़ोर-की और पतली। भरी दुपहरीमे यह पागल व्यक्ति क्यों घूम रहा होगा। इस समय कोई घरके बाहर भी न निकलेगा। इसे काम देगा कौन ? कौन उठेगा और इसे चाकू-छुरी देगा ?

फिर बिलकुल पाससे आवाज आयी, "धाऽर – चाकू-छुरीको धार धरा लो—धाऽऽऽर।"

शालिनीकी आँख रास्तेकी ओर अटक गयी और उस तरफ़से उसके आनेकी बाट देखने लगी।

और वह आया। पीठपर धार लगानेकी मशीन – शरीरमे सिर्फ एक बनियान और नीले-नीले रंगका हाफ़ पैण्ट। पैरोंमे पुराने सामानकी दुकान-से खरीदा हुआ मिलिटरीका मोटा जूता। पीठपर लदे बोझके नीचे दबकर लम्बे-लम्बे डग भरकर चलते-चलते उसने शालिनीके खुले हुए घरकी ओर देखा और ठहरकर सामने आकर पूछा, "कुछ है क्या बाई साहब—चाकू-छुरी, कैंची—?"

शालिनीने गरदन हिलाकर 'ना' कह दिया। फिर भी वह वहीं खड़ा रहा। थोड़ा आगे बढ़कर फेन्सिङ्के खम्भेको एक हाथसे पकडकर खड़ा रहा।

शालिनीको लगा, मैने सिर्फ़ गरदनसे इशारा किया, इससे शायद वह मेरी बात न समझा हो। इसलिए वह आवाज़ ऊँची उठाकर बोली, "नहीं, कुछ नही।"

इस बीच वह खुले फाटकसे भीतर आ गया। द्वारके सामने आया। व्यवस्थित ढंगसे उसने पीठपर लदी मशीन उतारकर नीचे रख दी। और सिरका मुँडासा खोलकर उससे मुँह पोंछते हुए बोला, "हा हा कैसा धूपका तमाचा पड़ रहा है!"

बाहर धूप थी ही। कम्पाउण्डके भीतर आया तो धूपमे थोडी भी छाया न थी।

तब फिर उसने बड़े अदबसे पूछा, "कुछ है क्या बाई साहब, हँसिया-छुरी?"

"नहीं रे भाई।"

"देखिए कितनी सुन्दर बना देता हूँ। आपने आज तक दूसरोके काम देखे होंगे और अब मेरा भी काम देखिए।"

अन्य फेरीवालोंकी तरह चिमड़ापन उसमे था, परन्तु वह मनुष्यको चिढा देनेवाला न था। उसके बोलनेका अदब, उसके चेहरेपरकी सभ्यता, इसके कारण शालिनीपर एक प्रकारका नैतिक दबाव पड़ा। यह बेचारा भरी दोपहरीमे इतना बोझा लेकर घूम रहा है। इसे दरवाजेसे खाली हाथ कैसे लौटाऊँ? दु:खसे भीगे स्वरमे उसने कहा, "नही है कुछ।"

"ठीक है, रहने दीजिए। लेकिन अब जब दोबारा आऊँगा तो आपके यहाँका काम ज़रूर मिलना चाहिए बाई साहब, हाँ, कामकी तारीफ़ होगी ऐसा ही घर है यह।"

वह नवजवान था, ऊँचा और गठीला। कड़ी मेहनत करते रहनेसे उसके हाथ और पिण्डलियोंके स्नायु सुडौल बन गये थे और उसका लम्बा अधगोरा चेहरा धूप और हवाकी मारसे झुलसा हुआ था, रूखा-सा।

अपने पतले होंठोंपर उसने जीभ घुमायी। मुँडासा फिर सिरपर बाँधा और इधर-उधर देखते हुए बोला, "पानीका नल है क्या बाई बँगलेमे?"

"हौज है। पर उसका पानी अच्छा नहीं है। प्यास लगी है क्या?"

"जी हाँ, हौज़ किधर है ? पानी खराब है तो रहे, किधर है ?"

शालिनीको जाने क्या लगा । बोली, "ठहरो थोडा ।"

इतना कहकर वह भीतर आयी और सुगन्धित ठण्डा पानी एक लोटेमें भरकर ले आयी । उसने अपना बरतन सामने बढाया । उस ठण्डे पानीको गट-गट पीते हुए उसके गलेकी घाँटी हिल रही थी । उसकी ओर देखते-देखते शालिनीको लगा कि इसे कुछ काम देना चाहिए । और वह भीतर गयी । आलू प्याज़ काटनेकी छुरी लेकर बाहर आयी । "लो, इसकी धार बना ही दो ।"

जैसे कोई काँचकी चीज हाथमें ली जाये, उसी तरह उसने वह छुरी सावधानीसे अपने हाथमें ली । उसे उलट-पलट करते हुए कहा, "बडी सुन्दर छुरी है, बाई साहब ! राजसी है । देखिए न पढकर । मैं पढा-लिखा नहीं हूँ, फिर भी माल हाथमें लेते ही पहचान लेता हूँ । दस-बारह रुपयेसे कममें यह माल न मिलेगा ।"

उसकी बात सच थी । कीमत और मेकर उसने ठीक बताये थे । शालिनीको ताज्जुब हुआ जो उसके चेहरेपर उमड़ उठा । चौखटपर हाथ रखे वह खडी रही ।

"पर धार बनानेका क्या लोगे ?"

उसके चेहरेकी ओर न देखते हुए उसने अदबसे कहा, "काम देखकर जो ठीक समझें, दे दीजिएगा, बाई । मैं अपना काम साफ़ करता हूँ और दाम वाज़बी लेता हूँ ।"

"वाज़बी यानी कितना ?"

"यह क्या आपको बतानेकी ज़रूरत है ? क्या आपने कभी धार नहीं रखायी होगी ?"

और वह खुद ही खुशीसे हँसा । चाक गिर्र-गिर्र घूमने लगा । गरदन टेढ़ीकर घूमती शानपर वह छुरीकी धार टिकाने लगा । चर्रचर्-खर्रखर् आवाज़ होने लगी और चिनगारियाँ उड़ने लगीं । छुरीकी धार चमकने लगी ।

शालिनी टकटकी लगाकर देख रही थी। उसके खुले हाथ जैसे-जैसे चल रहे थे उसके दण्डके स्नायु भी वैसे ही फूल रहे थे, मुड रहे थे। पत्थरपर फौलादकी होनेवाली आवाजके कारण कभी-कभी शालिनीकी देहको फुरफुरी-सी आ जाती। कभी-कभी वह आँखें बन्द कर लेती। धार-वाला छुरीको एक बार इस तरफ़से और एक बार उस तरफ़से पत्थरपर टिका रहा था। धार चमकती जा रही थी।

बीच हीमे उसने एक बार धारपर अपनी अँगुली फिराकर देखा। शालिनीके हृदयमे धक-सा हो गया। परन्तु उसकी अँगुलियोसे खूनकी धार नही बही।

घूमती हुई शानपर फिर छुरीको रखता हुआ वह बोला, "इतनी ही घिसना चाहिए जितनी कि धारके लिए ज़रूरत है। सानकी घिसाईका पता न चलना चाहिए। हाँ, बाई साहब, इसीमे तो सच्ची कारीगरी है और धार टूटनी न चाहिए। आप जैसे बडे-बडे लोगोंके घर यदि काम करना है तो हाथमे सफाई अव्वल दरजेकी चाहिए, बाई साहब। सिर्फ़ पैसा लूटनेके लिए ही रोजगार करना ठीक नही।"

वह कह रहा था। फिर भी उसकी गरदन नीचे झुकी हुई थी। आँखें छुरीपर थी। अन्तमे तपती धूपमे छुरीकी धार आँखोंको चकाचौध करने लगी।

शालिनीने पूछा, "क्यों जी, तुम्हारा नाम क्या है?"

"हुसैन, बाई साहब।"

"कहाँके हो तुम? यहींके हो क्या?"

"जी नहीं, हैदराबादमे एक गाँव है, वहाँका हूँ।"

"फिर इतनी दूर कैसे चले आये?"

"पेटके लिए आना पड़ता है, बाई। यह तो अच्छा है कि अभी मेरे पीछे बीबी-बच्चोंका कोई झंझट नहीं है। अकेला हूँ...."

इस बीचमे धार हो गयी थी। छुरीको कपड़ेसे पोंछकर उसने सीढ़ी-

पर रख दिया। बोला, "लीजिए बाई, अब आप भले ही काग़जसे भी पतली चकती इससे खुशीसे काटिए। एकदम तेज़ हो गयी है।"

शालिनी आनन्दसे नाचती हुई भीतर गयी। छह आने लाकर उसने हुसैनको दे दिये और कहा, "ठीक है ?"

वह सिर्फ हँसा, एक मधुर और सुन्दर हंसी। फिर शालिनीने दो आने और उसके हाथपर रख दिये।

सलाम करके वह खड़ा हुआ। पुनः उसने वह भारी-भरकम मशीन अपनी पीठपर उठायी और उसी भरी दोपहरीमे लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाता हुआ वह नौजवान और सुन्दर धारवाला व्यक्ति चला गया।

दूरसे आवाज़ सुनायी दी "धाऽऽऽर—चाकू, कैंची, छुरीकी धार धरा लो, धाऽऽऽर—"

शामको श्री भिडे थके-माँदे घर आये और बूटके लेस खोलते हुए कुरसीपर बैठे। तभी तेजीसे खुला दरवाज़ा बन्द कर शालिनीने उन्हे कसकर अपनी बाँहोंमे भर लिया और चुम्बनोंकी वर्षा करती हुई बोली, "कबसे आपकी राह देख रही हूँ आज ?"

*

व्यक्ति निबन्ध

*

चिड़ियाँ

क़रीब-क़रीब दस वर्ष पहले मैंने अपना गाँव छोड़ा और अनेक मनुष्यों, वस्तुओं और पशु-पक्षियोंसे मेरा सम्बन्ध टूट गया। प्रत्यक्ष रूपमें मै उनके सहवाससे वंचित हो गया। फिर भी उनकी यादें बनी रहीं। जैसे-जैसे समय बीत रहा है, वैसे-वैसे ये यादें भी धुंधली होती जा रही है। और कुछ वर्षोंके बाद उनमे-से कुछ यादें शायद रहेगी ही नही, कौन कह सकता है ?

मैंने गाँव छोडा और घरकी चिड़ियोंसे मेरा नाता भी टूट गया। यह बात नहीं कि शहरमे चिडियाँ नहीं है। मनुष्य जहाँ-जहाँ भी रहता है वहाँ-वहाँ चिडियाँ होती ही है, लेकिन शहरकी चिड़ियो और कौवोंकी तरफ़ ध्यान कहाँ जाता है ? हमेशा चहकनेवाली, बेढब रूपवाली चिड़ियो-की अपेक्षा ध्यान आकर्षित करनेवाली कितनी ही अन्य बातें शहरोमे होती है। चिड़ियोंकी ओर देखता कौन है ? और देखनेके लिए उतना अवकाश भी किसे होता है ?

माडगूल गाँवमे हमारा पुराना घर है। उसमे चिड़ियाँ बहुत थीं,इतनी कि ऐसा लगता जैसे सारा घर चिड़ियोंका ही है और हम उसमे मेहमान-की तरह रहते है। मेरे छोटे भाइयोंको दूध-भात खिलाते समय माँको 'आ री चिड़िया, आ रे कौवा' पुकारकर, काल्पनिक चिड़ियोंको कभी नही बुलाना पड़ता था। सुबहसे शाम तक अनेक चिड़ियाँ घरमें घूमती रहती। फागुनके महीनेमे खलिहान बनते। ज्वारके बोरोंसे घर भर जाता। इस मौसममें हमारा सौंझिया दानोंसे भरे हुए भुट्टोंका एक बडा-सा गुच्छा लाकर बरामदेमें द्वारके दर्शनीय भागके सामने लटका दिया करता। पानी रखनेके लिए मिट्टीका एक थाल भी इन भुट्टोंके समीप टाँग दिया जाता। मौसममे

जो अनाज हमारे घरमें आता, उसे हम साल-भर तक चुकाते; परन्तु ये उपद्रवी चिड़ियाँ ज्वारके दानोंसे भरे हुए उस गुच्छेको एक महीनेके भीतर ही समाप्त कर देतीं। 'यह चीज़ तो अपने घरकी है, इसे ज़रा हिसाबसे खायें जिससे कि गाढ़े वक़्तपर यह काम आ सके, तबतक बाहर घूमकर ही पेट भरने चाहिए' ऐसा कोई विचार उनके दिमाग़में ही न आता। महीने-भरके भीतर ही भुट्टोंके उस गुच्छेको वे झकझोर डालतीं। एक-एक दाना चुग लेतीं और सावनमें खलिहानसे भुट्टोंकी मिसाई होनेके बाद जब अनाज घरमे लाते, तबतक इन भुट्टोंमे एक भी दाना न बच रहता और चिड़ियों-द्वारा खोखले कर दिये गये भुट्टोंके खाली छूँछने हवासे हिलते रहते।

पुराने घरके भीतरी आँगनमें बाजीनानाके द्वारा लगाया गया मीठे नीमका एक पेड था। उसपर इन चिडियोंका बसेरा रहता। सवेरे मेरे पिताजी जागकर बिस्तरपर बैठ जाते। एक ऊनी कम्बल ओढकर प्रभाती गाते। इस समय मुर्ग़ और कौवे जागकर बोलने लगते। मैना चहका करती। कठफोरवे हुँकार भरा करते। परन्तु चिड़ियाँ अभीतक गहरी नींदमें सोयी रहतीं। हम बच्चोंकी तरह चिड़ियोंको भी जल्दी उठनेमें तक़लीफ़ हुआ करती। पिताजीकी प्रभाती समाप्त हो जाती। माँ सेर-डेढ सेर पीस लेती। आँगनमें गोबर मिले पानीका छिडकाव हो जाता। दिन निकल आता और फिर चिडियाँ धीरे-धीरे जागतीं। जागनेके बाद भी हम लोग बिस्तरपर यूँ ही पड़े रहते। उसी तरह चिड़ियाँ भी अंग फुलाकर टहनियोंपर बैठी रहतीं। आलस छोडकर जल्दी उठ पड़ें, और पेट-पानीकी चिन्तामें लग जायें, यह उनसे न होता था। दिन जब थोड़ा चढ़ जाता और पूरबकी ओरवाले नये बरामदेकी दीवालपर कुनकुनी धूप पडने लगती, तब चिड़ियाँ पेड़ छोडकर नीचे आतीं। हर वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको घरमे पताका फहरानेके लिए एक लम्बी लाठी हमारे घर थी। यह लाठी विशेष रूपसे इसी कामके लिए सुरक्षित रखी जाती थी। जब उस

त्यौहारको उसका काम हो जाता तो हम उसे बरामदेमे आडी टाँग दिया करते और फिर धोये हुए कपड़ोंको सूखनेके लिए फैलानेमें वह लाठी काममें आती। नीमसे नीचे उतरी हुई चिड़ियाँ उस लाठीपर जाकर बैठ जातीं। गलेके आस-पास काले रंगका सुन्दर-सा टीका धारण किये और मटियाले रंगका कोट पहने हुए नर-पक्षी सवेरे-सवेरे ही बड़े रंगपर आते। नज़दीक बैठी हुई चिड़ियोंको धक्के मारते। चिड़ियाँ बेचारी सकुचाकर एक तरफ़ हट जाती। धीमी आवाजमें बोलकर नापसन्दगी दरशातीं। परन्तु नर-पक्षी ऊधम मचाते, अधिक धक्के मारते और 'कानडो' भाषामें ज़ोर-ज़ोरसे कुछ बोलते। चिडियोंको सब कुछ सहना पड़ता। वे उस लाठीपर इधरसे उधर सरकती, झींखतीं, आपसमें चहक-चहककर बोलती हुई पंख और चोचें साफ़ करतीं। जब चिड़ियोंका यह खेल चलता रहता उस समय लाठीकी छाया बरामदेकी दीवालपर पडती रहती। मिट्टीसे लिपी हुई दीवालपर डोलती परछाइयाँ चित्रपट-सी लगती। लम्बी लाठी और उसपर बैठी हुई दस-पाँच चिड़ियाँ, उनका फुदकना, धक्के मारना और चोंचमें चोच डालना, यह सब देखते हुए बडा मज़ा आता। जीमें आता कि उन चिडियोंको जाकर पकड लें।

अपने सफेद पेट धूपको तरफ़ करके चिडियाँ लाठीपर बैठतीं। जब धूप ले चुकतीं, तो उन्हे भूख लगती। इसी समयके लगभग हमें भी भूख लगती। बासी रोट, प्याज़ और ताज़ा छाँछ लेकर हम सब भाई-बहनें बरामदेकी धूपमें नाश्ता करने बैठते, तो कुछ चिड़ियाँ भी दो पैरोंपर कूदती हुई थालीके सामने आ जातीं। गरदनें टेढ़ी करके थालीकी ओर और हमारे मुँहकी ओर देखने लगतीं। फिर क्या हम उन्हें रोटीका चूरा न देते? पुराने बरामदेमें अनाजके बोरे सजे रखे रहते हैं। बीस-पचीस चिड़ियाँ उन-पर बैठकर भीड़ लगा देती हैं। चोंच मार-मारकर बोरेमें सूराख कर देतीं और अनाज खा जातीं। खाते समय आपसमें उनकी बातें भी चलती ही रहतीं। कुछ चिड़ियाँ मँजघरेमें घुस जातीं। जिस बरतनमें माँ चावल धोती

जो अनाज हमारे घरमें आता, उसे हम साल-भर तक चुकाते; परन्तु ये उपद्रवी चिड़ियाँ ज्वारके दानोंसे भरे हुए उस गुच्छेको एक महीनेके भीतर ही समाप्त कर देतीं। 'यह चीज़ तो अपने घरकी है, इसे ज़रा हिसाबसे खायें जिससे कि गाढे वक़्तपर यह काम आ सके, तबतक बाहर घूमकर ही पेट भरने चाहिए' ऐसा कोई विचार उनके दिमाग़में ही न आता। महीने-भरके भीतर ही भुट्टोंके उस गुच्छेको वे झकझोर डालतीं। एक-एक दाना चुग लेतीं और सावनमें खलिहानसे भुट्टोंकी मिसाई होनेके बाद जब अनाज घरमे लाते, तबतक इन भुट्टोंमे एक भी दाना न बच रहता और चिड़ियों-द्वारा खोखले कर दिये गये भुट्टोके खाली छूँछने हवासे हिलते रहते।

पुराने घरके भीतरी आँगनमें बाजीनानाके द्वारा लगाया गया मीठे नीमका एक पेड था। उसपर इन चिडियोंका बसेरा रहता। सवेरे मेरे पिताजी जागकर बिस्तरपर बैठ जाते। एक ऊनी कम्बल ओढ़कर प्रभाती गाते। इस समय मुर्ग और कौवे जागकर बोलने लगते। मैना चहका करती। कठफोरवे हुँकार भरा करते। परन्तु चिड़ियाँ अभीतक गहरी नींदमे सोयी रहतीं। हम बच्चोंकी तरह चिड़ियोंको भी जल्दी उठनेमें तक़लीफ़ हुआ करती। पिताजीकी प्रभाती समाप्त हो जाती। माँ सेर-डेढ सेर पीस लेती। आँगनमें गोबर मिले पानीका छिडकाव हो जाता। दिन निकल आता और फिर चिडियाँ धीरे-धीरे जागतीं। जागनेके बाद भी हम लोग बिस्तरपर यूँ ही पड़े रहते। उसी तरह चिड़ियाँ भी अंग फुलाकर टहनियोंपर बैठी रहतीं। आलस छोड़कर जल्दी उठ पड़ें, और पेट-पानीकी चिन्तामें लग जायें, यह उनसे न होता था। दिन जब थोड़ा चढ़ जाता और पूरबकी ओरवाले नये बरामदेकी दीवालपर कुनकुनी धूप पडने लगती, तब चिडियाँ पेड़ छोडकर नीचे आतीं। हर वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको घरमे पताका फहरानेके लिए एक लम्बी लाठी हमारे घर थी। यह लाठी विशेष रूपसे इसी कामके लिए सुरक्षित रखी जाती थी। जब उस

त्यौहारको उसका काम हो जाता तो हम उसे बरामदेमे आडी टांग दिया करते और फिर धोये हुए कपड़ोंको सूखनेके लिए फैलानेमें वह लाठी काममें आती। नीमसे नीचे उतरी हुई चिड़ियाँ उस लाठीपर जाकर बैठ जातीं। गलेके आस-पास काले रंगका सुन्दर-सा टीका धारण किये और मटियाले रंगका कोट पहने हुए नर-पक्षी सवेरे-सवेरे ही बड़े रंगपर आते। नज़दीक बैठी हुई चिड़ियोंको धक्के मारते। चिड़ियाँ बेचारी सकुचाकर एक तरफ़ हट जाती। धीमी आवाजमें बोलकर नापसन्दगी दरशातीं। परन्तु नर-पक्षी ऊधम मचाते, अधिक धक्के मारते और 'कानडो' भाषामें जोर-ज़ोरसे कुछ बोलते। चिड़ियोंको सब कुछ सहना पड़ता। वे उस लाठीपर इधरसे उधर सरकतीं, झींखतीं, आपसमें चहक-चहककर बोलती हुई पंख और चोचें साफ़ करती। जब चिड़ियोंका यह खेल चलता रहता उस समय लाठीकी छाया बरामदेकी दीवालपर पडती रहती। मिट्टीसे लिपी हुई दीवालपर डोलती परछाइयाँ चित्रपट-सी लगती। लम्बी लाठी और उसपर बैठी हुई दस-पाँच चिड़ियाँ, उनका फुदकना, धक्के मारना और चोंचमें चोंच डालना, यह सब देखते हुए बड़ा मज़ा आता। जीमें आता कि उन चिड़ियोंको जाकर पकड लें।

अपने सफ़ेद पेट धूपको तरफ़ करके चिड़ियाँ लाठीपर बैठतीं। जब धूप ले चुकतीं, तो उन्हे भूख लगती। इसी समयके लगभग हमें भी भूख लगती। बासी रोट, प्याज़ और ताज़ा छाँछ लेकर हम सब भाई-बहनें बरामदेकी धूपमें नाश्ता करने बैठते, तो कुछ चिड़ियाँ भी दो पैरोंपर कूदती हुई थालीके सामने आ जाती। गरदनें टेढ़ी करके थालीकी ओर और हमारे मुँहकी ओर देखने लगतीं। फिर क्या हम उन्हें रोटीका चूरा न देते? पुराने बरामदेमें अनाजके बोरे सजे रखे रहते हैं। बीस-पचीस चिड़ियाँ उन-पर बैठकर भीड़ लगा देती हैं। चोंच मार-मारकर बोरेमें सूराख कर देतीं और अनाज खा जातीं। खाते समय आपसमें उनकी बातें भी चलती ही रहतीं। कुछ चिड़ियाँ मँजघरेमें घुस जातीं। जिस बरतनमें माँ चावल धोती

वह बरतन यदि खुला दिख जाता तो चिड़ियाँ अपना सन्तुलन सँभालती हुई उस बरतनके किनारेपर बैठ जातीं और चावलके दानें चुरा-चुराकर खातीं। टोकरी या सूपमें ताज़ी सब्जी दिख जाती, तो उसके कोमल-कोमल कोंपल खुटक जातीं। कहीं भी सन्तुलन सँभालकर बैठ जाना, लगातार बक-वास करते रहना, जो भी दीख जाये उसे चुग जाना उनका यह काम बेखटक चलता रहता। सहनमें, बरामदेमें, मँजघरेमें, रसोईमें, अहातेमें, सब--कहीं उनका उपद्रव होता रहता; जैसे लुटेरोंका कोई गिरोह टूट पड़ा हो।

भोजनके बाद तीसरा पहर आ जाता। फिर भी उनकी धींगा-धींगी बन्द न होती। फिर उनके पेट भर जाते। कुएँपर रखी डोलचीपर बैठकर वे पानी पी लेतीं। और फिर बरामदेमें लौट आतीं। अनाज खा लिया, पानी भी पी लिया। अब तो उन्हें थोड़ा विश्राम करना चाहिए? पर नहीं! फिर वही फुर्र-फुर्र इधरसे उधर उडना, यह खेल शुरू हो जाता। जिस जगह एक बैठती उसी जगह दूसरी भी बैठना चाहती और अगर दोनों एक जगह आ जातीं तो उन दोनोंका आपसमें जमता न था। पंखोंकी फड़फड़ाहट और चोंचोंकी चहक निरन्तर जारी रहती। छुआ-छूत, मार-पीट और आपसी झगडे ज़ोर पकडते। भोजनके बाद कम्बल या दरी बिछा-कर घरके जेठे-सयाने थोड़ी देरके लिए सो जाते। हमें भी डाँट-डूँटकर और धमकी दिखाकर सुला देते। सब ओर शान्ति छा जाती। लेकिन चिड़ियों-का ऊधम बन्द न होता। उनके शोर-गुलसे बहुधा गुस्सा न होनेवाले मेरे पिताजी भी तंग आ जाते। धोतीका एक छोर हवामें उड़ाते हुए चिड़ियोंको डाँटते, "शुक्-शुक्! यह क्या शोर मचा रखा है? हमें आरामसे ज़रा सोने भी तो दो।"

पर इतनी-सी डाँटसे चिड़ियाँ क्या माननेवाली थी? तालियाँ बजायें, लकड़ियाँ ठोकें, तब कहीं खूँटियों, ताखों और दराज़ोंको छोड़कर वे बाहर भागती, वह भी घड़ी-भरके लिए ही। डाँटो, गालियाँ दो, उनपर कोई असर नहीं, उन्हें कोई शर्म नहीं। फिर एकके बाद एक उड़ती हुई, शोर-

गुल मचाती हुई बीस-पचीस चिडियाँ भीतर घुस जाती। फिर पहलेसे भी दूने ज़ोरसे उपद्रव मचाना शुरू कर देती।

शामके साढ़े चार बजते ही दानेकी तलाश पुनः शुरू हो जाती। कुछ नर और कुछ मादा बाहर निकल पड़ते। गाँवके घरो, लोगोके आँगनो और गाँवके नज़दीकवाले खेतोको छानकर शामको क़रीब साढ़े छह बजे मवेशियोके घर लौटनेसे पहले ये अपने घर लौट आती। नीमपर भीड़ लग जाती। ऐसी आवाज़ होती रहती जैसे 'चम्पाषष्ठी'का 'खण्डोबा'का मेला लगा हो। 'मै यहाँ बैठूँगी, तू वहाँ बैठ, यह मेरी जगह है' इस तरह तू-तू मै-मै कोई आध घण्टे तक होती रहती और फिर सब तरफ़ शान्ति छा जाती। शोर-गुल और झगडोसे ऊबकर कुछ चिडियाँ घरके भीतर आ जातीं। खूँटियोपर या छतकी दराज़ोमे आँखें बन्द कर बैठी रहतीं। इसी समय हम भी सोनेकी तैयारीमे लग जाते। बिस्तरपर पडे-पड़े हममे-से किसीकी नज़र खूँटीपर बदन फुलाये बैठे हुए नर-पक्षीकी ओर जाती। दिन-भर जिसका मुँह थकता न था, अब वह बिलकुल देवकी तरह खूँटीपर बैठा रहता। जी करता कि उसके बदनपर चद्दर डालकर उसे पकड लें। बिस्तर छोड़कर हम उस प्रयत्नमें भी लग जाते। बहुत बार हमें इसमें सफलता न मिली। कभी नर-पक्षी चकमा दे देता तो कभी माँ चिल्ला पड़ती। अरे ओ चाण्डालो, गूँगे पक्षियोंको क्यो सताते हो रे? रातको बेचारे अन्धे हो जाते है वे। भागो, छोड़ दो उसे।"

माँ हमपर तो चिल्ला पड़ती, पर हमारी मिनी बिल्लीसे कुछ न बोलती। हमारी बिल्ली दिन-भर चिड़ियोको ताकमें बैठी रहती। दोनों समयका दूध-भात खाकर भी उसकी चिड़ियोंकी चाह कम न होती। लेकिन चिड़ियाँ भी उसे खूब पहचानती थी। वे भी ऐसा बहाना करती जैसे बरामदेमें, आँगनमें नाचते-नाचते वे खानेमें खो गयी है और कोनेमें छिपी बैठी बिल्लीकी तरफ़ उनका कोई ध्यान ही नही है। लेकिन सच पूछा जाये तो उनका पूरा ध्यान रहता। हमेशा वे सजग रहतीं। इसलिए बिल्ली

उनका शिकार न कर पाती। दिनमें तो चिड़ियाँ बिल्लीका कुछ न चलने देतीं। हाँ, रातके अँधेरेमें ज़रूर कभी-कभी मिनीको मौक़ा मिल जाता। ज़मीनपरसे कूदकर ताखेमे बैठी चिड़ियापर, और ताखेसे कूदकर खूँटीपर बैठी चिड़ियापर उसकी यह कठिन कोशिश सफल हो जाती। और दूसरे दिन उस स्थानपर मेरी माँको चिड़ियोंके नुचे हुए पंख दिखायी पडते। कभी रातको एकदम, कोई कल्पना न होते हुए भी नीमपर सोयी हुई चिड़ियाँ फुर्रसे उडतीं और दूसरे दिन मिनी बिल्लीकी वासना दूधपरसे उड़ जाती !

हमारी चद्दर और मिनीकी उछालसे बचनेके लिए कुछ चिड़ियोंने कुएँके भीतर अपने घोंसले बना रखे थे। लेकिन पानीका भी क्या भरोसा ? हर दो-तीन महीनोंमे पानी महकने लगता और कुआँ खाली करना पडता। कभी-कभी कुएँकी पुरानी दीवालोंकी सन्दमे साँप घुस जाता और चिड़ियों-पर संकट आ जाता। दो-चार कम हो जाती।

हमारे नहानेके बाद अहातेकी नालीमे जो गन्दा पानी बहता, उसे देखकर चिड़ियोंपर भी नहानेकी सनक सवार होती। नालीमे जब पानीका बहाव कुछ कम पड़ जाता, तो जिस तरह मनुष्य नीचे झुककर चुल्लूसे पानी उछालकर अपनी पीठपर डालते है, उसी तरह ये चिड़ियाँ भी नालीके किनारे बैठ जातीं और पंखसे पानी उछालकर अपने बदनपर डालतीं। वे कोई रोज़-रोज़ नहीं नहाती थीं, लेकिन जब भी नहाती, बड़े आनन्दसे नहाती। वर्षाका पानी शरीरपर लेकर छोटे बच्चे जिस तरह 'छुआछूत' खेलते है, हँसते हैं और चिल्लाते है, उसी तरह नालीके बहते हुए पानीमे नहाते समय ये चिड़ियाँ भी खूब खेला करतीं। लड़कोंकी तरह चिड़ियाँ भी धूलमें खेलना पसन्द करती हैं। घर लीपनेके लिए सफ़ेद मिट्टीका ढेर ज्यों ही सहनमें पड़ जाता कि चिड़ियाँ मज़ेसे उसपर खेला करतीं। सारे बदनपर मिट्टी लपेट लेतीं। सिरमें मुट्ठी-मुट्ठी-भर मिट्टी भर लेतीं। नालीके पानीमें नहानेसे उन्हें जितना सुख मिलता, मिट्टीमे खेलनेसे भी उतना ही।

नीड़ बनाने और अण्डे देनेके बारेमें चिड़ियोंका क्या कोई निश्चित समय होता है, यह मैं नही जानता। शायद पूरे साल-भर तक यह काम होता रहता होगा। जहाँतक मुझे याद है अप्रैल और मईके महीनोंमें चिड़ियाँ अपने नीड़ बनानेमें तेज़ीसे जुट जाती है। बहुत-से अन्य पक्षी अपने नीड़ पेडोंपर बनाते है। परन्तु चिड़ियोंका मनुष्योंसे अधिक घरोबा होता है। मनुष्यों-द्वारा बनाये घरोंमें ही जगह देखकर वे भी अपने घर वहीं बनाती हैं। मनुष्यों-द्वारा उचित स्थान देखकर बनाये घरोंमें भी चिड़ियों-को अपने नीड बनानेके लिए कोई अच्छा स्थान जल्दी नहीं मिलता। शहतीरोंमें मौक़ेकी जगह ताकनेमें ही उनका बहुत-सा समय खर्च हो जाता है। कुछ जोडे नीड़ बनानेके लिए ऐसी अजीब जगह पसन्द करते है कि कुछ न पूछिए। उन बेचारोंके ध्यानमें ही यह नही आता कि वहाँ उनका नीड़ न बन सकेगा। गाँव-भर भटककर, ये चिडियाँ सुतलियोंके टुकड़े, मुर्ग़ियोंके पंख, सूखी घास और कपास आदि बहुत-सी फालतू चीजे चोचोंमें पकड़कर लाती और पागलकी तरह उस अनुचित स्थानपर एकत्रित करती जाती है, पर इमारत उठती नही है। घर बनानेका बहुत-सा सामान व्यर्थ चला जाता है। जब चिड़ियोंके नीड़ बनानेका काम शुरू होता, तब बरामदा साफ़ करते समय घर बनानेका ऐसा बहुत-सा सामान मेरी माँकी बुहारीपर चढ़कर बाहर घूरेपर चला जाता। बहुत-से दूसरे पक्षी घर बनानेकी कलामें पारगत होते हैं। इस विद्यामें बया पक्षियोंका हाथ तो कोई भी नही पकड़ सकता। वे अपना घर इतना सुन्दर और शानदार बनाते हैं कि अच्छे-अच्छे कारीगर भी दाँतों तले अँगुली दबाकर रह जाते है। ये चिड़ियाँ भी आखिर बयाकी ही जातिकी है, परन्तु नीड कैसे बनता है, इसका उन्हे तनिक भी ज्ञान नही। एक शिशु कथा है, "एक थी चिड़िया और एक था कौवा।" उसमें कहा गया है कि चिड़ियाने मोमका घर बनाया और वर्षामें निर्वासित हुए एक कौवेको उसमें आश्रय दिया। पर यह बात सच नहीं मालूम होती। घर बनानेकी विद्या चिड़ियाँ जानतीं

ही नहीं ! उन्हे यह विद्या बयासे सीखनी चाहिए।

अप्रैल और मईमें घर बनानेका काम धडल्लेसे होता रहता। ताशके बँगलेकी तरह ये घर बार-बार ढह जाते। नर और मादा दोनों जी तोड़कर परिश्रम करते और फिर किसी दिन चिडिया अपने नन्हे घरके भीतर तीन नन्हें-नन्हे अण्डे देती। लम्बे-चौड़े घरमें अण्डे ठीकसे रहते, परन्तु अड़चन-की जगहमें बने हुए घरोंमें रखे अण्डे अपने-आप-ही माँ-बापके धक्केसे नीचे गिर पड़ते और फूट जाते। वही हाल होता जैसे कोई अनाडी माँ नींदमें अपने बच्चेको अपने ही शरीरके नीचे दबोच दे।

और जल्दी ही शहतीरमें-से चूँ-चूँ आवाज़ सुनायी देने लगती। बच्चोंके खाने योग्य अन्न खोजनेमें नर और मादा दोनों दिन-भर व्यस्त रहते। छोटी-छोटी मुलायम चीजें चोंचोंमें पकड़कर लाते, घरके बाहर बैठकर सिर्फ़ सिर ही उसके भीतर डालते, बच्चे अपनी भाषामें "मुझे दो, मुझे दो" कह-कर शोर मचाते, कोई एक ही बच्चा सबका-सब अन्न खा जाता और दूसरे बच्चे चोंच पसारकर रोते रहते। चिडिया फिर बाहर जाती और फिर कुछ ले आती और यह क्रम चलता रहता। चिड़ियाके बच्चे धीरे-धीरे बढने लगते।

कभी-कभी एकाध चिलबिला बच्चा भी अण्डेकी तरह टपसे नीचे जा गिरता और प्राण त्याग देता। कोई कड़ा बच्चा ऊपरसे नीचे गिरकर भी ज़िन्दा रह जाता। बिना पंख फूटा वह लाल-सुर्ख मांसका गोला चोंच खोलकर हमारी ओर देखता। नर और मादा चिड़िया बार-बार हमारे सिरपर मँडराते रहते। उस बच्चेको पानी पिलाकर फिरसे नीडमे रहने-का प्रयत्न हम किया करते और उस प्रयत्नमे वह बेचारा अपनी जानसे हाथ धो बैठता। कुछ बच्चे बड़े होकर नीड़मे-से नीचे उतर आते। उनके माँ-बाप उन्हें उड़ाना सिखाते। बच्चे डरा करते और नीचे गिरते। बहुत कोशिशोंके बाद उन्हें उड़ना आ जाता। जब उड़ना आ जाता और पंखोंमें काफ़ी ताक़त पैदा हो जाती, तो वे बच्चे अपने माँ-बापको भूल जाते

और हवामे उड जाते। अपनी-अपनी गृहस्थी अलग सजाते। अपने-अपने पेट भरते और फिर उन्हे अपने माँ-बापकी याद भी न आती।

जबतक मैं पुराने घरमे था और मेरे पंखोंमें ताकत नहीं आयी थी, तबतक ये सब बातें मैं देखा करता था। आगे चलकर वह पुराना घर भी गया, वह नीम भी न रहा और चिड़ियोंसे जो मेरा सम्बन्ध था, वह भी टूट गया।

पिछले अप्रैलमे मै अपने पूनाके घरमे बीमार पड़ा। पैरका ऑपरेशन हुआ था, इसलिए मुझे कई दिनों तक चारपाईपर पड़ा रहना पड़ा। पैरके कारण मैं सब तरफ़से लँगड़ा हो गया था। इसलिए मैं चल नहीं सकता था। मुझे नींद नही आती थी। दिन-भर दर्द सहता हुआ बिस्तरपर पड़ा रहता।

इस साल गरमी बड़ी तेज थी। सोनेके कमरेसे मै अपना बिस्तर उठाकर लिखनेके कमरेमें ले आया था। दरवाज़ेपर लगी 'मनोरंजनी'की फूलों-लदी लाल शाखा देखता और खिले हुए मोंगरोंकी खुशबू लेता हुआ मैं चारपाईपर पडा हुआ था कि एक दिन मेरे घरमें चिड़ियोके पाँच-छह जोड़े घुस पड़े और सारा घर खोजने लगे। उनके शोर-गुलसे सारा घर भर गया।

मुझे बडी खुशी हुई। कितने ही दिनोंके बाद ये लोग फिर मेरे पास आये थे। परन्तु यह घर हमारे पुराने घरकी तरह चिड़ियोंके लिए सुभीतेका न था। यहाँ शहतीर, दराजें तथा पत्थर और मिट्टीकी दीवारें न थी। चिडियाँ कौन-सा स्थान पसन्द करें और अपने नीड कहाँ बनावें? दीवारोंपर लगी तसवीरोंके पीछे रहना वे पसन्द कर लेतीं मगर मेरे घरमें बहुत बड़ी तसवीरें न थी और दीवारोंकी ऊँचाई भी बहुत मामूली थी। बिजलीकी बत्तियाँ यदि दीवारसे सटकर लगी होती तो उनकी बैठकोंके पीछे वे अपने घर बना लेती, लेकिन यहाँ सारी बत्तियाँ लटक रही थीं। बिस्तरपर

पडे-पडे मैंने चिड़ियोंके नीड़के लिए सुभीतेका स्थान खोजकर देखा। परन्तु मुझे कोई उपयुक्त स्थान नजर न आया। किरायेदारोंके लिए ही नहीं, बल्कि चिड़ियोंके रहनेकी दृष्टिसे भी मेरा घर बडा असुविधाजनक है। मुझे लगने लगा कि बहुत दिनों बाद आयी ये चिडियाँ अब मनमें निराशा दबाये लौट जायेंगी।

दो-तीन दिन चिडियोंने समूचे घरकी कसकर जांच की। यह विश्वास हो जानेपर कि घर बनाने लायक़ यहाँ कोई प्लाट नहीं है, वे चल दीं। खिडकीमें-से उनका बार-बार उडकर भीतर आना बन्द हो गया। उनकी चहक भी सुनाई नहीं पड़ती थी। मेरा ढाई कमरेका घर फिर सूना-सूना-सा लगने लगा।

चार दिन बीते। मेरे सिरहाने बायीं ओर दीवारमें अलमारी थी। यह अलमारी पुस्तकोंसे भरी थी। अलमारीपर अर्ध-गोलाकार एक आला था। उसमें मैंने अपनी चित्रकलाका लकड़ीका तख्ता रख दिया था। चिड़ियोंने एक जोडेने कलाके आश्रयमें रहना तय किया और जल्दी-जल्दी उस तख्तेके पीछे घर बनाना शुरू कर दिया। मैं बिस्तरपर पडा-पडा एक करवट हो यह गृह-रचना देख रहा था। भरी दुपहरीमें वे पति-पत्नी जी-तोड़ परिश्रम कर रहे थे। दोनों अपनी-अपनी चोंचोंमें तिनके और धागे दबाकर लाते। फिर उस तख्तेके नीचे घुसते। जब करीब बारह बजता तो मेरे सिरहानेवाली खिड़कीमें बैठकर वे दोनों थोड़ी देर विश्राम करते। हलकी आवाज़में एक दूसरेसे अपने अगले इरादे दुहराते। बीच ही में नर उड जाता। एकाध तिनका ले आता। धूप इतनी तेज थी कि कभी-कभी वे दोनों पक्षी अपनी नन्हीं चोंचें खोलकर हाँफते हुए चुप बैठे रहते। मगर उनका काम बन्द न हुआ। घर अधूरा न रहा।

तख्तेके पीछेका घर कब बन चुका था इसका मुझे पता न चला। हाँ, अब चिड़ियोंके मुखमें तिनके नहीं दिखते थे। जब नर अकेला ही खिड़कीमें बैठने लगा तब मैं समझ गया कि घर पूरा बन गया है और

मैं जिस तरह अपनी बेबीके जन्मके समय प्रसूतिगृहके बरामदेमें दीनतासे खड़ा था, उसी तरह यह नर अपने घरके बाहर खड़ा है।

और कुछ दिन बीते। और एक दिन सुबह उठते-उठते बड़ी कोमल आवाजमें 'चूँ-चूँ' शब्द मेरे कानोंमें पड़े। अण्डोंसे बच्चे निकल आये थे। मादा कुशलसे थी। फिर नर अकेला ही बाहर काम करने लगा। बच्चोंको और बच्चोंकी माँको खानेके लिए कुछ ले आने लगा। फिर मादा भी धीरे-धीरे बाहर जाने लगी। मगर बच्चोंके पिताकी तरह वह बहुत देर तक बाहर न रहा करती। बार-बार घरके दरवाजेमें बैठकर वह बच्चोंको पुकारती "बच्चो, सो गये क्या रे ? क्या तुम्हें भूख लगी है ?"

माँकी पुकार सुनते ही बच्चे भीतरसे 'माँ, माँ,' कहकर चिल्लाते। उनकी आवाज कानोंमें पड़ते ही माँका डरा हुआ मन शान्त हो जाता। फिर भीतर घुसकर बच्चोंके प्रेममें उलझी न रहकर वह छोटे-छोटे कीड़े चुगकर लानेके लिए बाहर चल देती। बच्चोंकी आवाज बन्द पड़ जाती।

मैं प्रतीक्षा कर रहा था कि अब जल्दी ही बच्चे बाहर निकलेंगे, मेरे छोटे-से घरमें घूमने लगेंगे। बच्चोंके माँ-बाप उन्हें उड़ना सिखायेंगे। बच्चे घबराकर रो पड़ेंगे। फिर माँ कहेगी, "मेरे राजा, रोओ नहीं। तुम अच्छे मुन्ना हो न ? हाँ देखो, पहले पंख इस तरह उठाओ। उठा लिये ? शाबाश ! अब उन्हें इस तरह हिलाओ।"

"मुझे डर लगता है माँ !"

माँके बराबर सहनशीलता और प्यार न रखनेवाला बाप जरा नाराज हो जायेगा और बच्चोंको डाँटेगा, "काहेका डर लगता है रे ? बेवकूफ कहींके। दूसरोंके बच्चोंको देखो, कैसे जल्दी-जल्दी उड़ने लगते हैं। और एक तुम हो कि डर लगता है कहते हो। कुछ नहीं, चलो उड़ो !"

फिर माँ कहेगी, "उसे डाँटो मत जी। डाँटनेसे वह और अधिक घबरा जायेगा। फिर बच्चेसे कहेगी, "हाँ मेरा राजा बेटा, उठा तो पंख

और अब थोड़ा हिला उसे ।"

"मैं नहीं करता । मुझे डर लगता है । जाओ ।"

इसपर पिता फिर और भी अधिक नाराज हो जायेगा । वह कहेगा, "यहाँ लाड-प्यारकी ज़रूरत नहीं । गिर पड़ेगा तो कोई पैर नहीं टूट जायेगा । लग जायेगा थोडा-सा । व्यर्थ बहाना क्यो बना रहा है ?"

फिर बच्चा उड़ेगा और उड़नेका प्रयास करता हुआ नीचे गिर पड़ेगा । उसका बदन दीवारसे टकरायेगा । फिर माँ-बाप दोनों उसे अपनी छातीसे लगाकर समझायेंगे, "गिरनेसे ही तो हम पक्के होते है । जबतक गिरेंगे नही तबतक सीखेंगे क्या ?"

इस तरह गिरते-पड़ते ही ये बच्चे उड़ना सीखेंगे और मै जिस तरह पूना आया हूँ, उसी तरह ये भी कहीं चले जायेंगे । अपने माँ-बापको चार सतरोंका ख़त भेजनेकी भी याद कभी न आयेगी इन्हे ।

मैं इस तरह भविष्य रंग रहा था, पर हुआ कुछ और ही । बच्चोके बड़े होकर घरसे बाहर निकलनेसे पहले ही वह कोमल चूँ-चूँ आवाज़ अचानक एक दिन बन्द हो गयी । पति-पत्नी दोनों दाना नही चुग रहे थे । खाली चोंचसे घोंसलेके बाहर बैठकर चिड़िया चिल्लाने लगी और नर खिड़कीमें यूँ ही बैठने लगा । मैं कुछ समझ न पाया । मैंने अपनी पत्नीसे कहा, "विमल, देखो तो, चिड़ियाके बच्चे चिल्लाते क्यों नहीं ?"

घरके कामोंसे जब फुरसत पाती तो विमल आकर मेरे पास बैठती थी और चिड़ियोंका कुशल समाचार मुझसे सुनती थी । वे बच्चे, वह नर और वह मादा चिड़िया, इस परिवारसे उसका भी अच्छा परिचय हो गया था । बेबीने जब बच्चोंको देखनेका हठ पकड़ा था, तब उसने उसे अपने कन्धेपर बैठाकर चिड़ियाका घर दिखाया था । बच्चे दिखे नहीं । लेकिन जिस तरह मेरी रिस्ट वॉचकी टिक-टिक कान लगाकर बेबी सुनती, उसी तरह चिड़ियाके बच्चोंकी चूँ-चूँ भी उसने कान लगाकर सुनी थी ।

जब मैंने कहा कि चिड़ियाके बच्चे चिल्लाते क्यों नहीं तो उसे सुनते

ही विमल बोली, "अजी धूप कितनी तेज है। बेचारे चुपचाप सोये होंगे।"

"नहीं जी, आज सुबहसे मैंने उनकी आवाज नहीं सुनी है। ज़रा देखो तो।"

विमल एक स्टूलपर चढ गयी। झुक-झुककर देखा। फिर भी चिड़ियों-का घर दिखायी नहीं देता था। मैं चारपाईपर पड़ा-पड़ा पूछ रहा था, "क्यों, दिखते हैं क्या ? बोलो ? बच्चे हैं वहाँ ?"

दूरसे देखनेपर दिखते न थे। इसलिए विमलने हलके हाथसे तख्ता उठाया और एकदम चौककर वह चिल्ला पड़ी, "ओ माँ !"

"क्यों ? क्यों ? क्या हुआ ? क्या बच्चे नहीं है ?"

"अजी यहाँ तो ढेर-सी चीटियाँ लगी है। ये लाल चीटियाँ ही खा गयीं बेचारे बच्चोंको। राम ! राम !"

मैं चुप हो गया।

हमें अफ़सोस होता है। परन्तु पंछियोंके संसारमें न खेद है न दुःख। दुर्घटनाओंसे वे हिम्मत नहीं हारते। जिदसे जिन्दगी जीते हैं। सुबह उठते ही किसी सुननेवालेके न होनेपर भी अकेले ही प्रभाती गाते रहते हैं। उनके हिस्सेमें जैसा जीवन आ जाता है उसे वह उसी रूपमें स्वीकार कर लेते हैं, जो लेते हैं और आकाशमें चक्कर काटते हुए गाते रहते हैं।

*

*

मेरी आर्थिक परिस्थिति

धन्धा लेखकका होनेके कारण सालमे कुछ समयके लिए मुझे बेकार रहना पड़ता है और दिमाग तेज होनेके लिए यह बड़ा फायदेमन्द होता है।

ऐसी बेकारीके समय मेरे कई घण्टे आरामकुरसीमे पड़े-पडे विचार करनेमे गुजर जाते है। मेरी पत्नीकी यह शिकायत हमेशा रहती है कि यूँ चुपचाप बैठे रहनेके कारण ही मै बेकार रहता हूँ। लेकिन सच पूछा जाये तो बेकार होनेके कारण ही मैं चुप बैठा रहता हूँ। वह यह नही जानती कि जब लेखक चुप बैठा होता है तभी वह सच्चे अर्थोमे काम करता रहता है।

इसी समय मुझे यह बात जँच जाती है कि रेडियोके मराठी कार्यक्रम रद्दी होते है और ऐसा लगने लगता है कि रेडियो कोई विशेष आवश्यक वस्तु नही है। पलँगपर हाथ-पाँव ऐंठकर सोनेके बजाय नीचे जमीनपर सोना ही अधिक आरामदेह होता है और लकड़ीके दो पलँगोके कारण घरका बहुत-सा स्थान भी घिर जाता है, यह बात लगातार ध्यानमे आती है। कभी-कभी ही काममें आनेवाला केमरा खरीदकर मैंने चार-सौ रुपये व्यर्थ ही फँसा रखे है और आजकलके अजीब जमानेमे सोनेके अधिक जेवर होना भी भयप्रद ही है, यह मै पत्नीसे बार-बार कहता रहता हूँ। अलबत्ता उसके इतने चतुर होनेके कारण मेरी बातका अन्दरूनी हेतु उसकी समझमे तुरत ही आ जाता है और वह मुझे ही डाँट देती है, "हाँ समझ गयी! केमरा और रेडियो-जैसी चीजें कौन बार-बार खरीदी जाती है? और केमरा तो अण्णाने उपहारमे दिया है न? जेवरोंका तो नाम ही मत लेना। घरकी 'लक्ष्मी' को मै कदापि बाहर नही जाने दूँगी। एक बार जहाँ घर-की चीजें बेचनेकी यह खराब लत लगी कि फिर वह छूटे नहीं छूटती!" वास्तवमे यह बात जँचने लायक होती है लेकिन इसके जँच जानेपर भी मैं

आजिजीसे कहता हूँ,

"अजी, पर ज़ेवर हम इसीलिए तो बनवाते है न कि मौक़ेपर काम आयें ?"

लेकिन ऐसे वक़्त वह बडी निर्दयी हो जाती है। अजीब-सा चेहरा बनाकर चुभते हुए शब्दोंमे कहती है, "ऐसा कौन-सा बड़ा प्रसंग आ पडा है जी आपपर ? रेडियो और ज़ेवर बेचकर चार महीने आरामसे खाते रहोगे यही न ? इतनी मासिक पत्रिकाएँ कहानियाँ माँग रही है, उन्हे कहानियाँ लिखकर भेजो, रेडियोके लिए नाटक लिखो। कोई उपन्यास लिख डालो। यह तो कुछ करोगे नहीं, और सोचोगे यह कि घरकी कौन-कौन-सी चीजें बेची जायें ! कितने खराब लक्षण है ये !" फिर मै ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाने लगता हूँ, उसके मर्मपर चोट करता हूँ,

"हाँ हाँ, कहानियाँ लिखना क्या रोटियाँ बेलना है ? ले लिया आटा और बैठ गयी बेलने। अरे, कुछ सूझना भी तो चाहिए न ? तुम्हे तो बस, सिर्फ पैसे दिखते है। पर मुझे तो अपना नाम सँभालना पड़ता है। पैसेके लिए चाहे जो घसीटकर क्या मै स्वयं अपनी प्रतारणा कर लूं ? आँ ?"

एक तो मेरा शरीर ही भारी-भरकम है और ऊपरसे बार-बार मेरे यह कहनेके कारण कि देखो, मेरा गुस्सा बडा खराब है, वह फिर चुप हो जाती है। और यह विश्वास होनेसे कि यह कोई भी चीज़ बेचने न देगी, मै फिर और कुछ खोजता रहता हूँ। फिर भी, प्रकाशकोसे भेंटमे मिली पुस्तकें आधी क़ीमतमे किसी लाइब्रेरीको बेच डालूं, 'सत्यकथा', 'अभिरुचि', मासिक पत्रिकाओके गट्ठे और दीवाली विशेषांकोके अंक किसी रद्दीवालेको सवा रुपये सेरके हिसाबसे दे दूँ, घरमे यह कहकर कि मेरा 'पार्कर इक्यावन' कही गुम गया है, उसे किसीके पास गिरवी रख दूँ, ये सीधे-सादे उपाय मुझे लगातार सूझते रहते है। अन्तमे घरमे बैठना बिलकुल असम्भव हो जाता है। कपड़े पहनकर मैं निरुद्देश्य बाहर निकल पड़ता हूँ।

सचमुच शहरकी सड़कोंपर खाली जेब लिये घूमना बडी भयानक बात है। हर कहीं होटलोंमे सजाकर रखे हुए सुन्दर पदार्थ दिखाई देते है, सोंधी-सोंधी खुशबू आती है! जो करता है जाकर साबूदानेकी खिचड़ी खाऊँ, पर जेबें तो बिलकुल खाली होती है। पानवालेकी दूकानपर आला हजरतकी मेहरबानीसे छह पैसेमें दस 'चार मीनार' सिगरेटें मिलते हुए भी वे हमारे किसी कामकी नही होती। केवल दो पैसेमे एक मसालेकी गिलौरी खाकर मज़ा लूटा जा सकता है और अपने रामकी जेबमे तो ताँबेकी छदाम भी नहीं होती। हाय रे ज़माना! ऐसे वक़्त कन्धे झुकाये, गरदन लटकाये दयनीय चालसे मै रास्ता काटता रहता हूँ। मन-ही-मन यह मालूम हो जाता है कि मै एक कौड़ी क़ीमतका इन्सान हूँ। पत्नी और छोटी लड़कीको याद आनेपर मै दु:खी हो जाता हूँ। उनपर बड़ा भारी अन्याय किया है मैने, यह बात मनमे लगातार चुभती रहती है।

फिर कोई पहचानका, मेरे प्रति अपने हृदयमे आदर रखनेवाला मनुष्य अचानक मिल जाता है। चेहरेको खिलाकर बातें करने लगता है। यह महसूस करके कि मै महाराष्ट्रके एक तरुण और प्रसिद्ध कथाकार तथा फ़िल्म-कथालेखकसे बातें कर रहा हूँ, वह बेचारा बहुत खुश होता है। पढ़ी हुई कहानियो और देखी हुई फ़िल्मोकी तारीफ़के पुल बाँधता रहता है। उसकी बातो और आँखोमे आदरका भाव उमड़ता रहता है। और मै ऊपर-ऊपर हँसते हुए, हुँकार देता हुआ उसके कपड़े बड़े ध्यानसे निहारता रहता हूँ। उसकी कोटकी जेबें देखता रहता हूँ। उसकी जेबमे रखे पेन और कलाईपर बँधी घड़ीकी क्या क़ीमत है? उसके कपड़े भारी है क्या? ये सब बातें ध्यानमें रखकर उसकी आर्थिक दशाका अन्दाज़ लगानेमे मै खो जाता हूँ। वह बेचारा मेरे बाल-बच्चोके स्वास्थ्यकी पूछ-ताछ करता रहता है। लड़की इतनी जल्दी बोलने लगी, इसकी सराहना करता रहता है और उसी समय मैं उससे कितने रुपये उधार मागूँ, इसका निर्णय करता रहता हूँ।

पैसे उधार माँगनेके बारेमें मेरा अपना एक अनुभव है। (मेरे लेखक बन्धुओंको शायद यह उपयोगी हो।) जिस तरह भिखारीपर दया भिखारी-को ही आती है, उसी तरह लेखकको ही लेखकपर आती है। उसमे भी यदि वह नव-लेखक हो तो बहुत ही अच्छा। जेबमे रखे हुए दो रुपयोंमे-से दोनों तो वह हमे दे ही देता है। कमसे-कम एक तो जरूर ही दे देता है। इसके बाद अन्यत्र नौकरी करनेवाले, किन्तु जिन्हे साहित्य आदि बातोंमें रुचि है, ऐसे लोग भी इस कार्यमे बड़े काम आते है। साधारण तौरपर दो-चार या पाँच रुपये ही उधार माँगना चाहिए जिससे सहसा निराशा पल्ले नही बँधती। लेकिन यह बहुत दिनों तक नही चलता। जल्दी ही सब लोगोसे माँग लिया जाता है और बादका समय बडा कठिन होता है।

ऐसे समय, सड़कसे घूमते हुए मेरे ध्यानमे यह बात आती है कि सड़कपर लगे बिजलीके बल्ब ऐसे लगे है जो आसानीसे निकाले जा सकते है। साइ-किलमे ताला लगाकर फिर होटलमे बैठे गप्पें हाँकें, इस विषयपर बहुत-से ग़लती कर जाते है, यह भी मुझे महसूस होने लगता है। जिसके पास कोई गैरेज नही है, वे लोग रातको अपने घरके सामने कार रखकर आरामसे सोते हैं, यह देखकर कमसे-कम कारके पुरजे निकालनेका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, यह लगन लग जाती है। आँखें तेज पैनी हो जाती है। हलचलमे बड़ी सफ़ाई आ जाती है और ऐसा विश्वास होने लगता है कि अगर यही सब मनमे लाऊँ तो चाहे जितना रुपया कमा सकता हूँ। शहरोकी इन सड़कोंपर तमाम नोट बिखरे पड़े रहते है, पर उन्हे उठानेकी अक़्ल हममे होनी चाहिए, यह बात जँचती है।

ऐसे समय यदि कोई मुझे चाय देने लगता है तो मै अवश्य होटलमे जाता हूँ। वह जब चायका ऑर्डर देता है तो उससे कहता हूँ, "यार, चाय तो तुम लेना। मैं तो कुछ खाऊँगा। मुझे ज़ोरकी भूख लगी है!"

सहज ही मेरा खाना समाप्त होनेतक वह बैठा गप्पें लगाता रहता है और इसी समय खाना खत्म करके मै अर्थपूर्ण दृष्टिसे उस ठण्डी हो रही

चायकी ओर देखता हूँ। सहज ही बशी-भर चाय मुझे मिल जाती है। दो सिगरेट मँगानेपर भी, भोजनके बाद घरपर पीनेके लिए अपनी एक सिगरेट जेबके हवाले कर देता हूँ और उसकी आधी सिगरेट पीता हूँ। मेरे इस बरतावसे वह सोचने लगता है कि कलाकार लोग हमेशा दरिद्र ही होते है और यह अनुभव होनेसे वह कोमल हृदयका मनुष्य तिलमिला उठता है और उसके भोलेपनपर हँसता हुआ मै आधी सिगरेट पीकर चैन करता हूँ।

जब मुझे यह पता चलता है कि किरायेपर लाये हुए फ़र्नीचरका कई महीनेका किराया न चुकानेके कारण दूकानदार मेरे घर आकर यह धमकी दे गया है कि अगर घर आकर पूरा किराया नहीं चुकाओगे तो कल मैं सारा फ़र्नीचर उठाकर ले जाऊँगा, तब उसकी दूकानपर जाकर मैं गम्भीरतापूर्वक कहता हूँ, "भले आदमी, सचमुच आप आकर उसे उठा ले जायें। मै उसे दूसरोको बेच दूँ, इससे पहले उसे उठाकर ले जाइए!" और वह समझ नही पाता कि इस मनुष्यसे कैसे पेश आऊँ। उसका सारा गुस्सा हिरन हो जाता है और वह हँस पडता है!

किसी दरजीको सिनेमामे काम करनेकी बहुत इच्छा है, यह बात मेरी नजरोसे नहीं छूटती। और फिर उसको पूँजी बनाकर मै मजेमे बहुत-सी उधारी किया करता हूँ। मैं बरसों वह ऋण नही चुकाता। वह भी माँगनेकी हिम्मत नहीं करता। और मेरी इस बेशर्मीके आस-पास सामाजिक प्रतिष्ठाकी चौखट होनेके कारण वह विलक्षण रूपसे खिल उठती है।

मेरी बरकतके दिनोमे (सिनेमा प्रोड्यूसरकी मेहरबानीसे ऐसा भी वक्त भूले-भटके आ जाता है।) मैने बहुत-से गरम सूट सिलवा लिये है। अब दूसरे कपडे सिलवानेकी ताक़त न होनेके कारण मुझे उन्हींको काममे लाना पड़ता है। काममे लाते रहनेसे सहज ही वे मैले हो जाते हैं और मैले कपड़ोंको धोबीको देनेके सिवा चारा नहीं।

कुछ दिन पहले इसी तरहके कुछ क़ीमती कपड़े मैंने एक अच्छी लाण्डरीमे धोनेके लिए दिये और बीच ही में उनकी जरूरत होनेके कारण

उन्हे लानेके लिए गया। रसीदपर जो तारीख़ दी थी वह आगेकी थी, इसलिए सब कपड़े धुल तो गये थे, पर उनपर इस्त्री नहीं हुई थी। इसलिए अपनी ज़रूरतके मुताबिक एक ही पतलून मै वहाँके लड़केसे माँगकर ले आया और बादमे पैसे न होनेके कारण बहुत दिनोंतक मैं लाण्डरीकी ओर फटका तक नही।

जब सम्भव हुआ तब बाक़ी कपडे लाने लाण्डरी गया तो मुझे यह मालूम हुआ कि स्मरणशक्ति अधिक तीव्र न होनेके कारण वह लड़का इस बातको भूल गया कि अपनी एक पतलून मै पहले ही ले गया हूँ। बहुत देर तक वह अलमारियोमे खोजता रहा और बादमे अपराधी चेहरेसे बोला,

"साहब आपकी एक पतलून गुम गयी है। आगेकी खेपमे खोज रखूँगा।"

इसपर मै कुछ भी न बोला। धूर्ततासे घर लौट आया। इसके बाद और कुछ दिन बीत गये। थोड़े-बहुत पैसे पासमे होनेके कारण इस बीच अनेक बार लाण्डरीमे गया था और लड़केने मुझसे गिड़गिड़ाकर कहा था, "साहब, खोज रहा हूँ। अगर नही मिलेगी, तो नियमके अनुसार आधी कीमत दूँगा।"

मै यह जानता ही था कि पतलून मिलना सम्भव नहीं है, क्योंकि वह गुमी ही न थी। और फिर जब एक बार ऐसी स्थिति आयी कि राशनके लिए भी पैसे नहीं थे, तब बड़ी सभ्यतासे मै धोबीके घर गया और उससे अपने पैसे माँगे। उस भले आदमीने मेरी माँग स्वीकार की और मेरे हाथपर दस-दस रुपयेके दो नोट रख दिये। दो नोट जनाब! ज़रा सोचिए, बीस रुपये!

अब मैंने उस लडकेसे गुप्त समझौता कर लिया है कि उचित कमीशन लेकर वह मेरी पतलूनें गुमाया करे और आधी रक़म मुझे दे। क्योंकि सामाजिक प्रतिष्ठाके कारण मै अपने कपड़े खुले-बाज़ार बेच नही सकता!

*

चूहा : एक व्यक्ति

बड़ी रात गये मैं घर लौटा। ताला खोलकर सारी बत्तियाँ जला दीं, फिर भी सूना घर खानेको दौड़ रहा था। सच पूछा जाये तो पत्नीके मायके चले जानेपर पतिको आनन्द मनाना चाहिए। मगर मैं घर लौटकर आया तो स्लीपिंग सूट पहनकर खाटपर पड़ रहा। बत्तियाँ बुझा नींदको बुलाने लगा। तभी मुझे लगा जैसे एक औरत आकर दरवाजेपर खड़ी हो गयी है। उसके माथेपर हल्दी और सिन्दूरका टीका लगा है और बाल खुले-छितराये है। मैं साँस रोक और कान खडेकर उसकी पदचाप सुननेकी बाट जोहने लगा। यह एहसास होते ही कि अब वह मेरे पास आयेगी और पीठ सहलायेगी, मैं काँपने लगा और मेरे माथेपर पसीना चुहचुहा आया। सोचा, उठकर बत्तियाँ जला दूँ। मगर तभी मैं अपनेपर लजा गया। आखिर यह सब मैं क्यों सोच रहा हूँ? दो लड़कोंका बाप और एक सौ सत्तर पौण्ड वज़नवाला आदमी इस तरह भय खाये।

जंगलमे जब शेरका शिकार करने बैठता हूँ, तब भी मैं नहीं डरता। घने अँधेरोंके बीच जंगलोंमे जब खरगोशका पीछा करता हूँ उस समय भी नहीं डरता, लेकिन घरमे न जाने क्यों भूतोंसे बहुत डरता हूँ। मुझे चोरोंका, साँपोंका, घरके ढह जानेका, किसीका भी भय नही लगता मगर भूतका खयाल आते ही जैसे छक्के छूट जाते हैं। अपनी ही कल्पनासे रँगे इन भूतोंके चेहरे···ओफ्!

कहूँ तो लोग-बाग हँसेंगे, मज़ाक बनायेंगे, इसीलिए अभीतक यह सब मैंने किसीसे नहीं कहा – पत्नीसे भी नहीं। और यही कारण है कि पत्नी जब मायके जानेकी बात कहती है तो मैं चिन्तित हो उठता हूँ।

····मैं खाटपर पड़ा डर रहा था। रातके बारह बज चुके थे और

काली चूड़ियोंकी आवाजें मेरे कानोंमे पड़ने लगी थीं। गहरी साँस और आँचलकी सरसराहट मुझे स्पष्ट सुनाई दे रही थी। बिस्तरपर औंधा पड़ा मैं अपने डरपोक स्वभाव और इस बचपनेपर हँसनेका लाचार प्रयत्न कर रहा था।

अहातेमें झींगुर बोल रहे थे। मेढकियाँ शोर मचा रही थीं। लेकिन रात जैसे साँस रोककर आँचलकी सरसराहट और चूड़ियोंकी खनखनाहट सुन रही थी। तभी मुझे लगा कि रसोईघरकी बत्ती जल गयी है! प्रकाशकी एक लम्बी चौकोन रेखा मेरी मसहरीपर पड़ रही है।

मै भौंचक-सा हो गया। मैंने चाहा कि ज़ोरसे चिल्लाऊँ लेकिन मुँहसे एक शब्द भी न निकला। हाथ-पाँव ठण्डे हो गये। मुँह सूख गया। मुँदी आँखें खुल नहीं पा रही थी। दरवाजे सब बन्द और मै जाग रहा हूँ। बिजलीकी बत्ती अपने-आप जल उठी! यह कैसे जली? यह सब कैसे हुआ?···और कुछ क्षण यूँ ही बीत गये। मेरे कानोंके पीछेसे पसीनेकी लकीरें बननी-बहनी शुरू हो गयीं। बन्द आँखें मैंने खोली तो रोशनीसे जगमगाती रसोईघरकी दीवार दिखाई दी। यह सोचनेकी चेतना मुझमें आ गयी थी कि बहुत बार ऐसी बातें अपने मनका भ्रम ही होती हैं। थोड़ा साहस करके यदि जाँचे-समझें तो उनकी असत्यताका पता चल जाता है। और फिर साहस बटोर मसहरीको धीरे-से हटाकर बाहर निकल पड़ा। रसोईघरके दरवाज़ेपर आकर जल्दी-जल्दी सारे कमरेमे निगाह दौड़ा रहा था कि तभी सामनेकी शेल्फ पर कुछ हिला। थालियोंके पीछे चूहेका नथुना काँप रहा था। अचानक वह एकदम पूराका-पूरा बाहर निकल पड़ा और अपनी चमकीली आँखोंसे मेरी ओर देखता हुआ मूँछें हिलाने लगा। उसके चेहरेसे लगा कि बत्ती जलानेकी हरकत भी उसीसे हुई है। क्योंकि पीतलकी स्विच ढीली हो गयी थी और शटरसे नीचे उतरते समय चूहेके धक्केसे बत्ती जल गयी थी। मैंने स्विचको ऊपर-नीचे करके देखा – एक अँधेरा और फिर प्रकाश! मुझे हँसी आयी और

मन-ही-मन हँसकर मैंने उस नये व्यक्तिकी ओर देखा। मेरे हाथोंकी हलचल होते ही वह थालियोंके पीछे छिप गया था, और अब फिर झाँकने लगा। गरदन लम्बी करके उसने भी मुझे घूरकर देखा और फिर बरतनोंकी ओट हो, चला गया।

रोशनी बुझाकर मैं भीतर आया और ढीले-बदन बिस्तरपर लेट गया। अब मेरा भय दूर हो गया था। मेरा पुरुषत्व इतना खोखला और दिखावटी है, इसपर मुझे बार-बार पछतावा हो रहा था। और यह सोचते-सोचते मैं विचारोंमें खो गया : डरना मनुष्यका स्वभाव है, परन्तु उस डरपर हाँवी होकर बत्ती जलनेका सही कारण क्या मैंने ही नहीं खोजा ? इस कारणको खोजते समय मैंने जिस साहसको दिखाया, वह भी मामूली थोड़े न था। ऐसे ही अनगिनत अनुभवोंके आधारपर ही मनुष्यका विकास होता है। अनुभवोंका जितना अधिक संग्रह होगा उतना ही अधिक वह सहिष्णु और धैर्यवान् होगा।

बिस्तरपर पड़ा मैं इन्हीं सब विचारोंमें खोया था और वही चूहा फिर रसोईघरमें खटर-पटर कर रहा था। यह सब सुनते मुझे यह नहीं लगता था कि मैं अकेला हूँ। पत्नी घरमें नहीं है, यह भी महसूस नहीं हो रहा था। और इसी वातावरणमें डूबा-डूबा मैं गहरी नींदमें सो गया।

आँख खुली। खिड़कीसे बाहर देखा तो रेलकी पाँतें ताज़ी धूपकी रोशनीमें चमक रही थीं। उस पार खेतोंमें सुआ-रंगी ज्वारकी फ़सल ओस-भींगा तन सुखा रही थी। खिड़कीसे सटी मेज़पर पड़े सफ़ेद कपड़ोंको ठीकसे सरियाते समय मेरा ध्यान टेब्ल-क्लॉथपर अंकित उस चूहेके पैरोंकी छापपर गया। पातोंके उस पारवाले खेतसे कीचड़-भरे पैर लिये यह साथी उन्हीं गन्दे पैरों मेरी मेज़पर उतर पड़ा था और अपनी छाप छोड़ता रसोईघर चला गया था। जाते-जाते स्विचमें धक्का लगा एक इन्द्रजाल-सा बुन गया था। रसोईघरमें जाकर देखा तो सभी चीज़ें सही-सलामत थीं। सब्ज़ी, फल आदि सभी कुछ सुरक्षित थे। तो क्या वह मात्र मुझे डराने

और मेरा डर भगानेके लिए आया था ? मै चाहता था कि वह फिर आये, रोज़ आये। क्योंकि वह आकर रसोईघरमे डिब्बे और बरतन बजायेगा और मुझे अच्छी-भली नीद आयेगी।

नित्यकी भाँति शामको घर लौटा पर घरमें मुझे डर न लगा। मैं जानता था कि मेरा एक साथी है। कपडे बदल खाटपर लेट गया और पढने लगा। अपने सोनेके कमरेके अलावा और सभी कमरोकी बत्तियाँ नहीं जलायी थीं। पढनेमे मेरा मन नही लग रहा था। कान किसी आहट-को सुननेकी प्रतीक्षामे थे। बार-बार खिड़की और शटरकी ओर मै देख रहा था। मै यह सोच-सोच कि शायद वह न आये, चिन्तित हो रहा था। कल उसे खानेको भी यहाँ कुछ न मिला था, इसलिए सम्भवतः वह किसी दूसरे घरमे जाये जहाँ उसे कुछ खानेको मिले। और यदि सचमुच ऐसा कोई घर मिल गया तो वहा चहा मेरे घर फिर कभी नहीं आयेगा। यह सोच ही रहा था कि तभी मुझे लगा कि यह बत्ती भी बुझा देनी चाहिए। बिलकुल अँधेरा किये बिना वह ढीठ चूहा भीतर नही आयेगा और तुरत बत्ती बुझाकर उस चूहेके आनेकी बाट जोहने लगा।

कुछ समय बीतते ही रसोईघरकी बत्ती एकाएक जल उठी। थालियों-के पीछेसे खटर-पटरकी आवाजें आने लगी स्वयं भी वह चूहा विभिन्न प्रकारकी आवाजें करता रसोईघरमे इधर-उधर घूमने लगा। यह सब मुझे अच्छा लग रहा था। ऐसा करने लगा जैसे मेरी पत्नी मायके गयी ही न हों। और वह रसोई बना रही हों।

....और वह चूहा फिर प्रतिदिन रात्रिमे घर आने लगा। उसकी रुचि-अरुचिको भी मैंने जाना। मूँगफली और अन्य खाद्य सामग्रियोके बजाय जब अनेक बार बदनमे लगानेवाली साबुनकी बट्टी उसने खायी तो मुझे चिन्ता हुई। उसके स्वास्थ्यकी भी चिन्ता मुझे हुई। कभी-कभी यूँ ही तरतीबसे रखी कटोरियोंको वह लुढ़का देता। कभी किसी डिब्बेके

ढक्कनको खोल देता। ऐसेमे उसे डरानेके लिए मुझे लाठी पटककर डाँटना पड़ता था। और वह इधर-उधर दौड़-कूदकर अन्तमे शेल्फ़के पीछे छिप जाता, मगर उसकी पूँछ दिखाई पड़ती रहती थी। और अन्तमे एक दिन चिमटेसे उसकी पूँछ मैंने पकड़ ली। लेकिन इसका भी असर उसके ऊपर न पडा। वह रोज़ आता अपने उसी चिर-परिचित रास्तेसे!

चमकीले धूसर रगके इस प्राणीको सफाईका भी कुछ ध्यान न रहता था। वह चाहे जहाँ जब भी गन्दगी किया करता था। इसके लिए वह हमेशा नित नयी जगह खोजा करता। और उसकी इस अन्वेषी कल्पना-शक्तिको मन-ही-मन मैं सराहा भी करता था।

मायकेका सुख लेकर मेरी पत्नी लौट आयीं। इस बीच उस चूहे-ने घरमे अपना डेरा जमा लिया था। पत्नीने जब घरकी सफ़ाईका काम शुरू किया तब उन्होंने देखा कि घरमें सब कहीं परिवर्तन हो गया है। जिन डिब्बोंमे मूँगफलीके दाने और गरी रखी थी, वे खाली हो गये हैं। अनाजके बोरोंमे छेद हो गये है और एक कोनेमे चुहियाने बच्चे दिये हैं। मेरी अनु-पस्थितिमे ही उन सुन्दर बच्चोंको मेरी पत्नीने झाड़ूसे निकाल बाहर फेंक दिया। दो-चार दिन घरमे अजीब-सी शान्ति छायी रही। पत्नी रह-रह-कर मुझे छेड़ने लगीं!

"क्या रात आप घर हीमे सोते थे?"

"हाँ।"

"तो चूहोंने इतनी बरबादी कैसे की?"

"पहले-पहल तो चूहा बड़ी शराफतसे पेश आया था।"

"मुझे तो लगता है कि आप रातमे घर आते ही न थे!"

"नहीं जी, घर न आता तो फिर कहाँ जाता?"

"फिर इतनी गाढ़ी नीद कैसे लग जाती थी आपको? रात-भर चूहे ऊधम मचाते थे और आपने उसे सुना नहीं?"

"सब कुछ सुनता था। उसी आवाज़से तो मुझे नींद आती थी। यूँ

घरमें शान्ति होनेपर तो मुझे नींद ही नहीं आती। चूहोंकी खटर-पटरसे मुझे लगता था कि तुम घरपर हो, और मैं मुफ्तकी नींद सो लेता था।"

"आपसे तो कुछ कहना भी आफ़त है।"

फिर चूहोंका नाश करनेके लिए चूहेदानी भी घरमें आयी। पत्नी इसके लिए पूरी सावधानी बरतने लगीं। लेकिन वह सफल न हुई और चिढ़ गयीं। फिर दो पिंजरे आये। और तब मुझे यह निश्चित हो गया कि चूहेकी मौत नज़दीक आ गयी है। इसे बचाना भी मेरे बसकी बात नहीं थी।"""

एक दिन आधी रात गये खट-से पिंजरेके मुँह बन्द होनेकी आवाज हुई। पत्नी घबराकर उठीं और प्रसन्न होकर बोलीं, "अजी चूहा फँस गया।" घरकी सारी बत्तियाँ तुरत जला दी गयीं और हम दोनों रसोई-घरमें जा पहुँचे। पिंजरेमें चूहेकी केवल पूँछ ही फँसी थी और वह बेचारा घबराहट और पीड़ामें चूँ-चूँ करके चीख रहा था। पत्नी बोलीं, "मारो, मारो। अभी जिन्दा है।" और हम दोनों उसे मारनेके लिए किसी उपयुक्त हथियारकी खोज करने लगे। लेकिन जल्दीमें कोई चीज मिल नहीं रही थी। पत्नी चूहेके पास नाचती चिल्लाती खड़ी थीं। मैं हथियारकी खोजमें ही था कि पत्नीने चिल्लाकर कहा, "अजी वह भाग गया।" मैंने आकर पूछा, "भाग गया?" और देखा कि दरवाजेपर चढ़कर शटरमें-से चूहेका जोड़ा बाहर निकल गया था।

पत्नी सीनेपर हाथ रखकर बोली, "भई गजब कर दिया चूहेने!" "क्या गजब कर दिया?" मैंने पूछा। पत्नीने कहा, "अजी वह चूहा जब अपनी पूँछ निकालनेकी कोशिश कर रहा था तभी एक दूसरा चूहा आया और तपाक्-से उसकी फँसी पूँछ काट दी और दोनों निकलकर चम्पत हो गये।" मैंने देखा तो सचमुच दो इञ्च लम्बी पूँछ अभीतक ज्योंकी-त्यों फँसी हुई पड़ी थी।

इसके बाद भोर तक हम दोनों इस 'चूहाकाण्ड' पर बातें कर रहे थे और हँस रहे थे। यह घटना एक नाटककी तरह हो गयी थी और इसे बड़े मोहक ढंगसे पत्नी बार-बार मुझे सुना रही थीं। चूहेके विषयमें इतनी सराहनापूर्ण बातें किसी पति-पत्नीके बीच सम्भवतः कभी न हुई होंगी।....

....मगर वह 'व्यक्ति' अब कभी नजर नहीं आता।

*

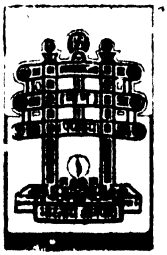

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्रीका
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण

●

संस्थापक
साहू शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

●

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी ५